संचार माध्यम एवं साहित्य के अन्तर्संबन्ध का विवेचन

'डी० फिल०' उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध
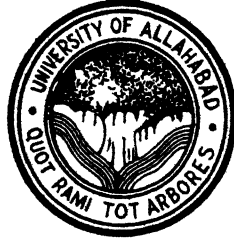
शोधछात्र

योगेन्द्र प्रताप सिंह

निर्देशक

प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह

पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
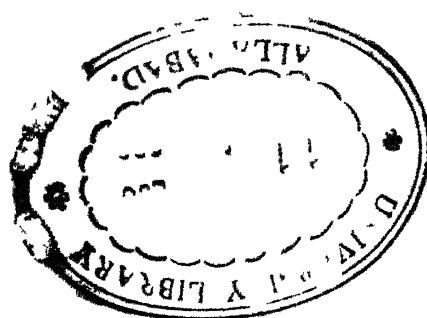
प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण है। सूचना विस्फोट के इस युग मे आज का समाज सचार क्रान्ति से आक्रान्त है। सचारमाध्यम समाज से अभिन्न रूप से जुडता जा रहा है। सचार माध्यम अब मात्र सूचना-तत्र का हिस्सा नहीं, अपितु शिक्षा, मनारजन एव सदेश का वाहक भी बन गया है, दिन-प्रतिदिन जीवन से ऐसे जुडता जा रहा है जैसे सवाद शब्द से एव लेखन लिपि से। साहित्य स्वय भी सचार की एक विधा या माध्यम है। अस्तु, सचार को साहित्य से बिल्कुल पृथक करके नहीं देखा जा सकता।

सचार माध्यम का सम्बन्ध विचार व अभिव्यक्ति की स्वतत्रता से है। साहित्य भी अभिव्यक्ति का एक स्वरूप है। जैसे-जैसे सचार माध्यमो का विकास होगा, अभिव्यक्ति की स्वतत्रता की माग उतनी ही तीव्र होगी और अनछुए प्रसगो एव सवेदनाओ की अभिव्यक्ति होगी। फलत साहित्य अपरिहार्य एव प्रासगिक होता जाएगा।

साहित्य, कला, सगीत, शिल्प अपनी अन्विति म सस्कृति की रचना करते है। विगत मे साहित्य को कला सगीत से सम्बद्ध करके देखा जाता रहा है। सम्प्रति साहित्य की विवेचना का सदर्भ संचारमाध्यम हो गया है। सचारमाध्यम ने एक ओर जहा सभ्य समाज के निर्माण मे अपने उत्तरदायित्व को रेखाकित किया है वहीं अपनी भूमिका के कारण प्रश्नचिन्हो से घिरा भी है। जिस प्रकार मुद्रण के अविष्कार ने ज्ञान से समाज के एक वर्ण का एकाधिकार तोडा, उसी प्रकार ज्ञान, सूचना व उदात्त मनोरजन से सचार माध्यमो ने साक्षरो का अधिकार कुछ हद तक तोडा है। इस दिशा मे इलेक्ट्रानिक माध्यमो की भूमिका महत्वपूर्ण है। किन्तु सचार माध्यमो द्वारा कल्पनाशीलता, सृजनशीलता, बौद्धिकता, सवेदनशीलता और वैयक्तिक वैचारिक सप्रेषणशीलता पर लगाये गये आघात का आरोप भी कुछ हद तक सही है।

सचार माध्यम एव साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध पर इधर व्यापक चर्चा है। लिपि के आविष्कार से लेकर पत्र-पत्रिकाएँ, आकाशवाणी, फिल्म से होते हुए दूरदर्शन तक पहुँचे सचार की विकास यात्रा ने साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। किसी सर्जक व्यक्तित्व का फिल्मीदुनियाँ मे प्रवेश जहाँ उसे "साहित्यकार की मौत" की उपाधि से विभूषित होने का अवसर देता है, वहीं दूरदर्शन को कुछ आलोचकों यथा डा राम स्वरूप चतर्वेदी ने औद्योगिक युग का लोकसाहित्य भी

कहा है। पत्रकारिता अपने प्रादुर्भाव काल मे जन समस्या मात्र से जुडी थी, अपनी विकासयात्रा मे आगे चलकर यह विचार एव सर्जना की वाहक बनी। हिन्दी गद्य के निर्माण मे पत्रकारिता ने अहम् भूमिका निभायी है। आधुनिक काल के अधिकाश साहित्यकार प्राय किसी न किसी समाचार पत्र या साहित्यिक पत्र से सम्बद्ध रहे हैं। अज्ञेय, लक्ष्मीकात वर्मा आदि कुछ साहित्यकार आकाशवाणी से जुडे रहे और उस माध्यम का रचनात्मक प्रयोग जमकर किया। इधर साहित्यिक सस्पर्श की धर्मयुग, सारिका, दिनमान, सा हिन्दुस्तान सरीखी स्तरीय पत्रिकाएँ, जहाँ धडाधड बन्द हुई हैं वहीं लघुपत्रिकाओ ने अपना मार्ग स्वय प्रशस्त किया हे। सूचना विस्फोट से आक्रान्त इस युग मे बदलते समाजिक परिवेश और जटिलतर होती सवेदनाओ के कारण साहित्य पर गभीर उत्तरदायित्व आ पडा है। साहित्य के समक्ष खडी इन्हीं चुनौतियो ने मुझे इस दिशा मे कार्य करने को प्रेरित किया और मैं इस दिशा मे शोध के लिये प्रस्तुत हुआ। यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे शोध का विषय ''सचार माध्यम एव साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन'' निर्धारित हुआ जो मेरे विषयगत रूचि एव विचारो के अनुरूप था।

साहित्य की सामाजिक भूमिका है। साहित्य अपने सामाजिक भूमिका मे अनिवार्य रूप से सचार माध्यमो से सम्बन्धित है। समाज की सस्थागत व्यवस्था टूट रही है, परम्पराए टूट रही हैं, मूल्यो, विश्वासो का आधार बदल रहा है। सचार माध्यमा का इसमे योगदान निश्चित है। इसी से तकनीक का पहलू भी जुड़ा हुआ है। परम्परागत समाज से औद्योगिक समाज की इस विकास यात्रा मे सचार माध्यम अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हे। सिमटती भौगोलिक दूरियाँ दूर होती मानवीय पारस्परिकता के द्वन्द मे आज मनुष्य जी रहा है। मनुष्य से व्यक्ति बनने की यात्रा मे नये व्यावसायिक एव जटिलतर सम्बन्ध बन रहे हैं। इस स्थिति मे साहित्य की प्रतिक्रिया एव उत्तरदायित्व का मूल्याकन जरूरी है। परिदृश्य के इस प्रकार बदलने से साहित्य की अपनी आन्तरिक बनावट मे क्या कुछ परिवर्तन आया है या आ सकता है और ग्रहीता समाज मे उसकी क्या भूमिका बदली है, ये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी आलोच्य शोध मे विवेचित है।

आलोच्य शोध का उद्देश्य साहित्य एव सचार माध्यमो की प्रकृति को विवेचित करते हुए उनकी शक्तियो, सीमाओ एव सभावनाओ को रेखाकित करना है। इन दोनो उत्स से निकलने वाली धाराएँ कहाँ से एक-दूसरे से काटती-अलग होती हुई अपने सामाजिक दाय का निर्वाह करते हुए चल रही हैं या चलेगी, इसकी भी पडताल प्रस्तुत विषय मे किया गया है। भाषा एव सवेदना के

स्तर पर सचार माध्यमो ने क्या किया है, इसका मूल्याकन करते हुए सभावना की खोज करना भी हमारा अभिप्राय है जिससे सचार माध्यमो को उनकी शक्ति से अवगत कराने का विनम्र प्रयास हो सके।

मुद्रण से प्रतिकृति निर्माण व मौखिक साहित्य सुरक्षित रखा जा सकता है तथा सचार माध्यमो से साहित्य जनसुलभ हो सकता है। अधुनातन तकनीक के प्रयोग से कल्पना को दृश्य बनाकर अधिक यथार्थ अभिव्यक्ति की जा सकती है। अत वैज्ञानिक अनुसधान एव तकनीकी अविष्कारो से केवल पल्लू झाडने से काम न चलेगा। आने वाला समय सूचना विस्फोट का उत्तर युग है। इसमे सचार माध्यम मात्र सूचना सवाहक नहीं होगे अपितु इसके भी आगे समाजिक दायित्व का निर्वहन करेंगे। इनकी सीमाओ एव सभावनाओ का मूल्याकन करते हुए साहित्य को भी बदलते परिवेश मे अपने गुरूत्तर दायित्व का निर्वाह करना पडेगा तथा सचार माध्यमो को भी अपनी सर्जनात्मक शक्ति एव सीमाओ को पहचान कर सच्चे अर्थो मे लोकसचार माध्यमो की तरह जीवन से गहरे जुडना पडेगा। सैकडो वर्षों के श्रमसाध्य अनुसधान का अभिनन्दन करते हुये सचार माध्यमो की भौडी एव ओछी अपसास्कृतिक हरकतो को अस्वीकार करते हुए समाज की नस पर हाथ रखकर साहित्य को लिपि के अतिरिक्त स्क्रीन पर उतारने की भागीरथ अकाक्षा भी इस शोध मे अनुस्युत है। पत्रकारिता, फिल्म, आकाशवाणी आदि सचार माध्यमो ने साहित्य के स्वरूप व शिल्प को किस प्रकार प्रभावित किया है, इसके मूल्याकन का प्रयास किया गया है।

विषय के अध्ययन एव विवेचन मे लोक एव शास्त्र दोनो से सदर्भ ग्रहण करने का प्रयत्न समाहित है। इसलिए शास्त्रोचित विवरण के साथ मीडिया एव साहित्य के सधि पर खडे मीडिया विशेषज्ञो, साहित्यकारो आदि से लिये गये सवादो से सदर्भ ग्रहण किया गया है। साक्षात्कार की इस प्रश्नोत्तरी मे जिज्ञासा भी है और सवाद भी, इससे भी विषय मे सहयोग मिला है विषय प्रतिपादन मे सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टियो के साथ जहाँ तक हो सका है सर्वेक्षणात्मक एव ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे भी विवेचन का प्रयास किया गया है। प्रथम अध्याय मे सचार माध्यमो का सक्षिप्त परिचय देते हुए अतिम अध्याय 'सृजना एव सम्प्रेषण साहित्य एव माध्यम' मे विषय का उपसहारात्मक समाहार किया गया है।

इस कार्य मे मुझे अपने शोध निदेशक एव श्रद्धेय गुरुवर प्रो योगेन्द्र प्रताप सिह, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी के मार्ग दर्शन से शोधपरक आलोचनात्मक दृष्टि नही मिली होती तो शायद यह

कार्य इस रूप में सभव न हो पाता। वैसे श्रद्धेय मा मालती देवी, बडे भाई डॉ डी पी सिह, श्री रवीन्द्र प्रताप सिह एव श्री राजीव गुप्ता के स्नेह एव सबल के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति को अपनी ही प्रशसा समझता हूँ। अभिभावक स्वरूप श्रद्धेय आर पी गोयल, महाधिवक्ता उ प्र एव आटी मालती गोयल का मैं अत्यत ऋणी हूँ जिनके स्नेह ने मुझे सदैव उत्साहित किया है। मैं अत्यत अभारी हूँ डॉ सदानन्द गुप्ता, उपाचार्य, गोरखपुर विश्वविद्यालय, डॉ सुरेन्द्र दूबे, उपाचार्य गोरखपुर विश्वविद्यालय एव श्री हरि मोहन मालवीय, अध्यक्ष हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद का जिनकी गुरूपद छाया मे मैंने शोध का ककहरा सीखा।

मीडिया और साहित्य के कुछ मनीषियो यथा श्री सुधीश पचारी (मीडिया विशेषज्ञ), श्री नरेन्द्र कोहली (उपन्यासकार एव व्यग्यकार) डॉ कमल किशोर गोयनका (दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ रामशरण जोशी (नई दुनियाँ), श्री अच्युतानद मिश्र (जनसत्ता), श्री विष्णु नागर (हिन्दुस्तान), डॉ अवध नारायण मुद्‌गल (सारिका), श्री मगलेश डबराल (जनसत्ता), श्री जगदीश उपासने (इडिया टुडे), सुभाष सेतिया (आजकल), लक्ष्मीशकर बाजपेयी (आकाशवाणी), श्री श्रीश मिश्रा (जनसत्ता), अशोक कुमार (इडिया टुडे), श्री सूर्य कान्त बाली (जी न्यूज एव न भा टा) आदि का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनसे जो स्नेह एव सानिध्य सुलभ हुआ जो मुझ अकिचन के लिए अत्यत आह्लादकारी एव प्रोत्साहक था। अतत कुछ उन मित्रो जैसे श्री अरविन्द श्रीवास्तव एव श्री अरुण कात त्रिपाठी को कैसे भूल सकता जिनके सहयोग के बिना यह अभियान अधूरा रह जाता।

योगेन्द्र प्रताप सिंह
15/2 शिवनगर कालोनी,
भरद्वाजपुरम, इलाहाबाद।

अनुक्रम

			पृष्ठ
	—	प्रस्तावना	
अध्याय एक	—	सचार माध्यम	2
अध्याय दो	—	साहित्य का आदिस्रोत	8
		प्रथम सचार माध्यम—लोकनाट्य	22
अध्याय तीन	—	पत्रकारिता और साहित्य की अतरग यात्रा	35
अध्याय चार	—	इलेक्ट्रानिक मीडिया और साहित्य	70
अध्याय पॉच	—	साहित्य एव चित्रपट	101
अध्याय छ	—	रचना का अन्य माध्यम मे रूपातरण	134
अध्याय सात	—	कविता एव सम्प्रेषण के माध्यम	143
अध्याय आठ	—	साहित्य एव माध्यम सृजन एव सम्प्रेषण	155
परिशिष्ट	(क)	सन्दर्भ सूची	165
	(ख)	इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य	175

अध्याय - एक

संचार माध्यम

अध्याय - एक

संचार माध्यम

किसी से सवाद, वार्तालाप मे सहभाग, सम्भाषण, पत्र-पत्रिकाए पढना, 'आकाशवाणी' के कार्यक्रम सुनना एव दूरदर्शन, फिल्म, ड्रामा देखना आदि हमारे जीवन मे व्यवहृत विविध प्रकार के सचार है। सचार की किसी एक निश्चित परिभाषा से सतुष्ट नहीं हुआ जा सकता है। सचार की अनेक परिभाषाए दी जा सकती हैं, आक्सफोर्ड डिक्सनरी मे सचार को 'अर्थ या आशय का अन्तरण' कहा गया है। कोलिन सिद्धान्त के अनुसार 'सचार उत्तेजना का प्रसारण है'। क्लाड मेनन के विचार से 'सचार दूसरेको प्रभावित करता हुआ एक मन है' चार्ल्स ई आशगुड ने 'इसे एक निकाय कहा है जो दूसरे को प्रभावित करता है'। विल्वर स्क्रैम की दृष्टि मे यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव सम्बन्ध स्थापित और विकसित होता है अथवा उभयनिष्ठता के आधार पर अनुभवो की साझेदारी है। यदि हम गौर करे तो कह सकते है कि हम अपने विचारो, भावनाओ, आदि को अन्य व्यक्तियो के साथ भौतिक, भावानात्मक या अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सतत आदान-प्रदान करते हैं। यह भी एक प्रकार से सचार है। वस्तुत सचार हमारे जीवन का अभिन्न भाग है। यह केवल स्थैतिक क्रिया नही है अपितु किसी लक्ष्य प्राप्ति हेतु गत्यात्मक प्रक्रिया है। इस प्रकार सचार कुछ निश्चित चिह्नो या प्रतीको द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तियो मे धारणा, सूचना, ज्ञान, भगिमा, अथवा भावनाओ की साझेदारी अथवा उनका आदान-प्रदान है।[1]

जनसंचार माध्यम एवं संचार साधन

सचार मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी करते हैं किन्तु उनकी भाषा मे विकसित ध्वन्यात्मक प्रतीको की बजाय कुछ अन्य तत्व महत्वपूर्ण होते हैं यथा, उनमे कुछ शारीरिक ग्रथियो द्वारा जैवरसायनो का स्राव, अग सचालन अथवा उनके द्वारा उच्चरित कुछ विशेष ध्वनियाँ। इस प्रकार से उनमे आवश्यक सदेशो का आदान-प्रदान सभव है। किन्तु विचारो एव भावो की अभिव्यक्ति मनुष्य का व्यावर्तक लक्षण है। जीव व जगत् मे मानव अपने आपको एक विशिष्ट और उच्चकोटि का प्राणी मानता है। यह उसका

---

1 Communication is, therefore, a process of sharing or exchange of ideas, information, knowledge, attitude or feeling among two or more persons through certain signs and symbols

Introduction to communication, published by IGNOU, page-8,

दभ नहीं है क्योकि उसकी कई क्षमताएँ अद्वितीय हैं। वह विचार कर सकता है, अपने विचारो को अभिव्यक्त कर सकता है और उसने के कई ऐसे साधन विकसित कर लिए है जो उनके विचारो और चितन को स्थायित्व दे सके। ये योग्यताएँ किसी अन्य प्राणी मे नहीं है। इसी कारण मानव स्वय अपने आपको मेधावी कह सकता है। सदेश दे ओर ले सकने की क्षमता ने मानव को सामाजिक अतर्सम्बन्धो का एक विशेष स्वरूप दिया है। इस क्षमता का विकास मानवीय सम्बन्ध के क्षेत्र को विस्तारित और पुष्ट करता है। विचारो को स्थायित्व दे सकने की योग्यता जिस गति से विकसित होती गई, उसी गति से उसकी सस्कृति की विविधता और जटिलता भी बढती गयी।[2] इस दृष्टि से भाषा वह प्रथम माध्यम बना जो सवाद एव विचारो की सुरक्षा का दायित्व वहन सिद्ध करने मे मील का पत्थर साबित हुआ।

भाषा के विकास से मनुष्य का सामाजीकरण तीव्र हुआ है। भाषा की मौखिक सस्कृति ने मानव जीवन के आयामो को बदल दिया है और परम्परा को स्थायित्व देने मे आश्चर्यजनक सफलता पायी है। मौखिक परम्परा ने न केवल लोक साहित्य को जीवित रखा, उसने शास्त्रीय साहित्य को भी एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुँचाया है। यह क्रम कई पीढियो तक चलता रहा। लिपि के आविष्कार के बाद स्थायित्व का माध्यम बदल गया, यद्यपि स्मरण शक्ति की भूमिका इस स्थिति मे भी महत्वपूर्ण रही। शब्द प्रतीक होते हैं। उन्हे मौखिक से लिखित रूप देना मनुष्य की एक बहुत बडी उपलब्धि थी। मनुष्य की तीक्ष्ण और केन्द्रित हो सकने वाली दृष्टि, उसके अँगूठे की रचना तथा अँगूठे व शेष उँगलियो के सहयोग से लिपि का आविष्कार और प्रचलन सभव हो पाया। लिपि ने मौखिक भाषा का स्थान नहीं लिया, केवल उसे विस्तारित किया।[3] लिपि का आविष्कार सचार के क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसने मनुष्यों के सवाद के एक भिन्न आयाम को उद्घाटित किया। लिपि विहीन भाषाओ ने ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का वहन किया था, उनमे साहित्य के विभिन्न रूपो की रचना हुई थी और सूक्ष्म दार्शनिक चितन भी किया गया था। उस साहित्य को स्थायित्व देने मे कठिनाइयाँ थी। लिपि ने उन्हे बडी मात्रा मे दूर किया। पत्तो, मिट्टी की पतली ईटो, पत्थर, चमडे, वस्त्र आदि पर लिखकर मनुष्य ने अपने सचित ज्ञान को आने वाली पीढियो के लिए बचाने का यत्न किया। लिपि एक रहस्यमय और चमत्कारी शक्ति थी जिस पर अधिकार रखने वाले थोडे से लोगो को समाज मे ऊँचा स्थान मिला।[4] यह लिपि के विकास का प्रथम चरण था। इसके अगले चरण मे इस लिपि ज्ञान से सम्बन्धित उपरोक्त कुछ

---

2 परम्परा, इतिहास बोध और सस्कृति, श्यामाचरण दूबे, पृष्ठ 97

3 वही 'पृष्ठ 102

4 परम्परा, इतिहास बोध और सस्कृति, श्यामाचरण दूबे, पृष्ठ 103

लोगो का एकाधिकार टूटा और लिपि के ही माध्यम म ज्ञान का व्यापक प्रसार बेरोक-टोक हुआ। लिपि के आविष्कार से दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि पहले ज्ञान जहाँ दो व्यक्तियो के बीच मोखिक रूप से ही सचरित होता था वहीं अब वह पुस्तक रूप म एक पीढी म दूसरी पीढी तक सीधा पहुँच सकता था।

सचार के विविध प्रकार

कालान्तर मे कागज के आविष्कार एव तदनन्तर मुद्रण के प्रादुर्भाव से एक नवीन क्रान्ति का अभ्युदय हुआ जिससे ज्ञान को क्लास (वर्ग) से मास (जनसमूह) मे अबाध सक्रमित होने का अवसर मिला। आधुनिक शब्दावली मे इसे ज्ञान का लोकतात्रीकरण कह सकते है। इस अवस्था मे सचार मे अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले अन्तर्वैयक्तिक (Interpersonal) सचार के लिए लोगो को मेले, सभा, आदि के रूप म एक साथ एकत्रित होना आवश्यक था, वही मुद्रण के प्रचलन मे आने मे प्रतिलिपि निर्माण मे सुविधा मिली एव एक साथ कई व्यक्तिया म एक स्थान पर एकत्रित हुए बिना सामूहिक रूप से जनसचार कर सकना सभव हुआ। यही वह काल ह जहाँ से आधुनिक अर्थो मे पत्र-पत्रिकाओ के रूप मे जनसचार माध्यम के विकास का सूत्रपात हुआ। इसके पूर्व केवल अन्तर्वैयक्तिक सचार (Interpersonal communication) एव समूह सचार (group communication) ही सभव था। पत्रकारिता के प्रादुर्भाव से जनसचार (Mass communication) की अवधारणा सभव हो सकी। परवर्ती काल मे तार, टेलीफान, मोबाइल आदि अन्तर्वैयक्तिक सचार के साधन तथा ध्वनि विस्तारक यत्र एव क्लोज सर्किट टीवी आदि समूह सचार के साधन विकसित हुए जबकि जनसचार माध्यमो के रूप मे रेडियो, टेलीविजन एव सम्प्रति इटरनेट आदि का विकास हुआ। अन्तर्वैयक्तिक (Interpersonal) एव सामूहिक सचार की तुलना म जनसचार (Mass Communication) की भूमिका क्रान्तिकारी रही है।

सचार माध्यम

अन्तर्वैयक्तिक सचार, सामूहिक सचार तथा जनसचार म अन्तर है। अन्तर्वैयक्तिक एव सामूहिक सचार मे प्रत्यक्ष सवाद एव सचार होता है। इसम कोई यात्रिक साधन है भी तो उसकी मात्र सहयोगी भूमिका होती है। जबकि जनसचार माध्यम के लिए तकनीकी साधन अथवा चैनल की आवश्यकता होती है। ये चैनल ही माध्यम का रूप ले लेते है। ये माध्यम कई बार इतने महत्वपूर्ण हो जाते है कि सचार विशेषज्ञ मार्शल मकलुहान का कहना पड़ा कि 'मीडियम इज द मैसेज।' कोई भी यात्रिक साधन जो सदेश को बहुगुणित कर देता ह और एक साथ बहुत से लोगो तक उसे पहुँचा देता

है, उसे जन सचार माध्यम कहते हैं। जनसचार माध्यमा म श्रोताओ, पाठको अथवा भावको की प्रतिक्रिया अथवा पुनर्निवेशन (Feedback) अपेक्षाकृत देर मे मिलती है एव मँहगी होती है। इसका कारण श्रोता एव स्रोत के बीच चैनल या माध्यम की उपस्थिति है, जबकि अन्य दोनो प्रकार के सचार मे प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष मिल जाती है।

अन्तर्वैयक्तिक एव सामूहिक सचार मे उपयोग आने वाले दूरभाष, फैक्स, इ-मेल, मोबाइल, वायरलेस, माइक आदि सभी सचार साधन हैं। सचार माध्यम (Mass Media)एव सचार साधन मे अन्तर स्पष्ट होना चाहिए। सचार साधनो की एक विशिष्ट व्यवस्था जिसमे सदेश एक साथ अधिसख्य दर्शको, श्रोताओ, पाठको आदि तक सम्प्रेषित होता है जनसचार माध्यम कहा जाता है। जनसचार माध्यम कहने से हमारे समक्ष समाचार पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म आदि का चित्र स्पष्ट हो जाता है। जनसचार माध्यमो का उद्देश्य जनता को सूचना प्रदान करना, शिक्षित करना, एव मनोरजन प्रदान करना आदि है। माध्यम क्रान्ति से उत्पन्न सूचना विस्फोट के वर्तमान की युग मे विट्स (कम्प्यूटर स्मृति एव सचार की क्षमता) ही शक्ति का मापक है। इस दबाव मे शिक्षा का स्वरूप भी आज सूचनात्मक हो गया है। कार्यपालिका, न्यायपालिका एव विधायिका की तरह सचार माध्यम भी लोकतत्र की पूर्वापेक्षा है। इसकी महत्ता के कारण ही इसे लोकतत्र का चौथा स्तम्भ कहते हैं।

माध्यमों की भूमिका एवं प्रभाव

सूचना, शिक्षा एव मनोरजन मे इन माध्यमा की प्रभावी भूमिका है। साहित्य से इसी बात मे इसकी होड भी है। शिक्षा विस्तार मे इसके महत्व को देखते हुए अनोपचारिक शिक्षा के लिए इसको व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। इसके सामाजिक उत्तरदायित्व को देखते हुए कहा जा सकता है कि "जनसचार अपने विभिन्न रूपो एव प्रभावो द्वारा सामूहिक विवेक उत्पन्न करता है। यह सामूहिक विवेक व्यापक सहमति को जन्म देता है। व्यापक सहमति सामूहिक प्रयास की जननी होती है जिससे आज के समाज की सत्ता एव जीवन प्रणालियाँ निर्धारित, विकसित एव परिचालित होती है। सचार साधनो द्वारा प्रचारित नई सूचनाओ से समाज के मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है, समाज मे नई आशाएँ, नई आकाक्षाएँ, उत्पन्न होती है। नई अभिरुचियो, समस्याओ के नए बोध प्रकट होते हैं, प्रयोग और शुद्धिकरण की प्रवृत्ति जागृत होती है। आज के सामाजिक विकास का मुख्य अभियता सचार (जनसचार माध्यम) ही कहला सकता है।"[5]

---

5 भारतीय प्रसारण विविध आयाम, डॉ मधुकर गगाधर, पृष्ठ 18

जनसचार माध्यम शब्द भले ही नया हो किन्तु भारत मे जनसचार की अवधारणा अत्यत प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य मे इसके ढेरो उदाहरण मिलते है। सजय महाभारत मे सम्भवत दूरदर्शन जैसे ही किसी माध्यम से धृतराष्ट्र के समीप बेठकर उन्हे युद्ध के 'लाइव टेलीकास्ट' का वर्णन सुनाते हैं। पौराणिक साहित्य मे आकाशवाणी की अनेक घटनाएँ मिलती है। कस को देवकी पुत्र द्वारा अपनी हत्या की सभावना का समाचार आकाशवाणी मे ही मिलता हे ओर उस समय का आकाशवाणी निष्पक्ष एव निर्भीक समाचारो को देने मे आज से ज्यादा सभव रहा होगा जो कि उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है। ये घटनाए प्राचीन भारत मे आधुनिक सचार माध्यमो की तरह सूचना सचार तत्र के उपस्थिति का सकेत भर देती हैं। किन्तु यह निर्विवाद है कि भारत मे परम्परागत रूप से समूह सचार ही अपनाया जाता रहा है जिसमे मेले, सभा, तीर्थाटन आदि के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर सचार सभव था। यह एक सचार तत्र के रूप मे भारत की अद्वितीय विशेषता रही है जिसके कारण उत्तर भारत मे रचित रामचरित मानस अखिल भारतीय जनमानस तक पहुँच सका तथा सुधारात्मक आयाम लिए दक्षिण भारत का भक्ति आन्दोलन धुर उत्तर के धरती तक पहुॅच सका। यद्यपि लोकनाट्य के रूप मे प्राचीन भारत मे जनसचार माध्यम उपस्थित था तथापि आधुनिक काल मे पत्र-पत्रिकाओ के साथ नवीन प्रकार के जनसचार का प्रचलन शुरू हुआ जो फिल्म, रेडियो, टेलीविजन मे होकर आज के द्रुतगामी इण्टरनेट सेवा तक आ पहुँचा है। इन माध्यमो ने युगान्तरकारी परिवर्तन स्थापित करते हुए सम्पूर्ण विश्व को गाँव मे बदल दिया हैं।

इन सचार माध्यमो की समाज मे प्रभावी भूमिका के कारण आज ग्लोबल विलेज मे सूचना के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप मे स्थान मिल रहा है ओर सुदूर पिछडे अचल मे भी इन माध्यमो की अनिवार्यता महसूस की जा रही है। आज इन माध्यमो के अभाव को पिछडेपन का प्रतीक माना जा रहा है जब ये सचार माध्यम समाज के लिए अपरिहार्य हो गए ओर सास्कृतिक सदर्भ मे इनकी भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध होने लगी है तो इनका साहित्यिक-सास्कृतिक सदर्भ मे विवेचन जरूरी हो जाता है।

सचार के उपरोक्त तीन तरीको यथा अन्तर्वैयक्तिक सचार, समूह सचार एव जनसचार मे हम अपने विवेचन के लिए जनसचार माध्यमो को ही लेगे। लोकनाट्य एव फिल्म जो कि समूह सचार एव जनसचार माध्यम के बीच की कडी है इनको भी विवेचन का आधार बनाना होगा। जनसचार माध्यम को सक्षेप मे जनमाध्यम (Mass Media) या केवल माध्यम (Media)भी कह सकते है। अत· माध्यम मात्र लिखने का तात्पर्य भी जनसचार माध्यम ही होगा। जन सचार माध्यम के निम्न प्रकारो की गणना कर सकते हैं जिनके क्रम सचार माध्यमो के विकास क्रम को भी सूचित करने हैं।

(1) परम्परागत लोक माध्यम (2) प्रिन्ट मीडिया (3) फिल्म

(4) इलेक्ट्रानिक माध्यम

(क) रेडियो (ख) टी वी (ग) डिजिटल माध्यम

परम्परागत लोक माध्यम प्रथम सचार माध्यम

जनसचार का शास्त्र अपेक्षाकृत नया ह। जनमचार के कुछ शास्त्रज्ञ मुख्य रूप से जनसचार को दो वर्गो मे विभक्त करते हैं— (1) प्रिन्ट मीडिया आर (2) इलेक्ट्रानिक मीडिया। प्रिन्ट मीडिया प्राचीन है और इसका इतिहास लगभग पॉच सौ वर्षा का ह जबकि इलेक्ट्रानिक मीडिया बीसवीं सदी के तकनीकी क्रान्ति की उपज है।[6] इस तकनीकी क्रान्ति के पूर्व भी लोकमाध्यमो की समृद्धिशाली परम्परा रही है। किन्तु तकनीकी विकास के माथ-साथ इन माध्यमा की आभा धूमिल होने लगी है। जनसचार की दृष्टि से भारत मे प्राचीन परम्परागत नाट्य आर आचलिक एव जातीय लोकमाध्यमो का विशेष महत्व रहा है। मनोरजन के साथ ये मूल्या के विकाम एव सदेश-विशेष को जनसमुदाय तक सम्प्रेषित करने के सशक्त माध्यम रहे हैं। सचार के अन्य माध्यम समाज के केवल विशिष्ट वर्ग तक सीमित रहे हैं किन्तु लोकमाध्यम दूरवर्ती निरक्षर एव अभावग्रस्त समाज को भी भावो से भरने मे पूर्ण समर्थ रहे हैं। आरोपित तकनीकी विकास के कारण कुछ हद तक ये माध्यम ह्रासमान हुए और म्यूजियम की सम्पत्ति मात्र बनकर रह गए। किन्तु अन्य तकनीकी माध्यमो की सीमाओ को देखते हुए सचार की प्रभावी भूमिका बढाने के लिए सभी माध्यमा के बहुआयामी दृष्टिकोण को अपनाया जा रहा है। इससे परम्परागत लोक माध्यमो की भूमिका नि सदेह बढ जाती है।

वस्तुत इनको सचेत एव सुविचारित रूप मे प्रयोग किया जाए तो यह माध्यम विकास के लिए महत्वपूर्ण एव प्रभावी साधन सिद्ध हो सकता है। विगत चार-पॉच दशको से बिना सास्कृतिक जडो से हटे ये क्रियात्मक आयाम को उद्घाटित किए हैं। देशी-नाटक परम्परागत सस्कृति को आहत किए बिना अपने मूल गुणो के साथ नवीन सदेशो को सम्प्रेषित करने मे उपयुक्त सिद्ध हुए हैं।[7] इसी के साथ

---

6 Introduction to Communication, published by IGNOU, New Delhi, page—16

7 "When handled with care and consideration, the sensitive folk media have proved themselves to be meaningful and effective tools of communication for development During the past four or five decades they have slowly aquired a functional dimension without losing their cultural roots The rural drama, with its stock

सरक्षण एव प्रोत्साहन की भावना से प्रेरित होकर इनके कलाकार या तो अपनी अस्मिता के प्रति सचेत हुए हैं या कुछ बदलाव के साथ इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। लोकमाध्यम एव लोकनाट्य से प्रेरणा ग्रहण कर पारसी थिएटर के प्रभाव मे आधुनिक रगमच का विकास हुआ। फिल्म, दूरदर्शन एव आकाशवाणी के प्रभाव से रगमच का प्रभामण्डल कुछ निस्तेज जरूर हुआ किन्तु अस्मिता जागरण, सरक्षण एव इनके प्रति मिशनरी सगठनो के प्रयास से अभी भी ये जीवत और जागृत हैं। अत विवेचना मे परम्परागत लोकमाध्यम की अनदेखी नहीं की जा सकती है। और तो और शास्त्रीय आधार पर भी लोकनाट्य प्रथम सचार माध्यम रहा है तथा भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्रथम माध्यम शास्त्र रहा है। भारतीय समाज बहुत हद तक अभी भी परम्परागत जीवन मूल्यो से ही प्राण वायु पाता है। आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य के समक्ष विकास की विराट सभावनाओ के द्वार खोले है। किन्तु जनमानस मे इन परम्पराओ की जडें गहरी हैं। वह पूर्ण रूपेण इनसे मुक्त नहीं हो सका है। इन पारपरिक माध्यमो मे मनुष्य की उत्सवधर्मिता आज भी जीवत है। दूसरा यह कि देश का अधिकाश भाग अभी भी आधुनिक जनसचार माध्यमो की पकड के बाहर है। खासकर पूर्वोत्तर राज्यो मे जहाँ सूरज जल्दी ढलता है, वहाँ के निवासियो की दिनचर्या से दूरदर्शन व आकाशवाणी के कार्यक्रमो का समयानुकूल साम्य नहीं है तथा वहाँ तक समाचार पत्र या पत्रिकाओ की पहुँच नहीं है। इसके लिए बहुत हद तक आर्थिक अभाव भी जिम्मेदार है। निरक्षर समाज की आँखे अक्षर-ससार मे छिपी सभावनाओ से काफी दूर है। अस्तु, समाज के इन भागो मे परम्परागत माध्यम ही प्रासगिक है।

भारत की वर्तमान सचार स्थिति के अवलोकन से हम पाते है कि जनसचार के कार्यक्रम और विषय-वस्तु मुख्यत: नगरो और समृद्ध वर्ग की अभिरुचि को ध्यान मे रखकर तैयार किए जाते हैं तथा सूचना और विश्लेषणात्मक कार्यक्रमो मे स्थानीय व क्षेत्रीय मुद्दो की बजाय अन्तर्राष्ट्रीय अथवा राष्ट्रीय विषयो पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त भारत मे अन्य देशो की तुलना मे आधुनिक जनसचार माध्यमो का विस्तार अभी भी अधूरा है। अत परम्परागत लाक माध्यमो को भी उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए।

---

characters, has also carried across modern messages, without, in any way hurting the community's traditional culture"

Orgin, and development of Mass Media in India, published by IGNOU New Delhi

प्रिट मीडिया

समाचार पत्र जनता की ससद होती है जिमका अधिवेशन सदा चलता रहता है।[8] समाचार पत्रो का स्वरूप व्यापक तथा बहुआयामी होता है। पत्रकारिता जन समस्याओ से जुडी होती है। इस पर वह सरकार एव सम्बन्धित पक्ष का ध्यानाकर्षण करती है, समस्याओ पर रचनात्मक बहस कर समाधान की पृष्ठभूमि तैयार करती है। प्रत्येक पत्रिका का एक निश्चित पाठक वर्ग तथा उसका सदर्भ क्षेत्र होता है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक अथवा वार्षिक सस्करण वाली पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओ मे अपना जाल बिछाए हैं। फोटोग्राफी एव मुद्रण की विकसित तकनीको के प्रयोग से ये पत्रिकाएँ नित-नूतन छटा बिखेर रही हैं। इन पत्रिकाओ की समाज मे महती भूमिका है। जनमत निर्माण मे इनका विशेष योगदान है। इन पत्र-पत्रिकाआ का साहित्य से प्रत्यक्ष सरोकार है। कुछ पत्र-पत्रिकाए पूर्ण रूपेण समाचार प्रकाशित करती हे, कुछ स्वभाव मे साहित्यिक हैं तो कुछ इस दृष्टि से मध्यम मार्गी हैं।

साहित्य की भाँति पत्रकारिता भी समाज की विभिन्न गतिविधियो का दर्पण है। समसामयिक घटनाचक्र का शीघ्रता मे लिखा गया इतिहास पत्रकारिता कहा जाता है।[9] पत्रो की स्थान-मान वृद्धि के साथ पत्र से पत्रकारिता का जन्म हुआ, एक कला और साथ ही एक विज्ञान के रूप मे। यहीं पत्रकारिता के उस आदर्श और दायित्व की नींव पडी जिसने पत्र और पत्रकारिता को चतुर्थ सत्ता का आसन प्रदान किया।[10]

हजारो वर्ष पूर्व ज्ञान, सूचना एव समाचार के वाहक मुद्रित शब्द का प्रादुर्भाव चीन, जापान और कोरिया मे हुआ। व्यावसायिक एव व्यापक तकनीक स्तर पर इसका अनुप्रयोग यूरोप मे गुटेन वर्ग द्वारा विकसित धात्विक चल टाइप मशीन के आविष्कार के साथ हुआ। भारत मे मुद्रण गोवा मे 1556 मे प्रारम्भ हुआ। इस कला के विकास के साथ पत्रकारिता का भविष्य भी जुडा हुआ था। भारत मे पत्रकारिता की शुरूआत के अग्रेजी समाचार पत्र 'बगाल गजट' से हुई जो कलकत्ता से प्रत्येक शनिवार को प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक पत्र था। यद्यपि प्रथम भारतीय भाषा मे प्रकाशित समाचार पत्र बगाली मे कुछ समय के लिए दिखा फिर भी अबाध रूप से भारतीय भाषा मे समाचार पत्र के प्रकाश की

---

8 पत्रकारिता का इतिहास एव जनसचार माध्यम , सजीव भानावत, पृष्ठ 4

9 पत्रकारिता का इतिहास और जनसचार माध्यम, सजीव भानावत, पृष्ठ 1

10 पत्रकारिता सकट और सत्रास-हेरम्ब मिश्र, पृष्ठ 1

शुरुआत राजा राम मोहन राय ने की जो भारतीय भाषाई पत्रकारिता के जनक भी कहे जाते है।[11] कलकत्ता से प्रकाशित एव पडित युगुल किशोर शुक्ल द्वारा सपादित उदत मार्तण्ड (1826 ई) हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र है।

चलचित्र

पत्रकारिता के बाद अगले सचार माध्यम के रूप म फिल्म की शुरुआत 7 जुलाई सन् 1896 ई को हुई जब फ्रास के ल्यूमिअर बन्धुओ ने बम्वई के वाटसन होटल मे पहली बार फिल्म प्रदर्शन किया। इस फिल्म प्रदर्शन की सफलता से प्रभावित होकर जनवरी 1897 से विदेशी फिल्मो के प्रदर्शन का सिलसिला भारत मे प्रारम्भ हो गया। हरिश्चन्द्र भाटवाडेकर प्रथम भारतीय फिल्म निर्माता के रूप मे उभरे।

भारतीय कथानक पर आधारित पहली फिल्म पुण्डलीक थी जिसे आर जी तोरणे ने एन सी चित्रा के सहयोग से तैयार किया था। सबसे पहले यह फिल्म 18 मई 1912 ई को बम्बई मे प्रदर्शित हुई। यह फिल्म महाराष्ट्र के एक सत पुण्डलीक के जीवन पर आधारित थी। भारतीय चलचित्र के इतिहास मे दादा साहब फाल्के का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हे भारतीय फिल्मो का पिता कहा जाता है।[12] सन् 1930 मे भारतीय फिल्मो मे सगीत का प्रयोग शुरू हुआ और 1931 से सवाक् फिल्मे निर्मित होने लगीं। मृणाल सेन के 'भुवनसोम' से कला फिल्मो की शुरुआत हुई जिसे 'समानान्तर सिनेमा', 'नया सिनेमा' अथवा 'न्यू वेव फिल्म' के नाम से जाना जाता है।

इलेक्ट्रानिक माध्यम - रेडियो, टेलीविजन

बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे मैक्सवेल, हट्र्ज ओर मारकोनी के अथक प्रयासो से विद्युत चुम्बकीय तरगो और रेडियो सचार का आविष्कार हो चुका था। इलेक्ट्रानिकी के अन्य जटिल आविष्कारो ने आधुनिक सचार माध्यमो की आधारशिला रखी। प्रारम्भ मे विज्ञान के इन आविष्कारो का इस्तेमाल तूफानो मे फँसे नाविक प्राय अपनी सुरक्षा की पुकार अन्य लोगो तक पहुँचाने के लिए करते थे। मानव धीरे-धीरे इनके उपयोग की अन्य विधियाँ भी सोचने लगा। ध्वनि तरगो को पुन: विद्युत चुम्बकीय तरगो मे तथा विद्युत तरगो को ध्वनि तरगो मे परिवर्तित करके अनेक प्रयोग किए जाने लगे।

---

11 Elements in Mass Media, published by IGNOU, page 6

12 History of Journalism & Media of Mass Communication by Sanjeev Bhanavat, page 174

इसी बीच प्रथम विश्व युद्ध छिडा और रेडियो के विकास मे अपेक्षाकृत अधिक तेजी आई। ध्वनि की तरगे युद्ध के दौरान गुप्त सूचनाओ से लेकर प्रोपेगडा तक का माध्यम बनी। 1916 ई० मे विश्व का प्रथम रेडियो समाचार प्रसारित हुआ। सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव के बारे मे सूचना थी। समाचार पत्रो के छपने से कई घण्टे पूर्व यह खवर ध्वनि तरगो पर चढकर आग की तरह फैल गई। लोगो के मन मे पहली बार एहसास हुआ कि यह माध्यम तो मुद्रण माध्यम से कई घण्टे पहले खबर दे सकता है तो क्यो न इसका उपयोग खबरो के प्रसारण के लिए किया जाए? 1919 ई० मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे एक निगम स्थापित किया गया, नाम रखा गया था—रेडियो कार्पोरेशन ऑफ अमेरिका। अब इस रेडियो निगम के लिए प्रसारण केन्द्र की भी आवश्यकता महसूस हुई। शीघ्र ही इस्ट पीट्स वर्ग मे 'रेडियो ब्राडकास्टिग' की स्थापना हुई ओर इस प्रकार 21 दिसम्बर 1922 को विश्व के प्रथम रेडियो प्रसारण ने जन्म लिया।[13] इन्हीं दिनो ब्रिटेन मे भी 1922 मे एक प्रसारण कम्पनी की स्थापना की गई जिसका नाम 'ब्रिटिश ब्राडकास्टिग कारपोरेशनर' रखा गया।

भारत मे रेडियो के प्रसारण का प्रारभिक प्रयास जून 1923 मे शुरु होता है जब निजी स्तर पर बम्बई मे रेडियो क्लब की स्थापना की गई।[14] इसके बाद भारत सरकार एव निजी कम्पनी इण्डिया ब्राडकास्टिग कम्पनी के समझौते के फलस्वरूप ब्राडकास्टिग सेवा की स्थापना की गई जिसने प्रायोगिक तौर पर बम्बई मे जुलाई 1927 से प्रसारण शुरू किया और कुछ महीनो बाद कलकत्ता से प्रसारण प्रारम्भ हुआ।[15] इसी के साथ द्रुतगामी इलेक्ट्रानिक माध्यमो की शुरुआत हुई जो दूरदर्शन से होते हुए अद्यतन इण्टरनेट तक आ पहुँचा है। सूचना और प्रसारण मत्रालय के 1997-98 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार "देश मे इस समय (15 दिसम्बर 1977 तक) आकाशवाणी के 195 केन्द्र काम कर रहे हैं। इस समय 300 ट्रांसमीटरो की सहायता से देश मे 90% क्षेत्र मे कुल 97 3% जनसख्या तक आकाशवाणी के कार्यक्रम पहुँचते हैं।"

भारत मे दूरदर्शन की शुरुआत समाज-शिक्षा के विकास की दृष्टि से सन् 1959 मे हुई। पहली नवम्बर 1959 को दिल्ली मे प्रथम टेलीविजन स्टेशन की स्थापना हुई जिसका उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद ने किया। उस समय यह आल इण्डिया रेडियो का ही एक भाग था। दूरदर्शन पर प्रारभिक कार्यक्रम एक घण्टे के होते थे जो सप्ताह मे दो बार मगलवार एव शुक्रवार को प्रसारित

---

13 आकाशवाणी, राम बिहारी विश्वकर्मा, पृष्ठ 1

14 पत्रकारिता का इतिहास एव जनसचार माध्यम, सजीव भानावत, पृष्ठ—165

15 All India Radio 1996 Report, published by AIR, New Delhi, page 17

किए जाते थे। इनमे से चालिस मिनट के कार्यक्रम सामुदायिक केन्द्रो के लिए समाज शिक्षा के कार्यक्रम होते थे। सन् 1960 मे गणतत्र दिवस समारोह को भी दूरदर्शन पर सीधे प्रसारित करने का भी सफल प्रयास किया गया था। पहली अप्रैल 1976 को आकाशवाणी से दूरदर्शन को पृथक कर दिया गया। इस प्रकार यह दृश्य-श्रव्य माध्यम आकाशवाणी के श्रव्य माध्यम से अलग होकर पृथक इयत्ता ग्रहण कर लिया है। आज दूरदर्शन का पर्याप्त विस्तार हो गया है। खेल, ससद सत्र आदि अन्य के सीधे प्रसारण से दूरदर्शन की महत्ता बढ गई है। दूरदर्शन वार्षिक रिपोर्ट 1997 के अनुसार इस समय 57 7 मीलियन घरो मे टीवी सेट है, 296 मीलियन लोग अपने घरो मे टीवी कार्यक्रम देख सकते हैं।[16]

केबल के प्रचलन मे आने से आज टीवी चैनलो की भरमार हो गई है। प्रसारण के बाजारू स्पर्धा मे टिकने के लिए दूरदर्शन ने भी अपने कई चेनल खोल लिए है। आज इसके चैनलो की सख्या उन्नीस तक हो गई है।[17] इसके अतिरिक्त टीवी के आज पचासो चैनलो की भरमार है।

एक सम्पूर्ण माध्यम की शुरुआत डिजिटल माध्यम

सचार माध्यमो के लिए अगला चरण इलेक्ट्रानिकी के चरम उत्कर्ष का चरण है। वर्तमान सदी का उत्तरार्द्ध और आगामी सदी साइबर स्पेश का युग है जिसमे पूर्व के सभी माध्यमो के प्रतिरूप वास्तविक रूप मे कम्प्यूटर के स्क्रीन पर उतर चुके है। हिन्दी पत्रकारिता भी साइबर स्पेश मे जा चुकी है। इण्टरनेट पर पत्रकारिता की वजह से वेव अखवार की शुरुआत हो चुकी है। "आज स्थिति यह है कि कुछ भारतीय समाचार पत्रो के सस्करण नेट के सर्वश्रेष्ठ सस्करणो मे गिने जाते हैं। 1995 मे केवल 20 समाचार पत्रो के ही वेब साइट थे। अव इनकी सख्या चार हजार के करीब है। इनमे 225 एशियाई समाचार पत्र हैं। भारत मे आन लाइन मीडिया की खास विशेषता यह है कि यहाँ अधिकतर साइट भारतीय भाषाओ के हैं। एक आँकलन के मुताबिक कुछ 60 प्रकाशनो के सस्करण नेट पर मौजूद हैं, जिनमे अग्रेजी समाचार पत्रो के साइटो की सख्या केवल 18 है—शेष भारतीय भाषाओ के साइट है। भारत मे करीब सभी प्रमुख समाचार प्रकाशनो के ऑन-लाइन सस्करण मौजूद है— टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स, इण्डियन एक्सप्रेस, नई दुनिया, दैनिक जागरण, हिन्दी मिलाप, इण्डिया टुडे, डेक्कन हेराल्ड इत्यादि। इण्डिया टुडे की साइट मे बिजनेस टुडे, टीन्स टुडे, कम्प्यूटर टुडे और इण्डिया

16 Doordarshan-1997, (Annual Report) page 8

17 Vidur Journal of the Press Institute of India के 'भारत मे आन लाइन पत्रकारिता' दिनेशचन्द्र शर्मा के लेख से, पृष्ठ 41

टुडे प्लस के अलावा 'आज तक' के रोजाना बुलेटिन और 'आर्ट टुडे' और 'म्यूजिक टुडे' के साइट भी देखे जा सकते हैं। इसके अलावा छोटे समाचार पत्रो म हेदराबाद के 'हिन्दी मिलाप', मध्य प्रदेश के 'एम पी क्रानिकल' और बैंगलोर के 'सजीवनी' के सस्करण भी आन लाइन पर हैं। इसी प्रकार 'आफ्टरनून डिस्पैच', 'एशियन एज', 'बिजनेस लाइन', 'बिजनेस स्टैन्डर्ड', 'डक्कन क्रानिकल'' 'देशाभिमानी डेली', 'गोमान्तक टाइम्स', 'गुजरात बिजनेस', 'गुजरात समाचार', 'कश्मीर टाइम्स', 'लोकमत टाइम्स', 'मलयालम मनोरमा', 'नवभारत', 'द हिन्दू', 'टेलिग्राफ', 'टाइम्स आफ इण्डिया' और 'द पायोनियर' आदि समाचार पत्रो के साथ ही 'कम्पटीशन मास्टर', 'डिसकवर इण्डिया', 'फेमिना', 'फिल्मफेयर', 'फ्रन्टलाइन', 'आउटलुक', 'द वीक', 'टचडाउन इण्डिया' आदि पत्रिकाओ के भी वेब सस्करण इण्टरनेट पर मौजूद हैं। 'इन्हे देखना ओर पढना एक नया अनुभव है। यह अखबार को उसके ब्राडशीट कागज पर छपे रूप मे देखने-पढने मे एकदम अलग किस्म का अनुभव है। यह पत्रकारिता का भविष्य है। अगली सदी की पत्रकारिता मूलत साइबर स्पेश की पत्रकारिता ही होगी। इसका अर्थ यह नहीं कि कागजी अखबार नहीं होगे। वे होगे लेकिन उनकी सरचना, स्वरूप, प्रबधन, सूचना सकलन, वितरण और सचार सभी इस नए स्पेश से प्रभावित होगे और बदल जाऐगे।[18]

इण्टरनेट के स्क्रीन पर उतरने मे इलेक्ट्रानिक मीडिया एव फिल्म भी प्रिन्ट मीडिया से पीछे नहीं है। इण्टरनेट पर आज 'आकाशवाणी', 'दूरदर्शन' और 'आज तक' के वेब सस्करण उपलब्ध है। [19] विनोद चोपडा प्रोडक्सन्स की विधु विनोद चोपडा द्वारा निर्मित फिल्म 'करीब' अब इण्टरनेट पर उपलब्ध है। ''डब्लू डब्लू डब्लू करीब कॉम'' नामक इस साइट मे सब कुछ तो है—सविस्तार सूचना, सजीव वार्ता, समाचार पट, वास्तविक आडियो, गीतो की झलकियो के विडियो चित्र तथा गुनगुनाने लायक धुनो सहित सम्पूर्ण गीत। साइट तक पहुँचने पर सबसे ज्यादा प्रभावित करती है इसकी क्रमबद्धता और समूची साइट को विधु द्वारा कथा शैली मे पिरोया गया है जिससे 'करीब' के निर्माण व उसके विषय मे पूरी झलक मिलती है। इससे न केवल उत्सुकता और कोतूहल जागता है, बल्कि पात्रो का विवरण भी प्राप्त होता है तथा 'करीब' से जुडे पर्दे के आगे व पीछे के तमाम लोगो के विषय मे जानकारी अलग-अलग खण्ड मे उपलब्ध है।[20] इण्टरनेट पर फिल्म एव इलेक्ट्रानिक मीडिया का आस्वाद विशिष्ट होता है।

---

18 Vidur Journal of the Press Institute of India के 'साइबर स्पेश के जनतत्र मे सुधीश पचौरी, लेख से, पृष्ठ 38

19 दृष्टव्य इण्टरनेट का वेवसाइट WWW 123 India Com अथवा WWW Khoj Com

20 दैनिक जागरण 16 जुलाई 1998 के 'इण्टरनेट के करीब' लेख से

अखबार अथवा पत्रिकाओ के अलावा नट पर ऐसी पत्रिकाओ के साइट भी उपलब्ध है जिनका कोई छपाई सस्करण नहीं है बल्कि उनके केवल नेट सस्करण उपलब्ध है। दूसरे शब्दो मे अन्य सचार माध्यमो के वेब सस्करणो के अलावा केवल इण्टरनेट के लिए भी कई समाचार पत्र अथवा आनलाइन पत्रकारिता उपलब्ध है, जिनमे प्रमुख हैं— 'रेडिफ आन द नेट', 'इण्डिया वर्ल्ड', 'इण्डियन एक्सप्रेस', 'साइबर इण्डिया आन लाइन' 'इण्डिया आन द नेट' आदि। इन्हे 'बेवजीन' अथवा 'नेटजीन' का नाम दिया जा सकता है। साइबर स्पेश मे भारत भी किसी से कम नहीं है। इससे स्पष्ट है कि हमारे अखबार भी नवीनतम तकनीक अपनाने के लिए सदैव उत्सुक है। भारत मे इण्टरनेट के इस्तेमाल करने वालो की सख्या अपेक्षाकृत कम है। विदेश सचार निगम लिमिटेड के पास अभी एक लाख बीस हजार इण्टरनेट कनेक्शनो का रजिस्ट्रेशन है। लेकिन गेर सरकारी ऑकडा के मुताबिक इण्टरनेट तक पहुँच रखने वाले लगभग पाँच लाख लोग हैं। इनमे से अधिकाश अप्रवामी भारतीय है। फिर भी इस माध्यम की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस माध्यम को मेरी समझ से डिजिटल माध्यम नाम देना अधिक तर्क सगत होगा क्योकि इसमे डिजिट तकनीक का प्रयोग होता है।

अध्याय - दो

साहित्य का आदिस्रोत :
प्रथम संचार माध्यम-लोकनाट्य

अध्याय - दो

साहित्य का आदिस्रोत : प्रथम संचार माध्यम लोकनाट्य

परम्परागत लोक माध्यम ससार का प्रथम मचार माध्यम है। लोक माध्यम के रूप मे लोकनाट्य एव भाषायी रगमच की परपरा अत्यत प्राचीन हे। प्राचीन भारतीय समाज मे आज की तरह लोकनाट्य के रूप मे सशक्त सचार माध्यम थे ओर आधुनिक सचार माध्यम जिन उद्देश्यो की पूर्ति कर रहे है, उस युग मे उनकी पूर्ति ये लोकनाट्य, भाषायी या जातीय रगमच करते थे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी मे भूतपूर्व सरगुजा रियासत की पहाडी मे अवस्थित 'सीता बैंगा' तथा 'जोगीमारा' की गुफाओ मे पुराना प्रेक्षागृह मिलता है। आधुनिक सचार माध्यमा ने इम माध्यम को कुछ हद तक स्थानापन्न किया भी है फिर भी समाज मे इनकी भूमिका अत्यत महत्वपूर्ण थी ओर आज भी है। लोक साहित्य का अधिकाश भाग लोकनाट्य से अभिन्न रूप से जुडा रहा हे। भारतीय नाटक के जन्म की कहानी किसी-न-किसी रूप मे धार्मिक अनुष्ठानो तथा ऋतु उत्सवो से जुडी हुई है। बहुविध बाह्य विभिन्नताओ के होते हुए भी एक ही सस्कृति सूत्र मे बँधे भारतीय जनमानस की प्रमुख चिन्ता जीवन और कला साहित्य के सभी स्तरो पर सत्य की खोज की रही है। स्पष्टत ऐसे व्यापक तथा बहुआयामी जीवन सत्य को व्यक्त करने के लिए प्राचीन भारतीय नाटको मे शास्त्रीय तथा लोक दोनो स्तरो पर ऐसी रग रूढियाँ और नाट्य शैलियाँ खोजी गईं जो दृश्य होकर भी स्थूल दृश्य का अतिक्रमण करने मे समर्थ हो, सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावावेग तथा सवेदन एव विराट से विराट व्यक्ति एव घटना को मच पर प्रदर्शित करने मे समान रूप से सक्षम हो। इस प्रक्रिया मे यथार्थ के मुकावले 'नाटकीय काव्य' के महत्व को स्वीकारा गया। इस रूप मे नाटक के लिए साहित्य का सस्कार जरूरी हो जाता है।

नाटक साहित्य की अभिन्न विधा है। इसे प्राचीन काल से लेकर अब तक माना जाता रहा है। साहित्य के आधार पर ही शास्त्रीय एव लोकनाट्य के दो नाटक रूपो का प्रवर्तन एव विकास हुआ है। शास्त्रीय नाटको का सम्बन्ध उत्कृष्ट साहित्य से रहा है, तो लोकनाट्य लोक साहित्य पर अवलबित रहा है। सस्कृत साहित्य का शारिपुत्र प्रकरण (अश्वघोष), उरुभग, कर्णभार, मध्यम व्यायोग, अविमारक, चारुदत्त अभिषेक (भासकृत), मृच्छकटिकम (शुद्रक), मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् (-कालिदास), नागानन्द रत्नावली, प्रियदर्शिका (हर्ष), उत्तररामचरितम् (भवभूति), मुद्राराक्षस (विशाखदत्त), वेणिसहार (भट्टनारायण), अनर्घराघव (मुरारि), बालरामायण, बालभारत,

कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर), भगवदज्जुकम (बौधायन) तथा मत्तविलास (महेन्द्र वर्मन) आदि कालजयी रचनाओ ने समकालीन भारतीय रगमच को अनेक प्रकार से प्रभावित एव समृद्ध किया है। भरतमुनि ने नाटक को दस भागो मे बाँटा है जिसमे दो अत्यत महत्वपूर्ण है—पहला है 'नाटक' जिसका विषय इतिहास एव पौराणिक कथाओ से लिया गया हे। इमके उदाहरण है कालिदास की 'शकुन्तला' और भवभूति का 'उत्तर रामचरित'। दूसरा है 'पुराक्रम' जिसम नाट्यकार ने साधारण लोगो से सम्बन्धित विषय लिया है जैसे शुद्रक का मृच्छकटिकम्।

ऐतिहासिक कारणो से प्राचीन राज्याश्रित शास्त्रीय रगमच तथा जनाश्रित लोक रगमच की समृद्ध रगधारा मध्ययुग मे विभिन्न क्षेत्रीय रूपो मे बँटकर अनेक राजनैतिक, सामाजिक व सास्कृतिक दबावो मे क्रमश· क्षीण और लुप्तप्राय सी होती गई। इम देश मे मुसलमानी शासन की प्रतिष्ठा हो जाने पर भारतवर्ष की राजनीतिक एकसूत्रता नष्ट हो गई। देश के विभिन्न भागो मे छोटे-छोटे राजा राज्य करने लगे। मुसलमानी शासको की प्रवृत्ति साहित्य तथा नाट्यकला की ओर शत्रुतापूर्ण थी। वे इन्हे नष्ट करने मे ही अपनी वीरता समझते थे। फलत इनके शासन म नाटक-रचना तथा रगशाला का घोर ह्रास हुआ। राज्याश्रय का अभाव भी इनके पतन का कारण बना। सस्कृत साहित्य की नाट्य-परम्परा जो हजारो वर्षों से अबाध गति से चली आ रही थी,सदा के लिए नष्ट हो गई।[1] इसका प्रभाव केवल रगमच पर ही नहीं पडा अपितु साहित्य सृजन की अजस्त्रधारा भी सूखने लगी। इसी समय "भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से दो लोकधर्मी नाट्य परम्परा का जन्म हुआ— (1) रासलीला और (2) रामलीला।"[2] इसी तरह बगाल मे 'जात्रा', महाराष्ट्र मे 'तमाशा', गुजरात मे 'भवाई', उत्तर प्रदेश मे 'नौटकी', राजस्थान मे 'ख्याल' और 'फण', मध्य प्रदेश मे 'माच', कश्मीर मे 'भाडपाथर', पजाब मे 'नकल', तमिलनाडु मे 'औट-थेरू, कोथु', कर्नाटक मे 'बयालता' आदि लोकनाट्य तथा कर्नाटक मे 'यक्षगान', असम मे 'अकियानाट', केरल मे 'कुडियाट्टम, आदि अर्द्धशास्त्रीय नाट्यरूप सक्रिय एव जीवत हुए। कालान्तर मे मुगल साम्राज्य के विघटन एव ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना ने बाहर-भीतर कई स्तरो पर रगमच एव साहित्य को प्रभावित किया।

जिस प्रकार से 'भारतीय शास्त्रो ने लोक मे प्रचलित साहित्य के विभिन्न रूपो की कभी उपेक्षा नहीं की है, नवीन छन्द, नवीन गीत पद्धति, नवीन नाट्यरूपक बराबर ही लोकचित्त से छनकर उच्च

---

1 लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 145

2 लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 145

शास्त्रीय धरातल तक पहुँचते रहे हैं '.[3] उसी प्रकार लोक माध्यम के इस क्षेत्रीय रूपो ने साहित्य के प्रयोजनवती व उत्कृष्ट रूप को सम्वर्धित व सुरक्षित रखा। यह साहित्य उतना ही 'स्वाभाविक था जितना जगल मे खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छन्द था जितनी आकाश मे विचरने वाली चिडिया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितनी गगाजल की निर्मल धारा।' [4] भले ही इस ''साहित्य को किसी एक रचनाकार के नाम से नहीं जोडा जा सकता था। नि सदेह हर लाकगीत अपने आरम्भिक रूप मे किसी एक व्यक्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति रही होगी, हर लोककथा का उद्‌गम भी इसी तरह एक व्यक्ति की विस्मय भावना मे रहा होगा, किन्तु अपनी स्वीकृति आर विस्तार मे दानो 'लोक' अथवा 'जन' की सम्पत्ति बन गए और लोकचेतना ने उनमे परिष्कार, परिवर्तन ओर परिवर्धन किए।'' [5] वस्तुत इस साहित्य के लोक मे उपसरण का कारण इस माध्यम की अपनी विशेषता है। यह माध्यम पूर्णत लोकरग मे रगा हुआ होता है, लोकपरक होना नाटको की पूर्वापेक्षा है। नाटक चाहे वेद या अध्यात्म से उत्पन्न हो, वह कितने ही सुन्दर शब्दो ओर छन्दो मे रचा गया हो, वह तभी सफल माना जाता है, जब लोक उसे स्वीकार कर ले।

वेदाध्यात्मोत्पत्र तु शव्दच्छन्द स्समन्वितम्।

लोकसिद्ध भवेत्सिद्ध नाट्य लाकात्मक तथा॥[6]

अत लोक माध्यम एव साहित्य के अन्तर्सबन्धो की चर्चा मे लोकसाहित्य की उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती है।

भारतीय नाटक प्राचीन काल मे पूर्णत विकसित हो चुका था अत· 'भारतीय नाटक का इतिहास अत्यत प्राचीन है। भरतमुनि (ई पू तीसरी शताब्दी) ने अपने 'नाट्यशास्त्र' मे इस विषय का विशद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त धनजय कृत 'दशरूपक' तथा विश्वनाथ कविराज लिखित 'साहित्य दर्पण' मे इसके सम्बन्ध मे बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध मिलती है। परन्तु भरत के 'नाट्यशास्त्र'

---

3 लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 14

4 लोक सगीत की रूपरेखा, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 28

5 परम्परा, इतिहासबोध और सस्कृति, श्यामाचरण दूबे, पृष्ठ 152

6 नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 25-121

का महत्व सबसे अधिक है।'[7] ससार के प्रथम सचार माध्यम एव साहित्य दोनो ही दृष्टियो से इस ग्रन्थ की महत्ता अद्वितीय है। माध्यम की दृष्टि से महत्ता इसलिए है क्योकि तकनीक एव कला दोनो ही आधारो का उसमे सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन है। तकनीक की दृष्टि मे प्रेक्षागृह निर्माण विधि, रगशाला का नक्शा, रगमच और दर्शको के बैठने का विधान, लकडी की साज सज्जा, अलग-अलग दिशाओ मे देवताओ की स्थापना (अध्याय 2) तथा उसकी विधि, रगप्रदीपन (अध्याय 3), वादकों के बैठने की व्यवस्था, खाल वाले अवनद्ध वाद्य (अध्याय 34), सुषिर वाद्य (अध्याय 30) आदि का विस्तृत विवेचन है तो कला की दृष्टि से नृत्य (अध्याय 4), शारीरिक मुद्राए (अध्याय 9), आहार्य अभिनय (अध्याय 21), बागाभिनय (अध्याय 14), चित्राभिनय (अध्याय 25), अभिनय (अध्याय 8 एव 22) व अभिनय करने वाले पात्र की अभिनय प्रकृति (अध्याय 26), प्रदर्शन से पूर्व तथा आरम्भ की क्रिया पूर्वरग (अध्याय 5), गुण दोष विचार (अध्याय 33), मच पर घूमने तथा मण्डलाकार प्रस्तुति के विधान (अध्याय 11), मच पर प्रवेश का नियम (अध्याय 12, 13), प्रदर्शन प्रयोग की शैलियॉं (अध्याय 18) बोलने की वृत्तियॉं (अध्याय 20) आदि विषयो पर छोटी-से-छोटी बातो का भी उचित निर्देशन है। सचार माध्यमो के अद्यतन विकसित युग मे आज भी किसी माध्यम का इतना विशुद्ध विकसित एव सर्वांगीण शास्त्र नहीं है जितना कि नाटक का था।

साहित्य की दृष्टि से 'नाट्यशास्त्र' साहित्य का आदि स्रोत है। साहित्य का बीजरूप वेदो मे भले मिल जाए, किन्तु साहित्य के लिए नाट्यशास्त्र उसके अध्ययन का प्रस्थान बिन्दु है। नाट्यशास्त्र से ही साहित्यशास्त्र विकसित हुआ है। ''यदि नाट्यशास्त्र न लिखा गया होता तो सैकडो शताब्दियो तक लिखे जाने वाले काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ शायद लिखे ही न जाते। काव्य की परिभाषा, काव्य के अलकार, काव्य के गुण-दोष, काव्य के लक्षण, छन्दशास्त्र तथा अनेक काव्यो का मूल यही ग्रन्थ रहा है।''[8] ''इस ग्रन्थ की महत्ता का इससे बडा और क्या प्रमाण हो सकता है कि इसने काव्य और कला की दो परम्पराओ को एक साथ जन्म दिया-प्रथम काव्य शास्त्र तथा दूसरा नृत्य सगीत शास्त्र। इस ग्रन्थ की छाया पर प्रत्येक शताब्दि मे बहुमूल्य ग्रन्थो की रचना होती रही।''[9] काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे इस ग्रन्थ ने

---

7 लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 144

8 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 67

9 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 67

'काव्य प्रकाश' (आचार्य मम्मट), रसार्णव सिन्धु (सिंह भूपाल), शृगार प्रकाश, सरस्वती कण्ठाभरण (भोजराज), प्रतापरुद्र (यशोभूषण), साहित्य दर्पण (आचार्य विश्वनाथ), काव्यानुशासन (हेमचन्द्राचार्य), व्यक्तिविवेक (महिमभट्ट), रसगगाधर (पडितराज जगन्नाथ) आदि ग्रन्थो के प्रणयन की प्रेरणा दी। 'भरतशास्त्र' (नाट्यशास्त्र) की विषय-वस्तु न केवल नाट्यविषयक अपितु काव्यविषयक ग्रन्थो के लिए भी अपरिहार्य बन गई। काव्यशास्त्रीय परम्परा के आचार्यो ने अपने काव्य विषयक ग्रन्थो मे इसके विषयवस्तु का भरपूर प्रयोग किया।[10]

नाट्यशास्त्र के अन्तर्वस्तु के अवलोकन से हम पाते है कि इसके सेतीस अध्यायो के 6000 श्लोको का अधिकाश भाग भाषा और साहित्य को समर्पित है। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय मे साहित्य की रसप्रक्रिया के अन्तर्गत भाव, विभाव एव रस आदि के सम्बन्धो एव साहित्य के रसास्वादन का मनोविज्ञान सम्मत विवेचन है। रसानुभूति की प्रक्रिया पर प्रकाश डालने वाले अत्यत छोटे किन्तु महत्वपूर्ण सूत्र 'विभावानुभाव व्याभिचारि सयागाद्रस निष्पत्ति ' की शकुक, भट्टनायक, भट्टतौत, भट्टलोलट, अभिनवगुप्त, गोविन्द ठक्कर, नान्यदेव, विश्वनाथ, पडितराज जगन्नाथ आदि सस्कृत आचार्यो ने विस्तृत व्याख्या की। इसी क्रम मे हिन्दी के समालाचका यथा रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दर दास, बाबू गुलाबराय, डॉ भगीरथ मिश्र, डॉ नगेन्द्र आदि ने भी बहुत कुछ लिखा है। इसकी महत्ता है कि यह रस सिद्धान्त साहित्य सृजन की अद्वितीय कसोटी रही है। चौदहवे अध्याय मे वागाभिनय के अन्तर्गत अक्षरो के रूप, उच्चारण स्थल, शब्द के लक्षण, घोष-अघोष ध्वनियाँ, विभिन्न प्रकार के छन्द बनाने के नियम, समवृत्त तथा विषमवृत्तोके रचनाविधान आदि पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार यह अध्याय भाषाशास्त्रीय विश्लेषण एव काव्य के रूप विधान को समर्पित है। पन्द्रहवे एव बत्तीसवे अध्याय मे छन्दो का सोदाहरण रचनाविधान प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न अलकार, काव्यगुण, काव्यदोष आदि का सोलहवे अध्याय में विवेचन है। इसमे रसो के अनुसार काव्य रचना के लक्षणो पर प्रकाश डालते हुए रचनाकारो को यह निर्देश दिया गया है कि नाट्य के सवाद व कथानक मे बोधगम्य, सरस, ललित एव मृदु शब्दो का प्रयोग करना चाहिए। उन्नीसवे अध्याय मे कथानक का शास्त्रीय विवेचन है। इस अध्याय मे लेखक ने आधिकारिक एव प्रासगिक कथाओ का भेद करते हुए कथानक की पाँच कार्यावस्थाएँ, पाँच सन्धियो तथा पाँच अर्थ प्रकृतियो को समझाया है। इसके अनन्तर गीत

---

10 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 55

प्रस्तुति के नियमो को समझाया गया है। अध्याय उन्तीस मे भी गीतो के लक्षण और उनके प्रयोग की पद्धतियो को बताया गया है। यह विवेचन नाटक के सदर्भ मे भले ही है किन्तु यह साहित्य का आधार भी रहा है। नाट्यशास्त्र के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य इस माध्यम का सहवर्ती बनकर नि सृत हुआ। इसके अतिरिक्त इसकी दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि 'नाट्यशास्त्र' एव अन्य ऐसे कतिपय ग्रन्थ उस समय के सर्जनात्मक लेखन (Creative Writing) मे प्रशिक्षण के लिए लिखे गये शास्त्र की तरह हैं जिसने हजारो वर्षों तक रचनाकारो एव अभिनेताओ का मार्गदर्शन किया है।

नाट्यशास्त्र की अन्तर्वस्तु का अधिकाश भाग साहित्य की अमूल्य धरोहर एव अपरिहार्य भाग है। आज आधुनिक साहित्य के युग मे काव्यशास्त्र के कुछ भाग अप्रासगिक दिखते हैं फिर भी भाषा एव साहित्य को समझने के लिए नाट्यशास्त्र द्वारा स्थापित सिद्धान्तो को समझना आवश्यक है। यह भी स्पष्ट है कि इस माध्यम ने साहित्य एव साहित्य के सस्कार को लोक मे उतारकर साहित्य के प्रति माध्यम की सहयोगी भूमिका का निर्वाह किया। इस रूप मे नाट्यशास्त्र एव ऐसे अन्य ग्रन्थ लोक एव शास्त्र के सेतु रहे हैं। लोकनाट्य वर्ण-वर्ग, शिक्षित-अशिक्षित, गँवार-अभिजात, स्त्री-पुरुष आदि भेदो से मुक्त लोकरजनकारी कला थी। इससे जुडे रगकर्मियो ने भारतीय सस्कृति की रचनात्मकता को मजबूत करने मे अपना अनन्य योगदान दिया। भक्ति आन्दोलन की तरह 'वर्ण व्यवस्था के कठोर काल मे भरतो (भरत वस्तुत आगे चलकर जाति वाचक शब्द के रूप मे प्रयुक्त होने लगा, जिसकी चर्चा आगे की गई है) ने शुद्रो के अधिकारो के लिए पचमवेद अर्थात् नाट्यशास्त्र की रचना की। भरतो की महानता इसमे थी कि इन्होने सवर्णों की न निन्दा की और न उनके प्रतिकूल कोई आचरण किया। भरतो ने सवर्णों के विरुद्ध एक ललित आन्दोलन छेडा। एक नये आधार को ग्रहण कर लोक की चित्तवृत्ति को कलात्मक सौंदर्य की ओर आकर्षित किया। उनकी कला सम्पदा के लालित्यपूर्ण वैभव ने जन-मन के हृदय पर सहज ही अधिकार कर लिया और समाज का प्रत्येक छोटा-बडा वर्ग उनकी कला का प्रेमी हो गया। बिना भेद-भाव के समाज के हर वर्ग का प्राणी उनका प्रशसक बन गया। उस युग की परिस्थितियो मे यह कोई छोटा काम न था। भरतो का यह प्रयास इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।'[11]

'भरत का प्रयोग धीरे-धीरे दर्शन, अध्यात्म और धर्म की सरिताओ मे स्नान करता हुआ ऊँचाई के उस शिखर पर पहुँच गया जहाँ इसका लक्ष्य दर्शको का मात्र मनोरजन करना ही नहीं था अपितु

---

11 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 63

दर्शको की चित्तवृत्ति को संस्कारित करने का एक [illegible] गया, सभ्य और आदर्श लोकवादी समाज रचना का एक प्रकल्प सिद्ध हुआ, सवेदनशील ओर निष्कलक मानव की रचना का एक कलात्मक अनुष्ठान बना। उसका प्रयोग केवल दिखाने के लिए नही अपितु समाज के परिष्कार एव विकास के लिए प्रेरणा का पीयूष बहाने के लिए है।'[12] वस्तुत किसी भी माध्यम क्रान्ति का आदर्श यही हो सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस माध्यम ने साहित्य के सस्कार को अपना कर उच्चादर्श प्रस्तुत करते हुए समाज के प्रति उसी उत्तरदायित्व का निर्वहन किया जो कि साहित्य करता। सूचनात्मक कार्य के अतिरिक्त साहित्य भी लगभग वही कार्य करता है जो सचार माध्यम करते है। अस्तु साहित्य से पृथक कर इस माध्यम को देखना इन दोनों के प्रति अन्याय है।

इस लोक माध्यम नाट्य से जुडे लाग स्वय रचनाकार रहे हैं इसका उदाहरण प्राय नहीं मिलता है। जिस 'नट' शब्द से 'नाट्य' या 'नाटक' शब्द की उत्पत्ति है उसके बारे मे कहा जाता है कि 'प्राचीन भारत मे नट नामक एक प्राचीन जाति थी। ये लोग ढोल बजाकर अपने शरीर के कौतुक से जनता का मनोरजन किया करते थे। यह घूमने वाली यायावर जाति थी। लय और ताल का इनको स्वाभाविक ज्ञान था और अग-विक्षेप अर्थात् शरीर के किसी भी भाग को किसी भी दिशा मे घुमाने-चलाने का इन्हे अभ्यास था। वह भी शरीर को लय के साथ सचालित करने मे इन्हे महारत हासिल थी। बहुत से विद्वानो ने 'नाट्यशास्त्र' मे वर्णित 'नट' शब्द का अर्थ अभिनेता किया है। इस सम्बन्ध मे यह बात समझ लेनी चाहिए कि नटो का वर्ग पहले अलग था। वाल्मीकि कृत 'रामायण' मे, चाणक्य के अर्थशास्त्र मे नट, नर्तक, गर्न्धव शब्दो का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इसका मतलब साफ है कि तब तक समाज मे 'नट' और 'नर्तक' दोनो वर्गो की पहचान अलग हो गई थी। यह भी सत्य है कि नटो का वर्ग धीरे-धीरे नाट्य प्रदर्शन से जुडता गया।'[13] 'अब यह समझने के लिए काफी चीजे हमारे सामने है कि 'नाट्यशास्त्र' नटो का शास्त्र है। नटो को शुद्र कह कर आर्यसस्कृति के पक्षधरो ने उन्हे अपने से दूर रखा। 'नट' भारतीय मूल के थे, अत इन्होने किसी समय स्वय को भरत कहना प्रारम्भ कर दिया।'[14] स्पष्टत नाट्य के सदर्भ मे भरत एक जातिवाचक शब्द है। नाट्यकोविद भरतो की परम्परा ईसा के जन्म

---

12 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 69, 88

13 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 44

14 भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ ब्रजवल्लभ मिश्र, पृष्ठ 49

से कई हजार वर्ष पूर्व भारत मे विकसित ही नहीं लोकप्रिय हो चुकी थी। भरत लोग नाट्य विद्या के विशेषज्ञो के रूप मे लोक मे प्रसिद्धि पा चुके थे। ये लाग गायन, वादन, नर्तन तथा अभिनय मे पारगत होते थे। प्राचीनकाल की गुरुशिष्य परम्परा के अनुसार इन्हे पीढी दर पीढी रगकर्म की समस्त विधाओ का सर्वांगीण प्रशिक्षण दिया जाता था। यह प्रशिक्षण श्रुत एव कण्ठ परम्परा पर आधारित था। गायन, वादन, नर्तन तथा अभिनय का सम्बन्ध प्रयोग पक्ष से जुडा होता था। अत इस क्षेत्र मे श्रुतज्ञान के साथ-साथ प्रशिक्षण लेने वालो को व्यावहारिक शिक्षा लेनी पडती थी। इस प्रकार इस लोक माध्यम से जुडे लोग सचार विशेषज्ञ तो थे किन्तु स्वय रचनाकार नहीं थे। इसके बावजूद लोक माध्यम एव साहित्य का सुदर समन्वय था। यह आज के सचार माध्यम से जुडे लागो के लिए आदर्श हो सकता है जिससे तकनीकी क्रान्ति के साथ-साथ समाजोपयोगी माध्यम क्रान्ति खडी की जा सके।

कालान्तर मे क्षेत्रीय लोक माध्यमो के प्रभुत्व क बाद पुन जब लोकनाट्य का उपयोग शुरू हुआ तो उस समय रचनाकार एव इस माध्यम से जुडे लोगा के बीच एक अन्तराल उपस्थित हो गया, नाटककार एव रगमच के बीच एक दूरी स्थापित हो गई। पारसी थियेटरो ने व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाकर इसके बीच की खाई को और बढा दिया। देखते ही देखते पारसी थियेटर सम्पूर्ण भारत पर छा गया। उधर काशी मे अव्यावसायिक रगकर्म की दृष्टि से प्रथम आधुनिक भारतीय नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ जिन्होने रगमच को एक नया मिशन दिया। इसके लिए इन्होने रचनाकारो की एक मडली तैयार की। भारतेन्दु ने पूर्ण, अपूर्ण, मौलिक तथा अनुवादित सब मिलाकर सत्रह नाटक रचे, 'नाटक' शीर्षक से एक लम्बा निबन्ध लिखा (1883)— जो हिन्दी आलोचना का आधार शिला कहा जा सकता है— और बडी बात यह कि नाटक और रगमच को अभिन्न मानकर उन्होने स्वय और अपनी मित्र मण्डली के माध्यम से नाटको के अभिनय को बरावर प्रोत्साहन दिया।[15] "यहाँ उल्लेखनीय है कि हिन्दी क्षेत्र मे पारसी नाटक मण्डलियो की स्थिति से ये लेखक परेशान थे। उनकी लोकप्रियता से उन्हे स्पर्धा थी, पर उसके फुहडपन से वे उतने ही क्षुब्ध थे। 1871 ई के आसपास बम्बई से आरम्भ इस व्यावसायिक रगमच प्रणाली ने अधिकतर दो प्रकार के नाटक अपनाए-धार्मिक और इश्क सम्बन्धी। सामान्य जनता की इन दो मूलवृत्तियो को सतुष्ट करके ये अपना व्यवसाय चलाते थे। इन पारसी कम्पनियो का दौर प्राय 1930 ई० तक बना रहा, जब सिनेमा के बढते प्रभाव मे ये समाप्त हो गईं।

---

15 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 101

पारसी नाटकों के विरोध में स्वयं भारतेन्दु (द्रष्टव्य 'नाटक' शीर्षक निबन्ध) और उनके सहकर्मियों ने बहुत लिखा, पर उनके कुछ लटको को उन्होने स्वीकार भी किया। यह उनके मन मे स्पष्ट हो गया था कि अधिकाश मे निरक्षर जनता के बीच पैठने के लिए रगमच तथा लोक माध्यमो से उपयुक्त कोई और प्रणाली नहीं है।''[16] निश्चित ही इसके पीछे नाटक के सम्प्रेषण पक्ष पर भारतेन्दु युगीन लेखको का ध्यान अधिक था क्योकि सम्प्रेषण के अभाव मे नाटक की सार्थकता कम हो जाती है। इन लेखको मे नाटक के प्रति मिशनरी भाव किस हद तक था इसका पता इस बात से लगाया जा सकता था कि इस मण्डली के लेखक प्रताप नारायण मिश्र ने शकुतला के अभिनय के लिए अपने पिता से मूछ मुडाने की आज्ञा ले ली। इस रूप मे इन रचनाकारो ने इस लोकमाध्यम के सार्थक उपयोग के नाटक रचे एव स्वय उनके प्रदर्शन के लिए पहल भी किया।

जयशकर प्रसाद तक आते-आते नाटक की स्थिति विचित्र हो गई। ''नाट्य सभावना उनकी रचनाओ मे सर्वाधिक है, उनके नाटको मे सीधी-सपाट भाषा की तुलना मे लाक्षणिक और अधिक अर्थसम्पन्न भाषा का प्रयोग हुआ। जैसे प्रेमचन्द के हाथो से उपन्यास ने अपना उत्कर्ष प्राप्त किया उसी तरह जयशकर प्रसाद के हाथो मे नाटक सम्पूर्ण साहित्यिक गौरव पा सका। पर रगमच से विछिन्न रहकर उसकी सभावनाए पूरी तरह सम्पन्न नहीं होती। प्रकारान्तर से माध्यम एव साहित्य अर्थात् नाटक एव रगमच के बीच सम्बन्ध का विवाद सर्वप्रथम प्रसाद द्वारा ही उठा जब प्रसाद जी ने अपने 'रगमच' शीर्षक निबन्ध मे लिखा 'यह प्रत्येक काल मे माना जायेगा कि काव्यो के अथवा नाटको के लिए ही रगमच होते हैं। काव्यो की सुविधा जुटाना रगमच का काम है रगमच के सदर्भ मे यह भारी भ्रम है कि नाटक रगमच के लिए लिखे जाएँ, प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रगमच हो।'[17] यह अकारण नहीं कि नाटक अब रगमच से अलग हटकर शुद्ध पठनीय हो गया। यह माध्यम से पृथक साहित्य की स्थिति है। लोकमाध्यम एव साहित्य का अन्तरावलम्बन कम हो गया। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि नाटक जनता से दूर हो गया। ''प्रसाद के समय से ही धीरे-धीरे नाटक दृश्य के बजाय पाठ्य अधिक होता जा रहा था, सेठ गोविन्द दास तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक उदाहरण हैं। बाद के कुछ नाटककारो ने बलपूर्वक इस गलत प्रवाह को मोडा और हिन्दी रगमच को पुनरुज्जीवित

---

16 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 108

17 दृष्टव्य प्रसाद जी का 'रंगमच' शीर्षक निबन्ध

करने का यत्न किया। कुछ अन्य नाटककार नाटक को महज किताब मानकर लिखते रहे। नाटक को रगमच के साथ फिर से जोडने मे उपेन्द्र नाथ 'अश्क', जगदीश चन्द्र माथुर, और भुवनेश्वर ने विशेष रूप से प्रयास किया। अश्क ने व्यावहारिक रगकर्म मे भी बराबर रुचि ली। रगमच को सक्रिय करने के लिए एकाकी नाटक लिखे गए, जिस दौर को शुरू करने और गति देने मे रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है।[18] सन् 1950 के बाद धर्मवीर भारती (अधायुग), मोहन राकेश (आधे अधूरे, आषाढ का एक दिन, लहरो के राजहस) एव सुरेन्द्र वर्मा (आठवा सर्ग, सूर्य की अतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक) आदि ने भी अपनी रगधर्मिता को साहित्यिक उत्कर्ष प्रदान किया।

स्वतत्रता के पूर्व स्थापित 'इप्टा' ने रगकर्म के क्षेत्र मे पारसी थियेटर से खडी चुनौती का सामना किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत मे 'केन्द्रीय सगीत नाटक अकादमी', 'एशियाई नाट्य सस्थान', 'अनामिका' 'थिएटर यूनिट' 'थिएटर ग्रुप', 'श्री आर्टस क्लब', 'लिटिल थिएटर ग्रुप', 'दिल्ली आर्ट थियेटर', 'लखनऊ रगमच', 'इलाहाबाद आर्टिस्ट एसाशिएसन', 'नाट्य केन्द्र, 'श्री नाट्य वाराणसी', 'भारतीय कला मदिर' आदि सस्थाओ का उद्गम हुआ और इसने रग आन्दोलन को नई शैली प्रदान की। रगकर्म के इस प्रयोगधर्मी युग मे शभुमित्र, बादल सरकार, मोहित चटर्जी, अण्णा साहब किर्लोस्कर, विजय तेन्दुलकर, चित्रय खानोलकर, बी वी शिखाद्कर, सतीश अतिकर, सत्यदेव दुबे, डॉ श्रीराम लागू, के एस कारत, गिरीश कर्नाड, विजय मिश्र, गोपाल डे, रतन थियम, पाणिकर, श्री शकर पिल्लई, सी डी सिद्धू, हबीब तनवीर आदि प्रसिद्ध रगकर्मियो ने रगकर्म को नवीन आयाम दिया।

हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक अवलोकन से हम पाते हैं कि हिन्दी गद्य साहित्य की वास्तविक शुरुआत नाटको से हुई। इसको रेखाकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखा कि, 'विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का प्रवर्तन नाटको से हुआ'[19]। इसके आगे उन्होने भारतेन्दु के कृतित्व मे नाटको की केन्द्रीय स्थिति को स्पष्ट किया। 'अभिनय के सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि स्वय भारतेन्दु तथा उनके अनेक मित्र रगमच पर भूमिकाओ मे उतरते थे तथा अन्य रूपो मे रगकर्म को प्रोत्साहन देते थे।' [20] 'भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित आधुनिक काल

---

18 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 255।

19 दृष्टव्य हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

20 दृष्टव्य हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

मे एक ओर पश्चिम की नयी चेतना से सम्पर्क का यत्न है, तो दूसरी ओर अपने लोक जीवन से जुड़े रहने की उतनी ही उत्कृष्ट लालसा है। पत्र-पत्रिकाओ के आयोजन मे यदि एक उद्देश्य की पूर्ति होती है तो, नाटक और लोक काव्यो के प्रचार-प्रसार से दूसरे उद्देश्य की। यही कारण है कि इस युग के लेखकीय कार्यक्रम मे तीन अग बराबर मिलेगे—पत्रकारिता का निरतर आयोजन, नाट्य लेखन और अभिनय तथा कजली-लावनी जैसे स्थानीय लोक माध्यमो का सवर्द्धन। यह लोक जीवन से जुडे रहने की चिता भारतेन्दु युगीन हिन्दी लेखक को पश्चिमी सस्कृति के प्रवाह मे बहने नहीं देती।[21]

यदि साहित्य का सरोकार सामाजिक चेतना से है तो सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए लोकनाट्य सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है क्योंकि नाटक अपने स्वभाव से ही सामाजिक है। यह सयोग ही है कि नाटक के दर्शको को 'सामाजिक' की सज्ञा दी जाती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे कलावादी आन्दोलनो से पृथक साहित्य का सरोकार समाज मे जिस काल मे अधिक रहा है तो वह काल प्रथमत. भक्तिकाल और दूसरा पुनर्जागरण काल रहा है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि अन्य काल खण्डो की तुलना मे इन युगो मे नाटको की रचना सर्वाधिक हुई। किन्तु कालान्तर मे परिवेश की जटिलता के कारण एक नवीन औपन्यासिक विधा की खोज हुई। नये सामाजिक सन्दर्भों मे उपन्यास भी उसी ऊचाई पर पहुँचने का प्रयास किया जहाँ पर पहले नाटक पहुँचा था। ऐसा हुआ भी यही कारण है कि जहाँ पहले नाटक को 'दृश्यकाव्य' कहा गया था, वहीं अब उपन्यास को 'आधुनिक युग का महाकाव्य' कहा जाने लगा। इसके पूर्व साहित्य मे प्रमुख विधा काव्य के बाद दूसरा स्थान 'नाटक' का था, अब 'कविता'' के बाद उपन्यास आ गया फिर नाटक।

नाटक साहित्य की एक विधा है। प्रत्येक विधा अपने कथ्य के लिए अपरिहार्य हो जाती है। वस्तु के अनुसार हम रूप तलाशते हैं। रचनाकार का सृजनात्मक दवाव उसे अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी बनाता है, उसे सदैव सम्प्रेषण की चिन्ता रहती है। इसलिए वह सतत् उस भाव, अन्तर्वस्तु अथवा कथ्य के अनुसार विधा की तलाश करता रहता है। अत निश्चित ही जो श्रेष्ठ नाटक है, उसका कथ्य किसी अन्य विधा के लिए उपयुक्त नहीं रहा होगा जिससे कि वह नाटक मे व्यक्त हुआ है। नाटक साहित्य की वह विधा है जो अधिक से अधिक लोगो तक पहुँचने के लिए दर्शको की तलाश करती है। श्रेष्ठ नाटक अपनी व्यजना शक्ति के कारण साहित्य को उस ऊचाई तक पहुच जाता है जहाँ पर कविता की

---

21 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 108।

अद्वितीयता है। कुछ अर्थों मे कविता साहित्य की सभी विधाओं का आदर्श है किन्तु कविता का शब्दों के पार जाने के लिए भी शब्द अपरिहार्य है। नाटक इससे भिन्न है। वह उस ऊचाई तक शब्द के अतिरिक्त अभिनय से भी पहुँचने का प्रयत्न करता है। यह अकारण नहीं कि विश्व की कई श्रेष्ठ कविताए नाटक के रूप मे लिखी गईं। यह नाटक का सस्कार है जो उसे रगमच पर उतरने के लिए बाध्य करता है और नाटक के 'पाठ' को रगमच के माध्यम की तलाश रहती है।

अध्याय - तीन

पत्रकारिता और साहित्य की अंतरंग यात्रा

अध्याय - तीन

पत्रकारिता और साहित्य की अन्तरंग यात्रा

पत्रकारिता का सम्बन्ध जनसचार माध्यम से है जो मुख्यत हमारे वर्तमान युग की उपज है। दूसरी ओर साहित्य है, जो युगातर से चले आने वाले कला माध्यमो के बीच अब भी प्रमुख और केन्द्रीय माध्यम है। जनसचार माध्यम एक प्रकार से कलाओ के प्रसारण एव प्रकाशन से सम्बन्धित है। सस्कृति की उपलब्धियाँ अब शिष्ट समुदाय तक सीमित नहीं मान ली जातीं, वरन् उनका सचरण बडे वेग के साथ नीचे की ओर होता है। जनसचार माध्यम इसके सचरण मे सहायक होते है।[1] पत्रकारिता भी यह भूमिका बखूबी निभाती है। लिखित शब्द के प्रमुख वाहको के रूप मे पत्र-पत्रिकाएँ आज के साहित्य-सृष्टि को पाठक वर्ग तक पहुँचाने के लिए अनिवार्य और महत्वपूर्ण है। कहानी, कविता, आलोचनात्मक तथा ललित निबन्ध, एकाकी बल्कि उपन्यास ओर नाटक तक कोई ऐसी साहित्यिक विधा नहीं है जिसमे रची गई साहित्यिक कृति सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही पाठक वर्ग तक न पहुँचती हो, चाहे वे दैनिक, साप्ताहिक समाचारपत्र हो अथवा विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ, बल्कि बहुत सी रचनाएँ तो पुस्तकाकार प्रकाशित ही नही हो पातीं या बहुत देर से प्रकाशित होती हैं, और साहित्य मे उनका प्रभाव और मूल्याकन पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशन के आधार पर ही होता है।[2] हस, सरस्वती, चाँद और धर्मयुग आदि कुछ ही पत्रिकाओ का सर्वेक्षण कर ले तो उनमे प्रकाशित मात्र दस प्रतिशत रचनाएँ ही है जो पुस्तक रूप मे आ सकीं। यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि पत्र-पत्रिका के किसी एक अक मे प्रकाशित केन्द्रीय धारा का कुछ साहित्य उस अक के साथ ही समाप्त हो जाता है। उदाहरण स्वरूप प्रेमचन्द के साहित्यानुसधान मे कुछ रचनाएँ ऐसी मिलीं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुई थीं। यदि उनकी खोज न की जाती तो वे मौलिक कृतियाँ प्रकाश मे न आ पातीं।[3]

---

1 माध्यम, मई 1964 मे प्रकाशित लेख-साहित्य और पत्रकारिता, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 10

2 वही, नेमिचन्द्र जैन, पृष्ठ 10

3 डॉ0 कमल किशोर गोयनका से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य' योगेन्द्र प्रताप सिह

आज लिखित शब्द के सप्रेषण के साथ पत्रकारिता इस प्रकार जुडी है कि सर्जनात्मक साहित्य को किसी स्तर पर उससे अलग कर सकना प्राय असभव है। किन्तु इस सबध और परिस्थिति ने जहाँ साहित्य को एक विशाल अकल्पनीय पाठक समुदाय से जोड दिया है वही साहित्य की सृष्टि और उसके उद्देश्य के सबध मे ऐसी भ्रान्तियाँ भी उत्पन्न कर दी हैं जिसके कारण साहित्य का अस्तित्व और उसका स्वरूप ही बहुत बार सकटग्रस्त जान पडता है।[4] इसलिए विवेचना मे पत्रकारिता और साहित्य के सबध का जरूरी सन्दर्भ उठ खडा होता है।

समाचार-पत्रो के आने से पहले लिखने-पढने का आशय सिर्फ काव्य या साहित्य तक परिसीमित था। लेखक शब्द का मतलब था कवि या साहित्यकार। समाचार पत्रो अथवा मैगजीनो के लिए जानकारी से भरे साधारण लेख लिखने वालो को तो आज भी लेखक नहीं कहा जाता क्योकि इस शब्द ने परम्परा से जो अर्थ ग्रहण की है वह आज भी केवल काव्य अथवा साहित्य लिखने के अर्थ तक सीमित है। अग्रेजी मे भी राइटर शब्द का अर्थ काफी कुछ हिन्दी के लेखक शब्द के अर्थ की तर्ज पर ही विकसित और स्थापित हुआ है। लिखने का दूसरी तरह का काम करने वालो को अग्रेजी मे जर्नलिस्ट कहा जाता है, जिसका हिन्दी मे अनुवाद है पत्रकार। यह लिखने का मकसद यह साबित करना है कि पत्रकारिता का साहित्य के साथ अपने जन्मकाल स ही बहुत गहरा सम्बन्ध है, ओर जैसे-जैसे साहित्य और पत्रकारिता का विस्तार हो रहा है यह सम्बन्ध ओर भी ज्यादा गहरा होता चला जा रहा है। अब तो कई जगह से यह आवाज भी उठने लगी है कि पत्रकारिता को भी साहित्य की तरह रचनात्मक कार्य माना जाए और उनका सवन्ध सस्कृति के शब्द की शक्ति पर आश्रित पहलुओ के साथ जोडा जाए। जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है आरम्भ मे साहित्यिक ओर राजनीतिक पत्रकारिता एकाकार थी[5] कालान्तर के व्यावसायिक दबाओ ने उसमे एक अन्तराल उपस्थित किया है।

अन्तर्सबध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

पत्रकारिता और साहित्य के अन्तरावलम्बन के लिए यह जानना आवश्यक है कि हिन्दी के दिग्गज साहित्यकारो का पत्रकारिता से क्या सम्बन्ध रहा है, तथा उन्हाने साहित्य लेखन के साथ पत्र-पत्रिकाओ के सपादन मे अपना समय और धन क्यो जाया किया?

---

4 माध्यम, मई 1964 में इस विषय पर प्रकाशित परिचर्चा से, पृष्ठ 10

5 'जनसचार' सम्पादित राधेश्याम शर्मा के 'माध्यम आर भाषा' डॉ0 प्रभाकर माचवे, के लेख से, पृष्ठ 127

हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव सन् 1926 ई म कलकत्ता म प्रकाशित 'उदत मार्त्तण्ड' पत्र से हुआ। हिन्दी के इस प्रथम पत्र 'उदत मार्त्तण्ड' के सपादक एव प्रकाशक पडित युगुल किशोर शुक्ल स्वय साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति थे। आधुनिक हिन्दी साहित्य ओर पत्रकारिता का समानान्तर विकास हुआ। आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य एव भाषा क विकास म पत्रकारिता का अनन्य योगदान रहा है। यह किसी से छिपा नहीं है कि पत्रकारिता का जन्म एव प्रारभिक विकास साहित्यिक अभिरुचियो का ही प्रतिफल है।[6] उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण की जातीय अभीप्सा भारतेन्दु युग के साहित्य की ज्वलन्त पहचान है जो पत्रकारिता की सरणि से प्रकाशित ओर गत्वर हुई। हिन्दी पत्रकारिता के विकास मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 15 अगस्त 1867 ई का 'कविवचन सुधा' नामक मासिक काव्य-पत्रिका को काशी से सम्पादित किया तथा उसक माध्यम से हिन्दी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता को जनमानस के निकट लाकर जनचेतना का अग बनाने का प्रयास किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन काल मे तीन उपन्यास, सत्रह नाटक, एक निबन्ध सग्रह ओर अनेक काव्य पुस्तको के साथ 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचन सुधा' तथा 'बालाबोधिनी' पत्रिका का सचालन और सपादन किया। इन पत्रिकाओ ने साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ नव-प्रतिभाओ का मार्ग भी प्रशस्त किया। भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य समकालीन साहित्यकारो ने भी पत्रकारिता को साहित्य के विकास के लिए एक सबल के रूप मे अपनाया। हिन्दी निबन्ध की जडो को जमाने मे प्रताप नारायण मिश्र द्वारा सपादित 'ब्राह्मण' और बालकृष्ण भट्ट द्वारा सपादित 'हिन्दी प्रदीप' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतेन्दु युगीन लेखको की व्यक्तिगत रचनात्मक उपलब्धि समान स्तर की नहीं थी, पर एक वृत्त के रूप मे उनका योगदान अपने मे विशिष्ट है। जिन पत्रिकाओ ने इन्हे जोड रखा था उनमे उपरोक्त पत्रिकाओ के अतिरिक्त कुछ नाम हैं 'आनन्द कादम्बिनी' (प्रेमधन), 'सदादर्श' (लाला श्री निवास दास), 'बिहार बन्धु' (केशवराम भट्ट) एवम् 'भारतेन्दु' (गोस्वामी राधाचरण) आदि। साहित्य और

---

6 भारतीय पत्रकार जगत्, सितम्बर 1996 के लेख-हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, लेखक-बगालीमल से, पृष्ठ 44

पत्रकारिता का यह विलक्षण समागम पुनर्जागरण युग की मानसिक चेतना के अनुरूप था।[7] इस काल की इन रचनाओं ने पत्रकारिता के माध्यम से परिवेश की नयी चेतना से सम्पर्क का प्रयत्न किया।[8]

बीसवीं सदी मे हिन्दी पत्रकारिता साहित्यिक-सांस्कृतिक आन्दोलनो का आधार बनी। इसमे साहित्यिक सवेदना और भाषा-सस्कार का धरातल क्रमश उन्नत होता गया। सन् 1900 मे उस समय की मूर्धन्य पत्रिका 'सरस्वती' निकली जिसने गुरुतर दायित्वो के निर्वाह से पत्रकारिता एव साहित्य जगत मे युगातर स्थापित किया। यद्यपि 'सरस्वती' के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक विशिष्ट साहित्य पीढी का सस्कार किया, तथापि 'सरस्वती' मे प्रकाशित सामग्री के विषय-वैविध्य को देखते हुए सीमित अर्थ मे 'सरस्वती' को शुद्ध साहित्य पत्रिका नही कहा जा सकता। व्यापक अर्थ मे सरस्वती सास्कृतिक चेतना की पत्रिका थी, यद्यपि भाषा और साहित्य का विकास ही उसका प्रधान लक्ष्य था।[9] हिन्दी खडी बोली साहित्य को, मथिली शरण गुप्त की कविता ओर प्रेमचन्द के कथा साहित्य को सामान्य पाठको तक पहली वार 'सरस्वती' ने पहुँचाया , ज्ञान के अपरिचित आयाम के प्रति हिन्दी पाठको को सुमुख किया।[10] जिस साहित्य पीढी का 'सरस्वती' ने प्रकाशित किया उसमे मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द और रामचन्द्र शुक्ल आदि आधुनिक हिन्दी साहित्य के शीर्ष पुरुष है। 'भरत मित्र' सपादक बाल मुकुन्द गुप्त की ओजस्वी भूमिका का सूत्रपात 19 वीं शताब्दी के 'सार सुधानिधि' और 'उचितवक्ता' ने कर दिया था, जिसे परवर्ती काल मे 'हिन्द केशरी', 'कर्मयोगी', 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'आज' और 'मतवाला' जैसी पत्र-पत्रिकाओं ने समृद्ध किया। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' बालमुकुन्द गुप्त की राजनीतिक जागरूकता का ही केवल परिचय नहीं देता, बल्कि उनके निबन्धकार प्रतिभा का भी प्रमाण है। 'शिवशम्भु के चिट्ठे आर खत' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित गुप्त जी का लेखन व्यक्तिव्यजक निबन्ध का श्रेष्ठ उदाहरण है। निजी सुख के पलोभन मे पडकर बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी की राह नहीं पकडी थी। देश की वडी सवेदना से जुडने के विवेक ने उन्हे हिन्दी का सेवाव्रती

---

7 दृष्टव्य, हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ104

8 वही, पृष्ठ 108

9 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण विहारी मिश्र, पृष्ठ 62

10 वही, पृष्ठ 63

बनाया था।[11] इसलिए यह प्रासंगिक ही है कि पत्रकारिता को इन्होने रचनात्मक हथियार के रूप मे अपनाया।

सन् 1909 ई० मे जयशकर प्रसाद की प्रेरणा से 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक पडित रूपनारायण पण्डित स्वच्छन्द काव्य धारा के पुरस्कर्त्ता थे। 'इन्दु' मे साहित्य की नई धारा की सूचना थी। इस पत्रिका ने उस स्वर को प्रस्तुत किया जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सैद्धान्तिक आग्रहो के कारण 'सरस्वती' म नही प्रकाशित होता था। यह नई दिशा स्वच्छन्द धारा की थी जिसे 'मतवाला' ने अधिक मुखर किया था। 'मतवाला' हिन्दी पत्रकारिता की वह महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसने हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ स्वछन्दतावादी कवि निराला को शीर्ष महत्व के साथ प्रस्तुत किया यानि हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी साहित्य आन्दोलन मे 'मतवाला' की विशिष्ट भूमिका रही है।[12] इसके सपादको मे महादेव प्रसाद सेठ तथा वास्तविक सम्पादक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शिवपूजन सहाय, नवजादिक लाल, और बेचन शर्मा उग्र थे। अधिकाश अको मे निराला की कविता छपती थी। इस प्रकार निराला के पूर्ववर्ती काव्य के प्रकाशन का अधिकाश श्रेय निराला को है। इसके विपरीत आरभिक काल से ही राजनैतिक आन्दोलनो से जुड गये 'उदत मार्तण्ड' के सम्पादक युगुल किशोर शुक्ल, 'हरिश्चन्द्र', 'उचित वक्ता' के सपादक दुर्गा प्रसाद मिश्र, 'ब्राह्मण' के सपादक प्रताप नारायण मिश्र, 'अभ्युदय' के सपादक मदन मोहन मालवीय तथा 'मतवाला' के सम्पादक सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि ने जिस पत्रकारिता का आदर्श प्रस्तुत किया वह सामयिक परिवेश की एक अनिवार्यता थी।[13]

साहित्यिक पत्रिकाओं मे 'माधुरी' का ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी के यशस्वी लेखको ने इसका सपादन किया। सपादक के रूप मे दुलारे लाल भार्गव का नाम इसमे वैसे ही छपता था जैसे 'मतवाला' मे महादेव प्रसाद सेठ का। इसके वास्तविक सम्पादक थे प० रूप नारायण पाण्डेय, प० कृष्णबिहारी मिश्र और मुन्शी प्रेमचन्द। बाद मे बाबू शिव पूजन सहाय ओर प० शातिप्रिय द्विवेदी भी

---

11 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 65

12 विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य-हिन्दी पत्रकारिता जातीय चेतना ओर खडी बोली साहित्य की निर्माण भूमि, कृष्ण बिहारी मिश्र

13 हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास बगालीमल, भारतीय पत्रकार जगत्, सितम्बर, 1996 मे प्रकाशित, पृष्ठ 45

'माधुरी' से जुड गये। इस प्रकार 'माधुरी' कार्यालय म साहित्यिका का वेसे ही जमावडा हो गया था जैसे मतवाला कार्यालय मे। या कहना चाहिए कि 'माधुरी' हिन्दी के कृति लेखको द्वारा वैसे ही सम्पादित हुई जैसे 'मतवाला', 'हस', और 'प्रतीक'।[14] प्रेमचन्द की 'हस' मे महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इसका नामकरण जयशकर प्रसाद ने किया था।[15] प्रमचन्द के नेतृत्व मे 'हस' बहुत दिनो तक कथा साहित्य का ही मुखपत्र रहा। 'हस' के आरभिक अका मे प्रमाद की कविताएँ प्रकाशित हुईं। कामायनी के अश इसके अनेक अको के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुए।[16] परवर्ती काल मे श्री जैनेन्द्र कुमार, अमृत राय, बालकृष्ण राव, गजानन माधव मुक्ति वोध, शमशेर बहादुर सिह एव त्रिलोचन जैसे विशिष्ट कृति लेखको के सस्पर्श और सक्रिय सहयोग मे यह पत्रिका प्रकाशित हुई। बडे-बडे लेखक अपनी रचना 'हस' मे प्रकाशनार्थ प्रेमचन्द के पास पहुँचाया करते थे।[17] हिन्दी उपन्याम ओर हिन्दी कहानी जगत् मे प्रेमचन्द जी ने क्या योगदान किया, इस सम्वन्ध मे यहॉ कुछ कहने की जरूरत नहीं है। हाँ, यह याद करने की जरूरत अवश्य है कि हिन्दी जगत् के 'उपन्याम सम्राट' ओर 'कलम के सिपाही' के रूप मे जाने-माने इस लेखक को 'हस' ओर 'जागरण' जेमी दो पत्र-पत्रिकाओ के सचालन और सपादन की जरूरत क्यो महसूस हुई थी। कहा जाता है कि इन पत्रिकाआ की माली हालत को सुधारने के लिए प्रेमचन्द को बम्बई की फिल्म लाइन का भी स्वाद चखने के लिए विवश होना पडा था।[18] इसी तरह 'मनोरमा', 'चाँद', 'सुधा', 'मर्यादा', 'नई धारा', 'आलोचना', 'विश्वभारती पत्रिका', 'साहित्यकार', 'कहानी', 'ज्ञानोदय', 'राष्ट्रवाणी', 'आजकल', 'वमुधा', 'जया पथ', 'नई कहानियॉ' आदि पत्रिकाओ ने साहित्य के क्षेत्र मे उल्लेखनीय श्रीवृद्धि की।

प्रेमचन्द के बाद तो हिन्दी के मूर्धन्य कवियो एव लेखका की एक लम्बी फेहरिस्त बनती चली गई जिन्होने उच्च कोटि के लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता से जुडाव को भी साहित्य के प्रचार तथा

---

14 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 66

15 शिवपूजन रचनावली, भाग-4, पृष्ठ 216

16 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 66

17 दृष्टव्य, कलम का सिपाही, अमृत राय

18 जनसचार , सपादित राधेश्याम शर्मा के 'पत्रकारिता और माहित्य राकेश वत्स, के लेख से, पृष्ठ 203

प्रसार के लिए अत्यन्त आवश्यक समझा। सच्चिदानन्द हीरानद वातम्यायन 'अज्ञेय' ने 'दिनमान' जैसे साप्ताहिक की केवल नींव ही नहीं रखी, बल्कि उमका सम्पादन भी किया और बाद मे वे 'नवभारत टाइम्स' जैसे दैनिक के चीफ एडिटर भी रहे।[19] जिस वर्ष भारत को राजनीतिक स्वाधीनता मिली उसी वर्ष यानि 1947 मे अज्ञेय की द्विमासिक पत्रिका 'प्रतीक' प्रकाशित हुई। जैसे 'हस' के साथ एक साहित्यिक आन्दोलन का इतिहास जुडा है वैसे ही 'प्रतीक' के द्वारा भी एक साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। यह हिन्दी मे नवलेखन का आन्दोलन था। प्रगतिवाद का आन्दोलन 'हस' के साथ आगे बढा था और डॉ0 रामविलास शर्मा की बात सच है कि 'प्रयोगवाद' की शुरुआत 'तार सप्तक' से नहीं होती, उसकी शुरुआत होती है सन् 47 मे 'प्रतीक' से। प्रतीक का लक्ष्य परम्परा से सर्वथा विछिन्न होना नहीं था।[20]

धर्मवीर भारती एक लम्बी अवधि तक 'धर्मयुग' का सफल सपादन करते रहे। चन्द्रगुप्त विद्यालकार, मोहन राकेश और कमलेश्वर 'सारिका' का सम्पादन करते रहे है। कमलेश्वर तो 'श्रीवर्षा' से होते हुए 'गगा' मे आए। राजेन्द्र यादव को अतत 'हम' को पुनर्जीवित करने की जरूरत महसूस हुई। रघुवीर सहाय चिरकाल तक 'दिनमान' के सम्पादक रहे। भैरव प्रसाद गुप्त पहले 'नई कहानी' के कुशल सम्पादक रहे और उसके बाद उन्होने अपनी 'प्रारम्भ' नामक पत्रिका का श्रीगणेश किया। भीष्म साहनी ने भी काफी समय तक 'नई कहानी' का सम्पादन किया। अमृतराय भी पहले 'हस' और उसके बाद 'नई कहानी' का सम्पादन करते रहे। ज्ञानरजन चिरकाल से 'पहल' जैसी समर्थ पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं। महीप सिह भी कई दशको से 'सचेतना' चला रहे हैं। मनोहर श्याम जोशी टी० वी० के साथ जुडने के पहले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के मपादक थे। अशोक बाजपेयी 'पूर्वग्रह' का सम्पादन कर रहे हैं। शानी 'समकालीन' का सपादक पद सम्हालने से पहले 'साक्षात्कार' का सपादन करते रहे है। प्रख्यात व्यगलेखक हरिशकर परसाई रामेश्वर प्रसाद गुरु के साथ प्रगतिशील पत्रिका 'वसुधा' के सम्पादक थे। शरद जोशी ने भी बम्बई से कुछ समय के लिए निकलने वाली पत्रिका 'हिन्दी एक्सप्रेस' का सम्पादन किया था। केवल इतना ही नहीं, नये-पुराने साहित्यकारो की एक लम्बी

---

19 जनसचार, राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 203

20 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण विहारी मिश्र, पृष्ठ 76

फेहरिस्त है जो उनके पत्रकारिता के साथ जुडाव के माध्यम से साहित्य-सेवा के रहस्य को हमारे सामने खोलती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, उदय प्रकाश, सुदीप, हिमाशु जोशी, रमेश उपाध्याय, सतीश जमाली, राजेन्द्र अवस्थी, कन्हैयालाल नन्दन, अवध नारायण मुद्गल, डॉ0 धनजय वर्मा, से० रा० यात्री, केशव सोमदत्त, प्रभाकर श्रोत्रिय, बलराम, रमेश गाड, मणिका मोहिनी, मगलेश डबराल, धीरेन्द्र अस्थाना, डॉ० विनय, रमेश बतरा, धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, द्रोणवीर कोहली, अब्दुल बिस्मिल्लाह, अमरकात, मार्कण्डेय, रमेश बक्षी, मधुकर सिह, आम प्रकाश ग्रेवाल, आनन्द प्रकाश और राकेश वत्स आदि के नाम किसी न किसी स्तर पर पत्रकारिता के साथ जुडे हुए नाम हैं।[21]

पत्रकारिता के इतिहास मे भाषा एव साहित्य के निर्माण की भूमिका मे वे सम्पादक भी थे जिन्होने किसी साहित्यिक ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया। यथा पराडकर जी न केवल आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के जनक थे अपितु हिन्दी भाषा और साहित्य के भी अनन्य उन्नायक थे। दैनिक पत्रो के सम्पादन तथा नित्य सपादकीय लेखो के लिखने के बाद उन्हें अवकाश ही कहाँ मिलता कि वे साहित्यिक पुस्तको का प्रणयन करते। फिर भी 'आज' तथा 'ससार' आदि पत्रो मे लिखे उनके लेख तथा अनेकानेक टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है।[22] उन्होने अपनी समस्त शक्ति ओर प्रतिभा पत्रकारिता की श्रीवृद्धि के निमित्त समर्पित कर दी थी। इतना होने पर भी साहित्य निर्माण का प्रश्न उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ था, अपितु 'आज' के माध्यम से वे सदा साहित्य तथा साहित्यकारो की समस्याओ पर लिखा करते थे ओर अन्य विद्वानो से भी लिखवाया करते थे। एक समय था जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति तथा सम्मेलन की अन्य परिषदो के अध्यक्षों के पूरे भाषण 'आज' मे प्रकाशित होते थे। हिन्दी जगत् मे पराडकर जी साहित्य, भाषा तथा पत्रकारिता के आचार्य रूप मे समादृत थे। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्यकार अपनी पुस्तको की भूमिकाएँ उनसे लिखवाने के लिए उत्सुक रहते थे।[23] भाषा ओर साहित्य के क्षेत्र मे फैली अव्यवस्था एव उच्छृखलता को आपने न केवल आलोचना ही की अपितु स्थिति सुधार के रचनात्मक सुझाव भी दिए।

---

21 जनसचार राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 203

22 पराडकर और पत्रकारिता (साहित्य खण्ड), पृष्ठ 148

23 पराडकर जी और पत्रकारिता, पृष्ठ 149

24 विष्णुराव पराडकर जी का अभिमत था कि सम्पादकों तथा पत्रकारो ने भारतीय भाषाओ का गद्याग प्रारम्भ और पुष्ट किया।25 आचार्य श्री किशोरीदास बाजपेयी का कथन है कि पराडकर जी ने साहित्य का ही नहीं, साहित्यकारो का भी निर्माण किया।26 हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानी लेखक तथा निबन्धकार पडित बेचन शर्मा 'उग्र' को साहित्य जगत् म अवतीर्ण तथा अग्रसर करने का श्रेय पराडकर जी को ही है।27 इस प्रकार पराडकर जी ने हिन्दी गद्य का नयी अभिव्यजना दी ओर उसको प्रेरणामय बनाया।

आपकी ख्याति न केवल भारतीय स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान के प्रेरक के रूप मे थी वरन् साहित्य के क्षेत्र मे एक सर्जक के रूप मे मान्यता भी थी। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम पक्ति के साहित्यकारो के निर्माता एव प्रेरणाकेन्द्र भी थे।28

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के अत मे राजनीतिक आर साहित्यिक पत्रकारिता अलग-अलग होकर चली। सन् 1907 मे कलकत्ते से शुद्ध राजनीतिक पत्रिका 'नृसिह' प्रकाशित हुई। परवर्ती काल मे दैनिक पत्रो मे राजनीतिक पत्रकारिता सिमट गई। 'प्रताप', 'आज', 'हिन्दी केशरी', 'अभ्युदय', 'कर्मवीर', 'सघर्ष', 'जीवन साहित्य', 'जन', 'पाञ्चजन्य', 'भूदान', 'जनयुग', 'मुक्तधारा' आदि विभिन्न राजनैतिक दलो और विचारो को लेकर चलने वाली पत्र-पत्रिकाएँ है।

'सघर्ष', 'सर्वोदय', 'जन', 'राष्ट्रधर्म', 'गॉधी मार्ग' सीमित अर्थ मे साहित्यिक पत्रिकाएँ नहीं हैं पर विभिन्न विचार सरणि और विविध अनुशासन के विचार-परिवेशन द्वारा इन पत्रिकाओ ने साहित्य को वैचारिक पृष्ठिका पुष्ट की है। विचार आर भाषा के विकास मे 'दिनमान' आजादी के बाद की अप्रतिम सवाद-पत्रिका रही है। उसमे राजनीतिक समाचार सामग्री के अलावा साहित्यि-सास्कृतिक टिप्पणियाँ भी रहती थीं, साहित्यिक कृतियो की समीक्षा भी। साहित्य के उन्नयन ओर समृद्धि मे जिन

---

24 पराडकर जी और पत्रकारिता पृष्ठ 150

25 पराडकर जी और पत्रकारिता पृष्ठ 157

26 पराडकर जी और पत्रकारिता पृष्ठ 192

27 पराडकर जी और पत्रकारिता पृष्ठ 193

28 पराडकर जी और पत्रकारिता पृष्ठ 158

दैनिक पत्रो का महत्वपूर्ण योग रहा है उनमे 'प्रताप', 'आज' ओर 'भारत' विशिष्ट है। 'जनसत्ता', 'नवभारत टाइम्स', 'नई दुनियाँ', 'राजस्थान पत्रिका' ओर राची के छोटे पत्र 'प्रभात खबर' मे स्तरीय साहित्य सामग्री छपती रही है। अपनी महत्वपूर्ण साहित्यिक भूमिका के लिए 'आज' सर्वाधिक चर्चित पत्र रहा है। पराडकर जी ने 'आज' का स्तर इतना उन्नत ओर पुष्ट कर दिया था कि उस सरणि मे जागरूकता के साथ चलते बहुत दिनो तक उसके रविवाम्सरीय अक मे स्खलन नहीं आया और पन्त जैसे कवि उसे देखने के लिए उत्सुक रहते थे। प० सुमित्रानन्दन पन्त ने अपनी दिनचर्या का जिक्र हुए करते जीवन के उत्तरकाण्ड मे लिखा था कि "साप्ताहिक 'आज' भी जरूर पढता हूँ।" 'भारत' का साप्ताहिक परिशिष्ट भी बहुत महत्वपूर्ण होता था। इसका साहित्यिक स्तर उस समय अधिक उन्नत था जब प० वेकटेश नारायण त्रिपाठी आर प० नन्द दुलारे वाजपेयी इसके सम्पादकीय विभाग मे थे। छायावाद के वृहद्त्रयी की चर्चा प० नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'भारत' के माध्यम से ही चलायी थी। प्रसाद और दूसरे छायावादी कवियो पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की समीक्षा सबसे पहले 'भारत' मे ही प्रकाशित हुई थी।[29]

स्पष्टत पत्रकारिता और साहित्य की ऐतिहासिक यात्रा मे साहित्य को पत्रकारिता के सबल की जरूरत हुई। चूँकि पत्र-पत्रिकाएँ ही उसे पाठको के उस वर्ग तक पहुँचा सकती थी जिसके लिए अब वह अपने साहित्य को रचने का दावा करता था। पत्रकारिता ने इसकी इस जरूरत को पूरा भी किया। शायद ही कोई ऐसा पत्र या पत्रिका होगी जिसमे किसी न किसी रूप मे साहित्य के लिए स्थान सुरिक्षत नहीं किया जाता होगा। कविता, गजल कहानी, उपन्यास, निबध, नाटक, एकाकी नाटक, आलोचना, सस्मरण, रिपोर्ताज, शब्दचित्र और अब फिल्म के रूप मे इस्तेमाल होने वाली लघुकथाए और क्षणिकाएँ, गर्ज यह कि साहित्य के नाम पर रचे जाने वाला सभी कुछ पत्र-पत्रिकाओ मे धडल्ले से छपता है। यहाँ तक कि फिल्म और समाचार पत्रिकाए भी उसकी उपेक्षा नहीं कर पार्ती। अच्छी और बुरी रचनाओ की जानकारी देने वाली समीक्षाओ को भी पत्र-पत्रिकाओ मे उपयुक्त स्थान मिल रहा है। इस बात को देखते हुए एक सुखद आश्चर्य जो अभिभूत करता है वह यह है कि अब साहित्य केवल जिल्द चढी पुस्तको में कैद होकर प्रकाशको और पुस्तकालयो के रहमो कर्म पर ही जिन्दा नहीं है, वह

---

29 हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 73

अब सीधा अपने पाठको तक पहुँचने की सहूलियत मे है। साहित्य को अपने बलबूते पर जिन्दा रहने का रास्ता वास्तव मे पत्रकारिता ही ने दिखाया है। इसके लिए साहित्य को पत्रकारिता का आभारी होना चाहिए। पत्रकारिता ने लोगो मे पढने की रुचि, उन्मुक्तता, जागरूकता ओर चेतना पैदा की।[30]

पत्रकारिता वर्तमान सन्दर्भ मे

हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भ मे पत्रकारिता जगत् पर साहित्य का पर्याप्त दबदबा रहा, बाद मे पत्रकारिता पर लोकतात्रिक जिम्मेदारियो के आ जाने से उसका दायित्व ओर बढ गया तथा लेखक के कैनवास का विस्तार होता गया। यहाँ पर आकर पत्रकारिता का उद्देश्य मात्र भाषा और साहित्य का निर्माण नहीं रहा बल्कि उस पर सूचना, शिक्षा आर मनोरजन का दायित्व आ पडा। मनोरजन का दायित्व इसलिए भी क्योकि नगरीकरण के विस्तार से धीरे -धीरे लोकमाध्यम लुप्त होने लगे और स्वतत्रता के बाद राष्ट्र निर्माण ने सूचना और शिक्षा के लिए आगे बढने हेतु पत्रकारिता को प्रेरित किया। साहित्य पर भी इस तरह के गुरुतर दायित्व किन्तु साहित्य अपने विकास के अगले चरण मे धीरे-धीरे प्रयोगशील एव कलात्मक होने लगी। इसने रूप ओर कथ्य दोनो मे विभिन्न प्रयोगो को अपनाया। इस परिस्थिति मे शुद्ध साहित्य के सम्प्रेषण के लिए पत्रिकाएँ अयोग्य सिद्ध होने लगीं। पत्रकारिता पर पडते घोर व्यांवसायिक दबावो ने भी उसको साहित्य से अलग दिशा की ओर सुमुख किया। किसी भी पत्रिका का एक निश्चित पाठक वर्ग होता है जिसकी एक खास रुचि और बौद्धिक स्तर होता है। सामान्य पत्रिकाएँ प्राय सामान्य पाठको पर निर्भर रहती है। मात्र साहित्यिक रुचि के पाठको पर नहीं। इन कारणो से वर्तमान मे साहित्य और पत्रकारिता की अतरगता मे कुछ कमी आ गई है।

पत्रकारिता आज स्वतत्र एव आत्मनिर्भर विधा के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी है एव इसका शास्त्र विकसित हो चुका है। यह विशेषीकृत पत्रकारिता का युग है जिसमे साहित्यिक पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता, फिल्म पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता, राजनैतिक पत्रकारिता आदि विभिन्न शाखाओ का विकास हो चुका है। पत्रकारिता के लिए यह शुभ लक्षण है किन्तु इसका सर्वाधिक प्रभाव साहित्य पत्रकारिता पर ही पडा। व्यावसायिक दृष्टि से साहित्यिक पत्रकारिता बहुत लाभवर्द्धक नहीं होती है

---

30 जनसचार, सपादित राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 206

इसलिए व्यावसायिक प्रकाशन प्रतिष्ठान साहित्यिक पत्रकारिता म अपनी पूँजी नहीं लगाते है। अत यह अकारण नहीं है कि शुद्ध साहित्यिक पत्रकारिता लघु पत्रिकाआ के माध्यम से हो रही हैं और सामान्य पत्रकारिता मे साहित्य हाशिए पर है।

पत्रकारिता की स्वतत्र इयत्ता ग्रहण कर लेने पर पत्रकारिता एव साहित्य का पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। पत्रकारिता मे अब समाचार महत्वपूर्ण है। वैसे यह होना ही था क्योकि उसे लोकतत्र के चौथे स्तभ के रूप मे जो मान्यता मिलने लगी इसके दबाब मे पत्रकारिता समसामयिकता के प्रति विशेष आग्रही हो गई। इस परिस्थिति मे दैनिको का महत्व बढने लगा। बहुत सी पत्रिकाएँ अपने प्रकाशन की अवधि कम करने लगीं। 'इडिया टुडे' पाक्षिक से साप्ताहिक हा गई। बडे प्रकाशन समूहो के कई स्थानीय सस्करण निकलने लगे। इसके पीछे कहीं न कहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया से होने वाली प्रतिस्पर्धा ही काम कर रही थी। 'इडिया टुडे' के सपादक अरुण पुरी ने इसको पाक्षिक से साप्ताहिक करते समय अपने सपादकीय मे ऐसा लिखा भी कि किसी घटना की सूचना देने की शक्ति जो पत्रकारिता के पास थी उसे अब इलेक्ट्रानिक माध्यमो ने ले लिया। इस प्रकार पाठको के बीच घटना की एफ० आई० आर० करने की जो शक्ति थी उसे और द्रुत गति से इलेक्ट्रानिक माध्यम करने लगे। यही नहीं इन्टरनेट के माध्यम से शब्द कागज पर से स्क्रीन पर स्थानापत्र होने लगे।

पत्रकारिता के विकास के लिए यह शुभ लक्षण था। लेकिन इसके साथ ही पत्रकारिता ने क्षिप्रता मे हडबडी को भी अपना लिया। इस हडबडी मे मुद्रित शब्द की शाख घटने लगी और तकनीक प्रधान होने लगा। विकास के इस चरण पर गभीर लेखन को छवियो ने स्थानापन्न करना शुरू कर दिया। अत आज समाचार पत्रो के पृष्ठो का रगीन मुद्रण आवश्यक हो गया। गभीर लेखन सपादकीय पृष्ठ पर सम्पूर्ण अखबार के दसवे से सोलहवे भाग मे आकर सिमट गया। यही नहीं रचनात्मक लेखन के लिए मात्र परिशिष्टो मे ही जगह रह गयी। सभी साप्ताहिको मे सास्कृतिक विषय-साहित्य, ललित-कला, रगमच, प्रदर्शनियाँ आदि सिमटकर एक पृष्ठ पर आ गए। कहानियाँ सभी देते हैं पर वे अधिकतर भावुक, करुण या क्रोधभरी।

विकास के इस पडाव पर पत्रकारिता से भाषा एव साहित्य के सजग प्रहरी या तो विलुप्त हो गए। अथवा प्रभावहीन हो गए। पराडकर जी की पत्रकारिता के सबध मे यह भविष्यवाणी शब्दश·

सत्य होने लगी कि ''आगे चलकर पत्र सर्वांग सुन्दर हाग, आकार बड, छपाई अच्छी हागी, गभीर गवेषणा की झलक होगी और मनोहारिणी शक्ति भी हागी। ग्राहको की सख्या लाखो मे गिनी जायेगी। यह सब होगा, पर पत्र प्राणहीन होगे। पत्रा की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण सपादको की नीति न होगी। इन गुणो से सम्पन्न लेखक विकृत मस्तिष्क वाले समझे जायेगे। सपादको की कुरसी तक उनकी पहुँच भी नहीं होगी। वेतन भोगी सपादक मालिक का काम करेगे। वे हम लोगो से अच्छे होगे। पर आज हमे जा स्वतत्रता प्राप्त है, उ ९ न हागी। वस्तुत पत्रा के जीवन मे यही समय का मूल्य है। इग्लैण्ड और अमेरिका के पत्रो ने उन्ही दिनो सच्चा काम किया था, जब उनके आकार छोटे थे। समाचार कम होते थे, ग्राहक थोडे थे, पर सपादक की लेखनी मे ओज और प्राण था। इन देशो की उन्नति के बहुत कुछ कारण वे ही सपादक थे जिनसे धनी घृणा करते थे, शासक क्रुद्ध हुआ करते थे और जो हमारे ही जैसे एक पैर जेल मे रखकर धर्मबुद्धि से पत्र सपादन किया करते थे। उनके परिश्रम और कष्ट से पत्रो की उन्नति हुई, पर उनके वश का लोप हो गया। अब सचालक और व्यवस्थापक सर्वेसर्वा हैं, सपादक कुछ नहीं हैं। इस इतिहास से हमे उपदेश ग्रहण करना चाहिए। समय रहते सावधान हो जाना चाहिए।''[31]

हमारा प्रेस अभी तक सभ्रान्त वर्ग की रुचिया-अभिरुचियो का ख्याल रखता है, जिन पर अग्रेजो का अधिक प्रभाव है। यह सही है कि स्वतत्रता के बाद क्षेत्रीय भाषाओ और राष्ट्र भाषा हिन्दी मे भी काफी अखबार निकलने लगे है लेकिन अग्रेजी पत्र-पत्रिकाओ का अभी भी काफी प्रभुत्व है। इस सम्बन्ध मे कवि नागार्जुन की टिप्पणी कितनी सटीक है कि हिन्दी पत्रकारिता अग्रेजी के रास्ते पर जा रही है, मगर अग्रेजी पत्रिकाओ के मुकाबले दीन हीन है।

अखबार राष्ट्र की आत्मा होनी चाहिए। लोकतत्र मे प्रेस की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी जनता को सरकार चुनने या बदलने की आजादी है।[32] जहॉ तक इनके उत्तरदायित्व एव प्रमाणिकता की बात है, उसके बारे मे यह टिप्पणी उचित ही है कि टेलीप्रिंटरो से छन कर अखबार के डेस्क और मशीनो से गुजर कर जो सच्चाई अखबार के पन्नो पर उतरती है, उसमे मानवीय ऑच नहीं

---

31 हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वृन्दावन वाले 1925 के अधिवेशन मे पराडकर जी द्वारा दिए गए भाषण का अश

32 समकालीन पत्रकारिता मूल्याकन और मुद्दे पृष्ठ 102

होती, न किसी तरह का दायित्व बोध मानो वे किसी दूसरे लोक की घटनाएँ होती हैं। इसकी वजह यह है कि जिन माध्यमो से भी ये तथाकथित सच्चाईयाँ अखबार के पन्नो तक पहुँचती है उन माध्यमो का मानवीय सरोकार नहीं होता। आजादी के पूर्व जो खवर बनाते थे वे स्वय उस खबर का एक जीवत हिस्सा हुआ करते थे। लेकिन अब जो खवर बनाने म लगे हैं, वे खबरो घटनाओ के तटस्थ दर्शक होते हैं, पर्यवेक्षक होते हैं। अत समाचारो मे मानवीय ऊष्मा आये तो कैसे? पत्रकारिता को व्यवसाय मे बदलने का एक अवश्यभावी परिणाम यह भी हुआ कि जब पत्रिकाएँ खबरो के सौदागर के रूप मे और पाठक खबरो के उपभोक्ता के रूप मे बदल गये, तो हत्या ओर भ्रष्टाचार की खबरो ने प्रमुखता पायी और वह भी इस तरह कि पाठको को मजा दे, पाठक उनको पढने मे रस ले। मथुरा काड और माया त्यागी जैसे काड भी तिलमिलाहट ओर आक्रोश जगाने के बजाय पाठको मे एक तरह का जुगुप्सा-रस पैदा करने लगे। यह चमत्कार पत्रकारिता ने भाषा को बाजारू बना कर दिखाया।[33] आज पत्रकारिता पर यह आरोप लगता है कि मीडिया के गेर जिम्मेदार लाग भाषा को भ्रष्ट कर रहे हैं। आज अखबार को पढकर, शुद्ध भाषा नहीं सीखी जा सकती है। हालांकि इसके बचाव म पत्रकारिता जगत का यह तर्क रहता है कि हिन्दी मे सवाद समितियो का न होना इसका मूल कारण है, जिसकी वजह से समाचार पत्रो को अनुवाद पर निर्भर रहना पडता है। लेकिन इसे पूर्णत सत्य नहीं माना जा सकता है।

वस्तुत मीडिया अपनी इस जिम्मेदारी के प्रति सचेत नही है। पहले सपादक किसी अभद्र शब्द के स्थान पर कर्णप्रिय एव हृदयग्राही शब्द देने के लिए व्यग्र रहते थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास एक विद्वान् लेखक का ऐसा लेख 'सरस्वती' मे प्रकाशित करने के लिए आया जिसमे उन्होने लिखा था 'काबुल मे गधे भी होते हैं।' द्विवेदी जी कई दिनो तक सोचते रहे कि कैसे इस अश को निकालें कि गधा शब्द न रहे और अर्थवत्ता मे अतर न आए। बहुत विचार के बाद उन्होंने इस पक्ति को यो सुधार दिया। 'काबुल मे सब घोडे ही नहीं होते।' समकालीन पत्रकारिता मे शायद ही थोडे पत्रकार ऐसा सपादन करने वाले हो। अब तो बिना अर्थ समझे 'चूना लगाया' लिखा जाता है, जिसे सुसस्कृत व्यक्ति कभी नहीं बोल सकता। किसी स्त्री, खासकर अविवाहित लडकी की अस्मत लुट जाने

---

33 समकालीन पत्रकारिता मूल्याकन और मुद्दे के 'सवेदना का क्षय', श्यामा प्रसाद प्रदीप के लेख से, पृष्ठ 168

के समाचार मे लडकी या स्त्री का नाम इसलिए नहीं दिया जाता था कि उसकी अधिक बदनामी न हो। पराडकर जी ने 'बलात्कार' शब्द का प्रयोग प्रतिबन्धित कर दिया था। उसकी जगह 'शीलभग', 'शीलहरण' शब्द लिखे जाते थे। आज की पत्रकारिता मे बलात्कार शब्द ही नहीं लिखा जाता बल्कि आततायी के हबिस की शिकार नारी का नाम ओर पता फोटो क साथ छापा जाता है। पत्र और पत्रकार यह नहीं समझते कि इस तरह का प्रचार हो जाने पर समाज मे उस बेचारी अबला की क्या स्थिति होगी। किसी दुर्घटना का ऐसा चित्र पहले कभी नहीं दिया जाता था जिसमे शव क्षत-विक्षत पडा हो और दृश्य बडा वीभत्स हो।

यह स्वत. मान्य नियम इसलिए था कि इस तरह के चित्र देखकर मृतक के नजदीकी लोगो को बहुत तकलीफ होती है और कमजोर हृदय के हा ता उन्हे दिल का दोरा भी पड सकता है। समकालीन पत्रकारिता जैसे इस बात को सोचती नहीं।[34] आज की पत्रकारिता लेविस्की-क्लिटन के प्रकरण का इस तरह से विवरण प्रस्तुत करती है माना अश्लीलतम पत्रिकाएँ झूठी हो। इस प्रकार के दोष पत्रकारिता मे अनायास आते नहीं दिखते है बल्कि शीर्षकों तक मे भडकाऊ ओर वीभत्स शब्द देकर पत्रकारिता को ग्लैमरस बनाया जाता है। हालाकि साहित्य के बेस्ट सेलर का यथार्थ भी यही है। लेकिन प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के वातावरण को निर्मित किसने किया?

हिन्दी भाषा मे बहुत सी विकृतियाँ अग्रेजी के प्रभाव के कारण भी आयी हैं।[35] पत्रकारिता मे पत्रकार को सभी विषयो पर लिखना पडता है। एक व्यक्ति सभी विषयो का विशेषज्ञ नहीं हो सकता है अत जब वह सभी विषयो पर लिखता है तो पारिभाषिक शब्दावलियो को या तो यथावत लिख देता है अथवा उसका विद्रूप सरलीकरण कर देता है। इस तरह अनभिज्ञता एव गैर-जिम्मेदारी मे वह ऐसी भाषा को गढता है जिसे आम बोल-चाल की भाषा मे हम अखबारी भाषा के मुहावरे से जानते हैं जिसका

---

34 समकालीन पत्रकारिता मूल्याकन और मुद्दे सपादक राज किशोर के 'विशेषताएँ और विसगतिया' - श्यामा प्रसाद प्रदीप के लेख से

35 वही, पृष्ठ 27

अधिकाश रूप अग्रेजी से अनुवादित, यात्रिक ओर न्यायहीन भाषा हैं। समकालीन पत्रकारिता मे सब दोष नहीं कुछ अच्छाईयाॅ भी हैं। कभी-कभी तो ऐसे शब्दा का प्रयोग होता है जो बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। जैसे बाजार भावो के समाचार मे चना लुढका, चावल चढा अथवा सडक की खराबी का वर्णन करते हुए शीर्षक दिया गया 'मुजफ्फनगर की गर्भ गिराऊँ सडके। सडक की दुरावस्था का वर्णन के लिए 'गर्भगिराऊँ' से अधिक शक्तिशाली शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता। लेकिन यह शब्द शालीन होने के बजाय बहुत फूहड है।[36]

साहित्यिक पत्रकारिता

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का उद्‌भव सन् 1867 से माना जा सकता है। साहित्यिक पत्रकारिता के विकास की दिशा मे बालकृष्ण भट्ट द्वारा सपादित 'हिन्दी प्रदीप' का विशेष महत्व है। इस पत्रिका का प्रकाशन सन् 1877 मे प्रयाग मे आरम्भ हुआ था, यह हिन्दी की पत्रिका थी। परन्तु इसमे राष्ट्रीय ओर क्रान्तिकारी रचनाएॅ भी प्रकाशित होती थीं। इस कारण सरकार द्वारा इसका प्रकाशन प्रतिबधित कर दिया गया था। बीसवी शताब्दी के द्वितीय चरण मे विशेष रूप से भारतीय स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् से हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का अपेक्षाकृत विशेष रूप से विकास हुआ।[37] इस समय साहित्य की अनेक उत्कृष्ट पत्रिकाए निकलीं किन्तु

काल के प्रवाह मे आगे भाषा की स्तरीयता साथ पत्र पत्रिकाओ ने साहित्यिक-सास्कृतिक गरिमा को भी खोया देखते-देखते अधिकाश साहित्यिक पत्रिकाएॅ बन्द हो गईं—जैसे 'सरस्वती', 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद', 'हस', 'विश्वामित्र', 'विशाल-भारत', 'अवतिका', 'आरती', 'हिमालय', 'प्रतीक', 'माध्यम', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'नयी कहानी', 'नया साहित्य', 'कथाभारती', 'साहित्य दृष्टिकोण', 'पाटल' 'क-ख-ग', 'युग चेतना', 'राष्ट्रवाणी', 'राष्ट्रभाषा', 'सदेश', 'अजता', 'कवि कविता' 'साहित्य, सदेश', 'समालोचक', 'सन्दर्भ भारती', 'नया समाज' आदि। इसी के साथ स्तरीय एव लोकप्रिय पत्रिकाएँ जैसे 'धर्मयुग', 'सारिका', 'दिनमान' साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि भी बन्द हो

---

36 'जन सचार', सपादित राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 128

37 'भारतीय पत्रकार जगत', सितम्बर 1996 के लेख, 'हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास' - बगालीमल, पृष्ठ 451

गयीं। सम्प्रति सिर्फ रह गयी वे पत्रिकाएँ जो जासूसी या सेक्सी सत्य कथाएँ मिर्च मसाला लगाकर परोसती है। या सस्था विशेष की या धार्मिक सगठन की पत्रिकाएँ है। यह स्थिति बहुत शोचनीय है। किसी जमाने मे पत्र-पत्रिकाओ मे पुस्तक समालोचना, ग्रन्थालोचना का स्तर अच्छा था। अब 'आलोचना', 'समीक्षा' जैसी एक दो पत्रिकाएँ समालोचना के लिए हैं। शेष तो एकदम सतही रिव्यू देकर अपना काम टालती है। सरकारी पत्रिकाएँ दाएँ-बाएँ देखकर बच-बचकर चलती है। वहाँ निष्पक्षता का अर्थ किसी भी प्रकार के मताग्रह का अभाव या 'रामाय स्वास्ति, रावणाय स्वास्ति' होता है। सेठाश्रयी पत्रिकाएँ भी यही कूटनयिक मार्ग अपनाती हैं ओर थोडा-थोडा सभी राजनीतिक पक्षो, सभी तरह के मध्यमार्गी विचारो के समर्थन मे सामग्री छापती है। इस तरह से वे सब तरह के पाठको को खुश करना चाहती है। परिणामत युवा या नये लेखको को प्रोत्साहित करने वाली अच्छी साहित्यिक पत्रिकाएँ नही के बराबर हैं और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे हिन्दी मे मोलिक विचारो का सर्वथा अभाव है। पिष्टपेषण और चर्वित-चर्वण अधिक है।[38]

उपरोक्त अच्छी पत्रिकाओ के वन्द होने के कारणा का विश्लेषण यथेष्ट है। इन पत्रिकाओ को बुलन्दियो तक ले जाने वाले अधिकाश आज भी हैं। नई पीढी भी कम प्रतिभाशाली नहीं है। आज ढेरो महावीर प्रसाद द्विवेदी है। मजाक मे नहीं वास्तविक रूप मे। उनसे कही अधिक कुशल और जाग्रत सपादक आज मौजूद हैं। लेकिन ये सब मिलाकर भी एक 'सरस्वती' नहीं निकाल सकते। स्वय धर्मवीर भारती भी अपने जमाने का 'धर्मयुग' दोबारा नहीं निकाल सकते। अवसर आने पर भी नहीं।[39] फिर भी ये पत्रिकाएँ क्यो बन्द हुई। यह स्वय भी शोध का विषय है। प्रसगात इनके अवसान के कारणो की चर्चा भी आवश्यक है। इनके बन्द होने का एक कारण इनके मालिको की पीढी का बदल जाना था, नयी पीढी अग्रेजी परस्त थी।[40] जिसके लिए पत्र-पत्रिकाए एक उत्पाद की तरह थीं, सेवा या मिशन इनका ध्येय कभी नहीं हो सकता था। दूसरा सूचना की भूख ने अधिकांश मासिको, साप्ताहिको को

---

38 जनसचार- राधे श्याम शर्मा के 'माध्यम और भाषा प्रभाकर माचवे' का लेख, पृष्ठ 129

39 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी

40 डा0 अवध नारायण मुद्गल, पूर्व सम्पादक सारिका, से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिंह'

स्थानापन्न कर दैनिक समाचार पत्रो की प्रतिष्ठा कर दी। पत्रिकाओ से अधिक यह समय दैनिको का हो गया। हम दैनिक युग मे रह रहे है।[41]

समाचार पत्र एव पत्रिका मे एक अतर स्थापित हो गया कि समाचार पत्र का महत्व एक दिन का होता है, दूसरे दिन वह बासी हो जाता है। जब कि पत्रिका मे सरक्षण शक्ति (Preservation state) होती है।[42] इस बदलती परिस्थिति मे साहित्यिक-सास्कृतिक फीचर के आधार पर पत्रिका नहीं चला सकते। इनका भी अपना महत्व है। लेकिन इनमे जगह भरकर ही पत्र-पत्रिकाएँ नहीं चलाई जा सकतीं।[43] आज पत्रिका के लिए बडे व्यावसायिक तत्र की आवश्यकता है, सवाददाताओ के पूर्ण तन्त्र की जरूरत है। इसके प्रकाशको का साहित्यिक पत्रकारिता से हाथ खीचने का दूसरा कारण यह हो सकता है कि आज के ग्लैमर के युग मे प्रिट मीडिया की समाज मे एव सरकार पर जो धौस है वह साहित्यिक-सास्कृतिक पत्रकारिता के आधार पर नहीं की जा सकती है।

प्रतिष्ठित और अधिक सर्कुलेशन वाली पत्र-पत्रिकाओ को प्रकाशित करने वाले प्राय सभी सस्थान देश के बडे धन-कुबेरो या बडे उद्योगपतियो के हाथा की कठपुतली है। साहित्यकारो एव उस साहित्य को सस्थानो द्वारा उचित प्रोत्साहन या प्रकाशन नहीं मिल पाता जिसे लेकर वे आम जनता तक पहुँचना चाहते हैं। इसी मूल मुद्दे को लेकर लघु पत्रिका आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। फलत आज हजारो की सख्या मे लघु पत्रिकाये हर मास प्रकाशित होती है ओर साहित्यकार साहित्य सृजन के साथ-साथ उस साहित्य को आम पाठको तक पहुँचाने के सबसे बडे सबल पत्रकारिता के साथ भी अपने पाठको से पूरी तरह से जुडा हुआ महसूस कर रहा है। कई बार यह आवाज भी सुनाई देती रहती है (जो काफी हद तक ठीक भी है) कि असली या सार्थक साहित्य तो इन लघु पत्र-पत्रिकाओ मे ही

---

41 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 126

42 डा0 अवध नारायण मुद्‌गल, पूर्व सम्पादक सारिका, से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिह'

43 श्री अशोक कुमार, एसोसिएट अडीटर इडिया टूडे से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिह'

प्रकाशित होता है।[44] इन लघु पत्रिकाओ के रूप मे साहित्यिक पत्रकारिता आज भी है। 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'दिनमान' आदि पत्रिकाओ के बन्द होने का मतलब यह नहीं है कि सारी साहित्यिक पत्रिकाए बन्द हो गयीं। बडे मठाधीशो की पत्रिकाएँ जिसे लगता है कि वे लाभप्रद नही है तो वे उसे बन्द कर देते है। लेकिन लघु पत्रिकाओ के ससार मे आज भी हजारो पत्रिकाएँ देश मे निकल रही है।[45] यह बदलाव जरूर आया है कि पाठक समुदाय सीमित हो गए हैं। ये पत्रिकाएँ उन पारिवारिक पत्रिकाओ की तरह प्रतिष्ठित नहीं हैं आर न ही ये विशाल व्यावसायिक तत्र की उत्पाद है। इनकी हालत आज बाजार तन्त्र की पत्रिकाओ की तुलना मे अच्छी नही कही जा सकती। इन लघु पत्रिकाओ की कुछ सीमाएँ भी हैं। इन लघु पत्रिकाओ मे अधिकाश व्यक्तिगत प्रयासो की फलश्रुति हैं। इनमे कुछ तो मात्र निजी आत्म प्रकाशन के लिए हैं ओर कुछ वेचारिक शिविरो की प्रचारक मात्र। इन लघु पत्रिकाओ की कुछ और समस्याएँ हैं। अच्छे प्रतिष्ठित लेखक इन लघु पत्रिकाओ मे छपना अपनी बेइज्जती समझते हैं। जो थोडा बहुत प्रचार-प्रसार के आकाक्षी है वे तो छप जाते हैं लेकिन थोडा सा भी नाम होने पर वे अच्छे पारिश्रमिक की उम्मीद करते हैं जा ये पत्रिकाएँ नहीं दे सकतीं। ये पत्रिकाएँ स्वय आर्थिक नुकसान उठाकर मिशनरी भाव से विज्ञापन एव बाजार तन्त्र के अभाव मे अधिकाश प्रतियो को मित्रो, साहित्यकारो और समीक्षको को बॉटकर निकाली जा रही हे तथा साहित्य सवर्धन कर रही हैं।[46] फिर भी यह सतोषप्रद है। ये लघु पत्रिकाएँ सोद्देश्य रचनाधर्मिता का निर्वाह कर रही हैं।

पत्रकारिता की स्वतत्र इयत्ता का प्रश्न

साहित्य एव पत्रकारिता मे अलगाव तब उत्पन्न हुआ जब पत्रकारिता स्वायत्त इयत्ता ग्रहण कर सपूर्ण व्यावसायिक व्यक्तित्व के रूप मे खडा हुआ। इस स्थिति मे आकर मीडिया अपने उद्देश्य एव प्रयोजनशीलता मे साहित्य से भिन्न हो जाती है। यह भिन्नता साहित्य के लिए बडा उलझन पैदा करती

---

44 जन सचार सम्पादित, राधेश्याम शर्मा के पत्रकारिता आर साहित्य राकेश वत्स के लेख से पृष्ठ 206

45 डा0 कमल किशोर गोयनका से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिह'

46 डा0 अवध नारायण मुद्गल, पूर्व सम्पादक सारिका, से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिह'

है[47] हालाकि साहित्यकारो की अपेक्षा पत्रकारा की ओर स उम पार्थक्य का आग्रह कम ही रहता है।[48] जब पत्रकारिता मिशन से व्यावसायिक हो गया तव उसके लेखन के तकनीक के आविष्कार की आवश्यकता महसूस हुई। किसी भी व्यावसायिक कार्य की दक्षता के लिए तकनीक एव शैली की अपेक्षा होती है। पहले समाचार बिल्कुल साहित्यिक शली मे क्रानालोजिकल आर्डर मे या कालक्रम के अनुसार लिखे जाते थे। इसमे पाठक को सारतत्व काफी पढन के बाद मिलता था। फिर वह समाचार का अर्थ निकालता था। हर पाठक के पास न इतना पढने का ममय होता है और न उसके अर्थ गूढ तत्व को समझने की क्षमता।[49] समाचार लिखने के उल्टे पिरामिड के सिद्धान्त की खोज से समाचार लेखन की काया ही पलट गयी। इसमे लीड, इन्ट्रो या सिनाप्सिम क रूप मे समाचार के सार को प्रारम्भ मे ही लिख दिया जाता है, फिर उस समाचार का पल्लवन किया जाता है। इससे शैली की दृष्टि से पत्रकारिता साहित्य से भिन्न हो गयी और इसे एक बडी क्रान्ति के रूप मे देखा गया। व्याख्यात्मक पत्रकारिता के साथ रिपोर्टिंग की भाषा ही साहित्य से भिन्न हो गई।

हार्ड न्यूज मे उल्टे पिरामिड के सिद्धान्त से समाचार लेखन प्रारम्भ हुआ, लेकिन साफ्ट न्यूज मे अवसर को तलाश कर सवेदनात्मक स्पर्श के साथ साहित्यिक भाषा के प्रयोग की चेष्टा की गई और फीचर लेखन की पद्धति का विकास हुआ। पत्रकारिता के अभ्यास मे परिवेश के प्रति सर्तकता का महत्व बढा जिसे पत्रकारिता की भाषा मे न्यूज सेन्स कहा गया। इस प्रकार पत्रकारिता मे तकनीक और शैली के विकास से साहित्य का पार्थक्य रूपायित होने लगा ओर साहित्य एव पत्रकारिता के अन्तर्सबन्धो पर चर्चा होने लगी।

पूर्व की पत्रकारिता ने साहित्य को विस्तार देने के साथ कई विधाए भी विकसित होने मे मदद की, किन्तु मात्र विधा के आधार पर किसी रचना को 'साहित्य' अथवा 'पत्रकारिता' की कोटि मे रखने का निर्णय करना कठिन है, क्योकि पत्रकारिता की कोई ऐसी विशिष्ट विधा नहीं हैं जो साहित्य सर्जन के लिए उपयुक्त न बनायी जा चुकी हो। रिपोर्ताज, डायरी, स्केच, आदि तो पूरी तरह साहित्य की

---

47 'माध्यम' मई 1964 मे प्रकाशित, 'साहित्य आर पत्रकारिता नेमिचन्द जैन' का लेख, पृष्ठ 11

48 'माध्यम' मई 1964 में प्रकाशित, बालकृष्ण राव का लेख पृ० 23

49 समकालीन पत्रकारिता मूल्याकन ओर मुद्दे, सपादक राजकिशार, पृष्ठ 23

विधाओ के रूप मे स्वीकृत हो ही चुके हैं 'रेडियो नाटक', 'फीचर' आदि भी तेजी से साहित्यिक विधा की मान्यता प्राप्त करते जा रहे हैं। डिलन टामस ने तो फिल्म का एक 'सिनारियो' ही लिख दिया जिसका अच्छे-अच्छे समीक्षको ने नि सकोच श्रेष्ठ साहित्यिक कृति के रूप मे अभिनदन किया। सच तो यह है कि इसकी कल्पना ही सभव नहीं है कि शब्दो से निर्मित कोई भी रचना ऐसी हो सकती है जिसे प्रतिभा सपन्न लेखक साहित्य के स्तर तक न पहुँचा सके और यदि हम मान सकते हैं तो फिर यह कैसे स्वीकार करे कि पत्रकारिता के लिए साहित्य के स्तर तक उठ जाना सभव नही है क्योकि दोनो की निर्मिति का आधार भाषा है, शब्द है।[50]

पत्रकारिता और साहित्य भेद और विशिष्टता

साहित्य और पत्रकारिता के इन सम्बन्धो ने दोनो के स्वरूप मे काफी अतर भी उपस्थित किया है तथा इसके उद्देश्यो को भी प्रभावित किया है। इससे एक अजीब अन्तर्विरोध उपस्थित हुआ है। पत्रकारिता के प्रभाव मे साहित्य व्यावसायिकता की तरफ बढा है और पत्रकारिता रचनात्मकता की तरफ खिसकने लगी है। यहीं से साहित्य पर यह आरोप लगाने की गुजाइश पैदा हो गई कि वह अखबारी बनता चला जा रहा है और साथ ही पत्रकार भी यह आवाज बुलन्द करने लगे है कि उनके लेखन को भी साहित्य की कोटि मे रखा जाए। लेकिन प्रतिष्ठित साहित्यकारो और साहित्य की शुद्धता के पक्षधरो ने इसका विरोध किया है। इस विरोध के कारणो तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि इन दोनो क्षेत्रो के विषमता की विवेचना कर ली जाए।[51]

विशेषज्ञो के मत मे पत्रकारिता एव साहित्य मे मौलिक अन्तर रचनात्मकता को लेकर है। साहित्य की अभिव्यक्ति सर्जनात्मक होती है जबकि पत्रकारिता म सपाट बयानी होती है। पत्रकारिता का कार्य बिना सर्जनात्मकता के चल सकता है लेकिन साहित्य का नहीं। साहित्य जो कुछ भी अभिव्यक्त या सप्रेषित करता है, रचनात्मक बनाकर करता है जबकि पत्रकारिता जिन्दगी के घात-प्रतिघातो अथवा

---

50 माध्यम, मई 1964 के बालकृष्ण राव के लेख से, पृष्ठ 23

51 जन सचार सपादित राधेश्याम शर्मा के पत्रकारिता और साहित्य राकेश वत्स के लेख से, पृष्ठ 206

उसके स्थूल यथार्थ को अपने पाठको तक पहुँचाने की काशिश करती है। आधार दोनो का शब्द ही रहता है।[52]

वैसे सर्जनात्मकता किसी भी कला-कृति का पहला, सर्वोपरि और अनिवार्य गुण है। जबकि सचार माध्यमो मे सर्जनात्मकता कुछ होती भी हो तो वह भी किन्हा अन्य स्थितियो से आक्रान्त रहती है।[53] जैसे पत्रकारिता की सर्जनात्मकता सूचना या समाचार से आक्रान्त रहती है। समाचार निबन्ध अथवा फीचर लेखो का उद्देश्य सूचना प्रदान करना हे आर दूसरे पत्रकारिता प्राय आम जनता को सम्बोधित होती है। अतएव पत्र-पत्रिकाएँ अपनी एक अलग भाषा गढते है। पत्रकारिता का लेखन तात्कालिक होता है समयबद्ध होता है। समाचार लिखना ह ता मूड बनाने का समय नहीं है। इस कारण रचनात्मकता अधिक आ भी नहीं कर सकती। यही स्थिति पत्रकारिता की अन्य विधाओ के लेखन मे भी है। पत्रकारिता का लेखन वस्तुत माग-पूर्ति के आधार पर होता हे यहाँ ऐसा नहीं है कि लेखक उसे अन्त प्रेरणा से लिखने के लिए विवश हो जाए। यहाँ पहले तय हो जाता है और माँग होती है कि इस विषय पर समाचार, फीचर, निबन्ध अथवा सम्पादकीय लिखकर दीजिए। तो फिर दबाव मे लिखा यह लेखन रचनात्मक हो भी कैसे सकता है रचनात्मकता जब जी-चाहे जिस किसी रचना मे मनमाने ढग से पैदा नहीं की जा सकती। कुछ क्षण या एक समय विशष ऐसा हाता है जिसमे रचनाकार की रचना मे वह बिना बुलाए मेहमान की तरह स्वय आ सकती है, या 'पुहुप वास' की तरह स्वय प्रकट हो जाती है। शब्द की ताकत की सीमा का एहसास उस वक्त होता है जब हम रचनात्मकता को समझने या समझाने के लिए शब्द का चयन करने लगते हैं। पूरी कोशिश करने पर यूँ लगता है जैसे बहुत कुछ अनकहा रह गया है या पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं हो पाया है। यह किसी श्रेष्ठ या अपने समय की पढने की परम्परा या आलोचना को चुनोती देने वाली रचना के साथ भी होता है। रचना मे बहुत कुछ अभिव्यक्त या अनकहा रह जाता है, वास्तव मे वह अनकहा ही रचना का प्राणतत्व है। उस प्राणतत्व को बिना कहे ही जो शक्ति रचना के पाठको के मन-मस्तिष्क ओर आत्मा तक पहुँचा देती है, मुझे लगता है शायद वही शक्ति रचनात्मकता की शक्ति होती है। यह शक्ति पत्रकारिता के स्तर पर लिखे

---

52 वही, पृष्ठ 207

53 पत्रकारिता और साहित्य -रामस्वरूप चतुर्वेदी, माध्यम, 1968 पृष्ठ 19

गए लेखन मे नहीं हो सकती क्योकि पत्रकार को तो जरूरत के मुताबिक तुरन्त लेख या टिप्पणी तैयार करनी होती है। वह साहित्यकार की तरह रचनात्मक क्षणा की प्रतीक्षा नहीं कर सकता। साहित्यकार के पास यह सहूलियत होती है कि जब उसको अन्तर से प्रेरणा मिले, रचनात्मक क्षणो का दबाव महसूस हो तब लिखे। अगर कोई साहित्यकार प्रेरणा या दबाव की प्रतीक्षा किये विना साहित्य का सृजन करता है तो उसका साहित्य भी रचनात्मकता विहीन या अखबारी साहित्य ही होता है। सच कहा जाए तो वह साहित्य होता ही नहीं है। व्यावसायिक किताबो का निर्माण करने वाले लेखको के लेखन मे सबसे बडी कमी यही रहती है कि उसमे रचनात्मकता नहीं होती हे। हॉ, कभी-कभी पत्रकार के हाथ से लिखे जाने वाले लेख भी रचनात्मक क्षणो मे से तपकर निकलने के कारण रचनात्मकता से परिपूर्ण होते है। ऐसे लेख पाठको के हृदय पर अच्छी साहित्यिक रचनाआ जैसा ही प्रभाव छोडते हैं। अज्ञेय और रघुबीर सहाय के कई लेख इसके लिए उदाहरण के रूप मे पेश किये जा सकते हे।[54] यह रचनात्मकता ही सचार माध्यम या पत्रकारिता के लेखन को साहित्य की ऊँचाई तक ले जा सकती है। पत्रकारिता मे इस तरह से उत्पन्न साहित्याभास के कारण ही इसे अस्थायी अथवा तात्कालिक किस्म का साहित्य सृजन कहते हैं या दूसरे शब्दो मे यह कि पत्रकारिता जल्दी मे लिखा गया साहित्य है।[55]

साहित्य मे मौलिकता इसी सृजनात्मकता के कारण आती है। इमे रचना और रचनाकार दोनो का निजी वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। जिस रचना मे यह सृजनात्मकता या मोलिकता, या निजी वैशिष्ट्य जितना अधिक होगा वह रचना उतनी ही श्रेष्ठ होगी।[56] रचना की यह विशिष्टता और मौलिकता सवेदना, रचना दृष्टि, अभिव्यक्ति शिल्प अथवा सम्प्रेषण के कारण होती है जबकि पत्रकारिता के लेखन की विशिष्टता या मौलिकता नए समाचार अथवा समाचार के नये पहलुओ को देने मे होती है। कभी-कभी पत्रकार भी साहित्यिक, सवेदनात्मक शेली मे समाचार ओर फीचर लिख कर विशिष्टता लाने की कोशिश करते हैं। यह साहित्याभास भले हो, साहित्य नहीं है।

---

54 'जन सचार,सपादित-श्री राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 208

55 अच्युतानन्द मिश्र, सपादक जनसत्ता से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य - योगेन्द्र प्रताप सिह'

56 साहित्य और सामाजिक मूल्य, डा0 हरदयाल, पृष्ठ 46

पत्र-पत्रिकाएँ प्राय जीवन के बाह्य दृश्य पर, अत्यत तात्कालिक तथा सामयिक पक्ष पर अधिक ध्यान देती हैं। इससे उसमे एक विचित्र प्रकार की वर्णनात्मकता आ जाती है। अखबारी भाषा तथा साहित्य की भाषा एक होते हुए भी भिन्न हो जाती है। साहित्य की भाषा भाव-चित्रात्मक होती है जब कि पत्रकारिता की भाषा तथ्यात्मक। साहित्य की भाषा मे अभिधा, लक्षणा और व्यजना तीनो शब्द शक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं। ये एक ही साथ कई अर्थो की अभिव्यजना कर सकती है जबकि पत्रकारिता की भाषा के लिए यह सीमा रहती है कि वह एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति करे। साहित्य मे नए एव क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग कर सकते हैं लेकिन पत्रकारिता इससे बचती है। पत्रकारिता के प्रशिक्षण मे व्यगात्मक लहजे मे कहते भी हैं कि 'जो साहित्यकार है वे अपनी कलम बन्द कर दे। क्योकि वह कठिन शब्दो का प्रयोग करता है।' पत्रकारिता मे वस्तुनिष्ठ, तथ्यपरकता और इन्द्रियगोचर यथार्थ के सप्रेषण तथा तात्कालिक प्रभावशीलता की माँग है। इसके विपरीत साहित्य चेतना के गहरे स्तरो का सस्कार या उसके क्षितिज का विस्तार है। मात्र सूचना या तथ्यो के समुच्चय मे वृद्धि नहीं, यह अनुभूति और जीवन के सत्य का दर्शन है। इन्द्रियगोचर बाह्य यथार्थ मे अधिक आत्मा का सत्य है। इसी कारण कई बार यह तर्क भी दिया जाता है कि साहित्य व्यक्ति को सवेदनशील बनाता है और पत्रकारिता सवेंदनहीन।

श्रेष्ठ पत्रकारिता मे यथार्थ को साधारण दर्पण के समान यथावत् प्रतिबिब कर सकना उद्दिष्ट और वाछनीय अथवा पर्याप्त होता है, परन्तु साहित्य का जीवन-दर्पण उस रूप मे नहीं, वह एक विशेष प्रकार का दर्पण है जिसमे जीवन का एक विशेष ममायोजित यथावत् से भिन्न दर्शक सापेक्ष रूप दिखायी पडता है। साहित्य जीवन के अस्पष्ट, धुँधले, अस्फुट सम्वन्धो को मुखर करता है, रूपहीन-आकारहीन भावों और विचारो को रूप और आकार देता है, जीवन के उलझे-बिखरे सूत्रो मे सार्थकता और उनके परस्पर निहित सम्बन्धो को उजागर करता है। वह यथार्थ का यथावत् चित्र नहीं रचनाकार की विशिष्ट अनुभूति द्वारा रूपायित सस्कृत अभिव्यक्ति है।[57]

---

57 'माध्यम' 1964 मई पृष्ठ 14

अखबार किसी घटना का यथा तथ्य वणन कर लेते ह। साहित्यकार इन घटनाओ की आनुभविक सत्यता की अभिव्यक्ति करता है। इसके लिए वह कल्पना, नाटकीयता आदि का सहारा लेता है। घटना या तथ्यो को जानकर समाज या व्यक्ति म कुछ रचनात्मक परिवर्तन हो ऐसा उदाहरण बहुत कम मिलता है। यदि ऐसा होता तो नित्य समाचार मे सकडा घटनाओ के समाचार होते है उससे समाज परिवर्तित हो जाता। किन्तु अनुभव के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि साहित्य मनुष्य के मानस परिवर्तन मे सहयोगी है। सद्साहित्य पाठक का मन परिष्कार करते है। समाचार पत्रो मे प्रकाशित अपहरण, हत्या, शीलभग, चोरी डकैती, भ्रष्टाचार आदि की घटनाएँ इसके प्रति पाठको को उदासीन कर रही है तो दूसरी ओर साहित्य समाज की सवेदना का सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहा है। साहित्य मे विचार अनुभूति के स्तर पर आकर रचना को सपृक्त आर पुष्ट करती है। जबकि आज की पत्रकारिता विचारो को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत करती है। प्रिन्ट मीडिया मे विचारो की व्यापकता है, यह विचार समाचार और लेख के माध्यम मे अभिव्यक्त होती ह। किसी समाचार मे इन्ट्रो या लीड के बाद महत्वपूर्ण व्यक्तियो के विचारा का उद्धरण होता ह। उद्धरणात्मक स्वरूप इस बात को इगित करते है कि ये लोकतात्रिक व्यवस्था मे जनमत आर अभिमत की अभिव्यक्तियॉ है। दूसरे, इसमे इसी विचारो की अभिव्यक्ति है जो प्रासगिक अर्थ ग्रहण करते है। साहित्यिक कृति मे विचार तत्व गौण होता है। कृति स्वय पाठक को विचार के लिए उत्तेजित करती ह अपने किसी विचार का पक्षेपण प्राय कम करती है।

साहित्य एव पत्रकारिता दोनो समाज परिवर्तन के माध्यम है। पत्रकारिता सूचना, जनमत की अभिव्यक्ति, कर्त्तव्य एव अधिकार के प्रति जनता का सचेत करते हुए समाज परिवर्तन मे अहम् भूमिका निभात है, जबकि साहित्य मनुष्य के अत करण-निर्माण एव दृष्टिकाण-परिवर्तन करके समाज को बदलाव की दिशा मे प्रेरित करता है। साहित्य समस्याओ का स्थायी समाधान देने के लिए सचेष्ट रहता है। साहित्य ही एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य को अन्त करण की रोशनी मे देखता है, आविष्कार करता है और मनुष्य को देश, काल, स्मृति, सस्कृति आर उसकी जातीय स्मृति के साथ रखकर, उसके पूरे परिदृश्य को दृष्टि मे रखकर के कि मनुष्य की हैसियत वह कैसे कब कहाँ चला, उसके परिणाम क्या निकले, आगे क्या निकलेगे, सारे परिदृश्य पर एक निष्कर्ष देता है ओर मनुष्य को सावधान करता

है। जो मनुष्य को भीड की तरह बदलने का काम करता है वह साहित्य नही है।[58] समवत इसीलिए प्रेमचन्द ने कहा कि साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना ओर मनोरजन का सामान जुटाना नही है, वह देशभक्ति आर राजनीति के पीछे चलन वाली सचाई भी नहीं है बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुए चलने वाली सचाई है।[59]

साहित्य ओर पत्रकारिता का एक अतर समसामयिक परिवेश से सम्बद्ध करने वाले सूत्रो की स्पष्ट- दृश्यता आर अदृश्यता पर आधारित है। पत्रकारिता वह साहित्य है जिसमे समकालीन परिवेश से उसे जोडने वाले सूत्र स्पष्ट देखे जा सकते है। साहित्य वह पत्रकारिता है जिसे सामयिक परिवेश से जोडने वाले सूत्र पाठक ही नहीं बल्कि रचनाकार भी कभी कभी नही देख पाता है। पत्रकारिता के लिए तात्कालिक प्रभाव प्रधान होता है जबकि साहित्य शाश्वत राग का छूता है। साहित्यकार केवल समसामयिक भाव को सम्बोधित नहीं करता, उसका निवेदन मात्र अपने समय ओर अपने समाज के लिए ही नहीं है, उसके कथ्य की सार्थकता अजर-अमर है उसकी रचना का सोष्ठव अनश्वर है। पत्रकार अपने समय की समस्याओ से उलझता है, समकालीनो को सम्बोधित करता है, उन्हे किसी विशिष्ट दिशा मे कुछ करने कहने अथवा सोचने की प्रेरणा देना उसका तात्कालिक ही नही प्रधान उद्देश्य होता है।[60] पत्रकारिता मे जनमत की अभिव्यक्ति हाती है। लेकिन इसका मतलब कदापि नही है कि पत्रकारिता का लेखन सदैव तात्कालिक होता हे आर साहित्य का शाश्वत। रचना अपने रचनाकार के समकालीन यथार्थ से जन्म लेती हे। वह अपनी समकालीनता म देश आर काल दानो से बँधी होती है। फलत किसी भी श्रेष्ठ रचना मे उसका समकालीन देश आर काल प्रतिबिम्बित होता है।[61] पत्रकार का लेखन केवल उसके अपने समय के लिए ही सार्थक नहीं हाता है। दोना देश ओर काल के आयामो पर अपनी-अपनी विशिष्ट परपराओ के अतिरिक्त उस सशिलष्ट सास्कृतिक परपरा से, उस सामाजिक चेतना प्रवाह से भी सम्बद्ध है जिससे उन्हे अपनी बात आरा को निवेदित करने की प्रेरणा और शक्ति

---

58 हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 46 वे अधिवेशन बम्बइ म शैलेश मटियानी के भाषण का अश, साभार, सम्मेलन कार्य विवरण पत्रिका,

59 साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द, पृष्ठ 22

60 माध्यम, मई 1964 के राम स्वरूप चतुर्वेदी जी के लेख म पृष्ठ 21

61 साहित्य और सामाजिक मूल्य, डा० हरदयाल, पृष्ठ 45

मिलती है। प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यत पत्रकार भी हे। वर्नार्ड शा के शब्दो मे "ऐसा कुछ भी साहित्य के रूप मे दुनिया मे बहुत दिनो तक जीवित नहीं रह सकता जो पत्रकारिता भी न हो। जो व्यक्ति अपने और अपने समय के बारे मे लिखता है, केवल वही सचमुच समस्त मनुष्यता और सभी युगो के लिए लिख सकता है।[62]

अपने प्रारम्भिक जीवन मे रचनात्मक लेखन की रुचि के कारण से बहुत से व्यक्ति पत्रकारिता के क्षेत्र मे पदार्पण करते है, क्याकि कहानी, कविता या अन्य किसी विधा का साहित्यिक लेखन प्रतिदिन नहीं किया जा सकता है। अत अधिकाश पत्रकार जा अपने पूर्ववर्ती जीवन मे साहित्य लिखने की ओर प्रवृत्त हुए आगे चलकर उन्होने तात्कालिक समस्याओ पर लिखना शुरू किया और पत्रकारिता की ओर प्रवृत्त हुए। स्वतन्त्र लेखको के अतिरिक्त बहुत से ऐस पत्रकार हैं जो दोनो क्षेत्रो के लेखन से सम्बन्धित होते हैं। ऐसे पत्रकार यह मानते हैं कि पत्रकारिता उनके लिए अनुभवो का ससार उपस्थित करती है जो साहित्यिक लेखन के लिए उपयोगी होता है।[63] प्राय ऐसा देखने मे आता है कि साहित्यकार के अनुभव सीमित होते हैं जिसकी वजह से उनके लेखन मे आन्तरिक अनुभवो की पुनरावृत्ति होने लगती है। किन्तु साहित्यकार के पास सवेदना एव दृष्टि होती है, शैली और क्राफ्ट होता है। दोनो इस दृष्टि से एक दूसरे के पूरक होते हैं। माध्यम साहित्य के लिए सप्रेषण के अवसर प्रदान करते हैं और साहित्य पत्रकारिता को सवेदनायुक्त करता है। इस तरह से साहित्यकार पत्रकारिता को रचनात्मक बुलन्दियो तक उठा सकता है। साहित्यकार एव पत्रकार मे उद्देश्यगत समानता है, दोनो मानव सबधो की तलाश करते हैं। मनुष्यो के बीच बन रहे नये सम्बन्धो को बताना चाहते हैं। दोनो के कृतित्व मे पूर्ण समानता न हो फिर भी दोनो मे उद्देश्यगत समानता है। दोनो ही तथ्यो का प्रयोग अपने-अपने अनुसार करते हैं। पत्रकार के लिए यथार्थ वही है जो सभव हो चुका हो, साहित्यकार के लिए वह है जो सभव हो सकता है।

---

62 माध्यम, मई 1964, बालकृष्ण राव के लेख 'साहित्य और पत्रकारिता' से, पृष्ठ 25

63 डॉ० रामशरण जोशी, ब्यूरो चीफ नयी दुनिया दिल्ली से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य.- योगेन्द्र प्रताप सिह'

दोनो यदि घटनाओ के भीतर छिपे अर्थ नही खोजते तो दोनो असफल रहते है। सूचनाएँ सग्रहीत कर सजा देना सफल पत्रकारिता नहीं है, उसी प्रकार जमे केवल भावनाओ को सग्रहीत कर देने वाला साहित्यकार असफल है। जिस हद तक ये दाना प्रकार के लेखक घटनाओ के भीतर मानव सबन्ध के बदलते रूप देखते हैं, उस हद तक वे एक दूसरे के निकट आते हैं। ठण्ड से होने वाली मौतो के बारे मे पत्रकार से उसकी जाँच की अपेक्षा की जा मकती है। सभ्रान्त साहित्यकार से ठड मे अकडकर मरे हुए आदमी के लिए इतनी सवेदना दुष्कर है कि वह उसको लेकर साहित्य रच सके। उस मृत्यु मे न मृत्युबोध है न सत्रास क्योकि वह भोगा हुआ यथार्थ आदि नहीं है। तथापि पत्रकार के लिए ऐसा कोई सच्ची अनुभूति वाला बधन नहीं है। वह तटस्थ हाकर जॉच शुरू कर सकता है, वह ठण्ड मे मरने वाले के प्रति पक्षधर हो सकता है। और अपनी जांच के अतिम परिणाम का भी पक्षधर हो सकता है। हर हालत मे पत्रकार का ही यह काम है कि मृत्यु की ऐसी ठडी खबरे पढने के अभ्यस्त लोगो को बताए कि हर साल कुछ विशेष वर्गो के लोग ही ठड मे मरते हैं ओर उनके मन से यह भ्रान्ति दूर करे कि ये लोग जाडे मे बर्फ का मजा लेने निकले ये आर दुर्घटना मे मर गये। यदि पत्रकार यह काम करता है तो वह साहित्यकार हो या न हो आप उसके कृतित्व को साहित्यिक पत्रकारिता कह सकते हैं, इसलिए कि उसमे वही जिज्ञासा है जो साहित्यकार मे होनी चाहिए, इसलिए नहीं कि उसने अपना वृतान्त साहित्यिक शैली मे लिखा है।[64]

पत्रकारिता मे मानव समाज के दर्द को समझने वाली कविता, घटनाओ को कहानी की तरह लिखने वाली कल्पनाशीलता, इतिहास लिखने वाली पटुता, राज्य को मजबूत बनाने वाली शिल्प कला, दिल तक पहुँचने वाली मीठी या तीखी भाषा, बर्फीले पहाड, रेगिस्तान या अपार सागर के बीच रह सकने वाला धैर्य, स्वर्ग के सुख और नरक के कष्ट मे भी रखे जा सकने वाले सयम की अनिवार्यता आवश्यक है। दुर्भाग्य यह है कि भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दोरान बडे राजनीतिक हथियार का काम करने वाली पत्रकारिता की प्राथमिकता को आजादी के पचास साल बाद भी सही दिशा नहीं मिल पाई। ब्रिटिश राज के दौरान तत्कालीन सत्ता को उखाड फेकना तथा भारत को स्वतत्र कराना पत्रकारिता का सही और एकमात्र लक्ष्य था। लेकिन आज इसका लक्ष्य क्या केवल सत्ता के महल पर बने गुबदो

---

64 लिखने का कारण, निबन्ध सग्रह, रघुवीर साहय, पृष्ठ 30

के इर्द-गिर्द मडराकर उसे दुलारना या नोचना हो सकता है। राजनीति ही समाज का जीवन नहीं है, समाज के प्राण है। धूल-धूसरित गाँव, आधुनिक सुविधाआ मे वचित बढते कस्बे, आकाश को चूमने के लिए बेताब महानगरो मे हँसते-गाते आर चलते-फिरते लोग। कई बार ऐसा लगता है कि भारतीय पत्रकारिता अपनी वास्तविक भूमिका से विमुख हो रही है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि अखबार क्या कुछ छाप रहे हैं, महत्वपूर्ण यह है कि पाठक कितना ग्रहण कर रहे हैं।

स्पष्टत पत्रकारिता के लिए अनुभव की सच्चाई एव सप्रेषणीयता या पाठक की ग्रहणशीलता के साथ सोद्देश्यता या जिन अन्य पूर्वापेक्षाआ की चर्चा यहॉ की गई है निश्चित ही किसी साहित्य के लिए भी यही बात खरी उतरती है। यह सोद्देश्यता ही साहित्य एव पत्रकारिता का सेतु है।[65] साहित्य यदि भावाभिव्यक्ति अथवा किसी प्रकार का भावात्मक लेखन है तो पत्रकारिता मे कई विषय पर भावात्मक लेखन के उदाहरण मिलते हैं। समाचार जेसे नितात शुष्क विपयो को भी रचनाधर्मी कलम ने भावात्मक प्रस्तुति की है । खेल या अन्य छिट-पुट समाचार भी प्राय मिल जाते है जो मुहावरेदार, प्रतीको, बिम्बो आदि की भाषा मे लिखे होते हैं। समाचारो के शीर्षक प्राय इस प्रकार होते है कि पाठक की एक बारगी दृष्टि जाने पर उसे आकर्षित कर ले किन्तु इसका दुष्प्रभाव भी मिलता है। पत्रकारिता साहित्य की सभी विधाओ को रिपोर्ट या रिपोर्ताज के स्तर पर घसीटती है जिसमे रोचकता, सरसता, स्थूल प्रभाव पर आग्रह होता है, अनुभूति की गहनता, तीव्रता या सूक्ष्मता अथवा उसके मूल्याकन पर नहीं। इसका एक कारण यह भी है कि पत्रकारी रचना को समय पर तैयार होना चाहिए, जबकि साहित्यिक सर्जन मे प्राय एक प्रकार की तल्लीनता समय निरपेक्षता की आवश्यकता होती है। क्रमश पत्र-पत्रिकाओ मे लिखते रहने से साहित्यकार भी पत्रकारिता की इस पद्धति ओर उसके इस आदर्श को अनजाने ही अपना लेता है। यदि वह एक स्तर पर रोचक ओर उत्सुकतापूर्ण सुपाठ्य रचना करके अपने किसी पाठक समुदाय को सतुष्ट कर सकता है तो जीवन की गहराई मे उतर कर उस गहराई के दबाव को सहन कर उसे उतनी ही अनन्य प्रामाणिकता ओर तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करने की पीडा और श्रम झेलना क्यों आवश्यक है? अनुभूति को उसकी समस्त गहनता और तीव्रता मे जी सकना और उसे अभिव्यक्त करने के लिए उतनी ही तल्लीनता और सूक्ष्मता से उलझना साहित्य कर्म

---

65 आस्था का आगन, आलोक मेहता, पृष्ठ 17

की इस 'साधना' को पत्रकारिता ने लगभग अनावश्यक कर दिया है। आज भोंडी से भोंडी और निरर्थक रचना के भी कहीं-न-कहीं छप जाने की पूरी सभावना है और साथ ही किसी-न-किसी बचकाने किशोर पाठक-समुदाय द्वारा उनकी प्रशसा की भी। ऐसी स्थिति मे साधारण यश प्रार्थी लेखक अधिक परिश्रम क्यो करे? क्यो अपने अनुभव को और उसकी अभिव्यक्ति को निरतर निर्ममता से जाँचे? यह सभावना एक प्रकार से प्रत्येक युग मे ही रही होगी, पर पत्रकारिता के साथ उलझ जाने के कारण साहित्य कर्म के इस प्रकार मार्ग भ्रष्ट होने की आशका आज जितनी तीव्र है उतनी शायद कभी न रही हो। आज तो साहित्य मे जीवन के सहज ही उत्तेजित या प्रभावित करने वाले पक्षो को अथवा उनकी वैसी ही अभिव्यक्ति को सहज ही प्रश्रय ओर प्रोत्साहन मिलता है। लोकप्रियता सर्जनात्मक व्यक्तितत्व के लिए सहज ही काम्य वस्तु है, पर आज के युग मे उसकी प्राप्ति इतनी सरल हो जाने के कारण वह साहित्यकार के लिए बडा भारी फदा बन गयी है। इसी से अनुभूति की सच्चाई और गहराई के बजाय उसकी तात्कालिक प्रभावशीलता का कही अधिक महत्व हो गया है।[66]

पत्रकारिता के इस दबाव का प्रभाव साहित्य की विभिन्न विधाओ के रूप पर भी कम नहीं है विशेषकर साप्ताहिक या मासिको मे। धारावाहिक रूप मे छपने वाले उपन्यास, नाटक आदि मे इसी कारण एक प्रकार से पत्र-पत्रिकाओ के सपादकीय लेखो की-सी अवसरोपयुक्तता की तात्कालिकता होती है। प्राय उनमे समग्र रचना की अन्विति नहीं होती और उनके वस्तु-विन्यास मे प्रत्येक किस्त को यथासभव रोचक और स्वत सम्पूर्ण बनाने की प्रवृत्ति रहती है। तात्कालिक लोकप्रियता का यह मोह बडे से बडे लेखक को भी प्रभावित करता है और उसे अनिवार्य रूप से लेखक के स्तर से पत्रकार के स्तर पर पहुँचा देता है।[67]

साहित्य को पत्रकारिता के स्तर तक सीमित रखने का बडा करुण प्रभाव तब होता है जब कविता, कहानी, नाटक सभी समाचार पत्रो के सपादकीय लेखो की भाति लिखे जाने लगते है जिनमे क्षणिक उत्तेजना, भावुकता और सतही रोमाटिक आदर्शवादिता के अतिरिक्त जीवन की कोई विश्वसनीय गहन संवेदना नहीं होती। ऐसी रचनाएँ अपने बाह्य साहित्यिक रूप के बावजूद पत्रकारिता

---

66. माध्यम', मई 1964 के पृष्ठ 12

67 'माध्यम , मई 1964, पृष्ठ 13

के स्तर से ऊपर नहीं उठती और रचे जाने के साथ-साथ ही मर जाती हैं। निस्सन्देह ऐसी रचनाओ की क्षणजीविता उनकी अल्प उपयोगिता को अपने आप ही निर्धारित कर देती है। किन्तु चितनीय बात यह है कि साहित्य का ऐसा पत्रकारीय उपयोग समस्त साहित्य के मूल प्रयोजन और उद्देश्य के विषय मे ऐसा भ्रमजाल उत्पन्न करता है कि साहित्य के मानदड और उसके मूल्य को स्थापित करना कठिन हो जाता है।[68]

ऐसा इसलिए भी होता है कि समाचार पत्र के प्रत्येक वास्तविक अथवा सभाव्य पाठक को साहित्य का पाठक मान लिया जाता है। समस्त साक्षर को अपना पाठक मान लेने से स्वय लेखक साहित्य रचना को प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से निम्नतम मवेदनशीलता के स्तर पर स्वीकार करने लगता है, जीवन के बाह्य तथा दृश्य पक्ष पर अत्यन्त तात्कालिक आर सामयिक पक्ष पर बल देने लगता है। फलत· उसकी भाषा मे एक विचित्र प्रकार की वर्णनात्मकता आ जाती है।

पत्रकार और लेखक की दृष्टि मे एक प्रकार का अतर होता है। कोई रचनाकार या कलाकार यथार्थ के विभिन्न पक्षो से प्रतिक्रिया करते समय अपनी मूलदृष्टि सम्पृक्त रखता है। यथार्थ का बोध कराने के लिए दृष्टि का सम्पृक्त होना उसकी पहली आवश्यकता है क्योकि उसके बिना कोई सर्जनात्मक प्रक्रिया सभव नहीं हो सकती। दूसरी ओर यथार्थ के किसी भी स्तर का बोध कराने के लिए पत्रकार के तरीके अधिकतर विश्लेषणपरक होगे। इसी के अनुरूप विभिन्न स्थितियो के प्रति उन दोनो की अपनी प्रतिक्रियाए होंगी।[69]

मदर टेरेसा की मृत्यु पर पत्रकार इनके कार्यां का मूल्याकन कर सकता है। इस घटना के आलोक मे पूर्व व पश्चिम के सम्बन्धो को देख सकता है अथवा भारत मे मिशन के कार्यों के साथ धर्मान्तरण की समस्या पर विचार कर सकता है। पत्रकार का विचार विश्लेषणात्मक होगा। परन्तु साहित्यकार के लिए इस घटना की प्रतिक्रिया भिन्न होगी। रचनाकार के लिए मदर टेरेसा की मृत्यु एक सम्पूर्ण अनुभूति होगी और वैसे ही उसकी अभिव्यक्ति सर्जनात्मक और सम्पृक्त। रचना की सम्पृक्तता ही उसे स्वायत्त बनाती है। और किसी भी कलाकृति की उत्कृष्टता को जाँचने का आधार उसकी स्वायत्तता है। पत्रकारिता का स्तर उसमे निहित विश्लेषण से आँका जाता है जो मूलत तथ्यो का होता

---

68 माध्यम मई 1964, पृष्ठ 13

69 माध्यम' मई 1969, पृष्ठ 20

है, और कोई भी तथ्यपरक लेखन स्वायत्त नही हा सकता है क्योकि उसे बाह्य घटनाओ के आधार पर जाँचे जाने की अपेक्षा होगी।

इसे एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना उपयुक्त है। मान लीजिए एक सामान्य व्यक्ति की कोई चौदह वर्ष की लडकी है जो रोज समयानुसार स्कूल जाती है और लौटकर आती है। एक दिन घर नहीं लौटती। घरवालो की परेशानी का ठिकाना नहीं रहता। सब जगह तलाश की जाती है और अन्त मे हारकर पुलिस मे रिपोर्ट दर्ज करवा दी जाती है। पत्रकार इस घटना की खबर अपने पत्र के लिए इस तरह से बनाएगा। वह शीर्षक रखेगा 'छात्रा का अपहरण' ओर आगे लडकी के स्कूल जाने और घर न लौटने का हवाला देकर पुलिस मे लिखाई गई रिपोर्ट का जिक्र करेगा और साथ ही लडकी के अपहरण की सम्भावना की तरफ भी इशारा कर जाएगा। अखबार व्यवस्था विरोधी हुआ तो पुलिस के ढीलेपन पर छींटाकशी भी करेगा और पक्षकार हुआ तो उसकी मुस्तैदी से तारीफ मे दो शब्द लिख देगा।'

एक साहित्यकार इस घटना पर जब किसी रचना का निर्माण करेगा तो वह पहले लडकी का उस घर मे स्थान बताएगा। फिर लडकी के प्रति पाठको के मन मे लगाव पैदा करेगा। उसके बाद लडकी के स्कूल से घर न लौटने के बाद पैदा होने वाली स्थिति को बडे ही रचनात्मक और सवेदनशील ढग से प्रस्तुत करेगा। साथ ही वह अपनी कल्पना शक्ति से लडकी के साथ आज के इस भयकर माहौल मे जो कुछ होने या घटने की सभावना हो सकती है उसे किसी-न-किसी कलात्मक तरीके से पाठको के सामने रखेगा। अन्त मे वह लडकी की लाश भी दिखा सकता है ताकि आज की कमजोर व्यवस्था पर करारी चोट कर सके या आदर्शवादी बन कर उसे घर भी लिवा ला सकता है, उसकी मरजी है।[70] इस प्रकार यह एक ही घटना पत्रकार एव साहित्यकार दोनो को भिन्न तरीके से प्रेरित करेगी।

आधुनिक युग के तेजी से बदलते हुए ससार और यथार्थ बोध के नए विकसित होने वाले परिप्रेक्ष्यो के लिए अधिक भावप्रवण व्यक्तित्व का होना जितना पत्रकार के लिए आवश्यक हैं उतना ही साहित्यकार के लिए भी, यह मानना असगत न होगा। यहाँ भी रचनाकार का व्यक्तित्व पत्रकारिता की

---

70 जनसचार राधेश्याम शर्मा के लेख 'पत्रकारिता और साहित्य', राकेश वत्स के लेख से, पृष्ठ 209

पद्धतियो से लाभ उठा सकता है। क्योकि यथार्थ के ग्रहण ओर सवेदन की अपेक्षा उसे भी उतनी ही है, भले ही प्रतिक्रिया का ढग उसका अपना हो।[71]

पत्रकारिता का अधिकाश भी समय के साथ आउटडेटेड हो जाता है तथापि पत्रकारिता के कुछ महत्वपूर्ण साहित्य लम्वे जीवन के भी होते हैं। पत्रकारिता का एक्सपोजर अधिक होने के कारण अधिकाश रचनाकार पत्रकारिता से जुडते है। किसी साहित्य का जन सामान्य से परिचय कराने मे पत्रकारिता मदद करता है। पुस्तक समीक्षा जैसे स्तभ पाठको को पुस्तक पढने के लिए प्रेरित करते हैं। इधर पत्रकारिता ने भी अपने सरक्षण मूल्य को बढाने तथा स्थायी प्रभाव और सग्रहणीय स्वरूप धारण करने के दबाव से गभीर साहित्य का सहारा अपने विविध सस्करणो/विशेषाको के माध्यम से लिया है। इन सस्करणो मे साहित्य छप रहा है। इस आधार पर पत्रकारिता ओर साहित्य के सबन्ध का रूपायन करना अत्यत स्थूल है। पत्रकारिता ओर साहित्य दोना एक नही हे, दोना एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनो के सम्बन्धो मे आने वाली सबसे बडी बाधा व्यावसायिकता ओर उससे भी नीचे धधाकरण है। स्वतत्रता पूर्व पत्रकारिता ने जहाँ पर अपने प्रतिबद्ध रचनाधर्मिता से भाषा ओर साहित्य को सवर्द्धित और सरक्षित किया, वहीं आज पत्रकारिता पर बाजार का प्रत्यक्ष प्रभाव है। उसने बाजार की प्रतिद्वद्विता मे टिकने के लिए कुछ अन्य हथकडो को अपनाना शुरू कर दिया है, यथा, पत्रिका के मुख पृष्ठो पर यौवनाओ की अर्द्धनग्न तस्वीरो, छवियो की उपस्थिति से पाठक को आकर्षित करना, भाषा की सहजता के लिए मिश्रित एव दूषित भाषा का प्रयोग, अनुरजन के लिए सतही विषयो एव सन्दर्भों का प्रयोग, मनुष्य की स्वाभाविक वासनात्मक ऐषणओ को भुनाने का प्रयत्न आदि। इससे पत्रकारिता मे साहित्य हाशिए पर है। पत्रकारिता को इस स्थिति से उबरना होगा। लोकतत्र मे उसकी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। पत्र-पत्रिकाओ का दायित्व अब मनोरजन-भर नहीं रह गया है। मनोरजन का दायित्व अब इलेक्ट्रानिक मीडिया की ओर खिसक गया है। इलेक्ट्रानिक मीडिया को भी ठीक रास्ते पर लाने के लिए प्रिन्ट मीडिया को इलेक्ट्रानिक मीडिया के आलोचना की भाषा को गढना होगा जिससे वह भी सँवर सके। लिखित साहित्य अमर है उसे इलेक्ट्रानिक मीडिया से घबराने की जरूरत नहीं है। प्रिट मीडिया की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह कहाँ तक अपने को समाज मे हिसा, सेक्स और भ्रष्टाचार के साधारणीकरण करने से मुक्त रख सकता है और दायित्वपूर्ण सम्पादकीय दृष्टि का विकास कर सकता है।

इससे यह निष्कर्ष निकालना बडी भूल होगी कि साहित्य श्रेष्ठ और पत्रकारिता कोई घटिया कार्य है। प्रश्न एक दूसरे की श्रेष्ठता का इतना नहीं जितना दोनों के मूलभूत अतर और उनकी विशिष्टता

---

71 पत्रकारिता और साहित्य', राम स्वरूप चतुर्वेदी, माध्यम मई 1964 लेख से, पृष्ट 22

को ठीक-ठीक समझने का है। क्योकि लिखित शब्द के इन दोनो रूपो के उद्देश्य ही अलग-अलग नहीं, उनकी प्राप्ति के साधन, माध्यम और उपाय भी मूलत भिन्न-भिन्न हैं, और वे भिन्न-भिन्न स्तरो पर मानव मन के विकास और सस्कार मे सहायक होते हैं। यह भी सच है कि बहुत बाद दोनो के रूप मे अतर इतना कम बचता है कि उन्हे अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाए किन्तु फिर भी दोनो प्रकार के लेखन मे उद्देश्य, प्रयोजन, अभिव्यक्ति ओर प्रभाव की दृष्टि से जो अतर है वह आत्यतिक है और इसे किसी भी प्रकार से ओझल नहीं किया जा सकता है। आज के सजग साहित्य चितक का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह इस अतर को धुँधला न होने दें और साहित्य कर्म की विशिष्टता और जीवन के सस्कार मे उसके विशेष योग को यत्रयुग की सामूहिकता द्वारा अपदस्थ हो जाने से रोके।[72]

72 साहित्य और पत्रकारिता, नेमिचन्द्र जैन, माध्यम मई 1964, पृष्ठ 15

अध्याय - चार

इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं साहित्य

अध्याय - चार

इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं साहित्य

बीसवीं सदी को अपने विगत सदी से विद्युत चुम्बकीय ओर रेडियो तरग जैसी महत्वपूर्ण प्राविधिक उपलब्धियाँ मिली, जिसने मनुष्य के समक्ष सचार रूपी नवीन शक्ति प्रदान की। रेडियो, टेलीविजन, एव इन्टरनेट आदि इलेक्ट्रानिक माध्यमो की सशक्त उपस्थिति से प्रविधि एव सचार एक दूसरे के अविभाज्य अग बन गए और ये मनुष्य की क्षमताओ का दिन-प्रतिदिन विस्तार करते जा रहे हैं। इसने दूरवर्ती, बहुगुणित एव तीव्र प्रसारण एव सचरण को सुगम बनाया है। समसामयिक समाज मे सचार ने एक नयी महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका ग्रहण कर ली है। अत सचार के क्षेत्र मे प्राविधिक उपलब्धियो की उपेक्षा असभव है। दूसरी ओर, मुद्रित शब्द को सर्वप्रथम चुनौती इन इलेक्ट्रिानिक माध्यमो से ही मिली। आज विचारो एव भावो के सप्रेषण मे पुस्तको के अतिरिक्त अन्य यात्रिक माध्यम आ गए है तथा शब्द को सहृदय तक पहुँचाने मे माइक्रोफोन, कैमरा एव स्क्रीन अपरिहार्य हो गए हैं। अत. पारपरिक 'सहृदय' शब्द के अतर्गत दृश्यकाव्य एव श्रव्यकाव्य के भावको के अतिरिक्त उन बहुजन कीभी गणना अपेक्षित है जो आनुभविक सत्य का साक्षात्कार इन यात्रिक माध्यमो से कर रहे हैं। फलत माध्यम एव साहित्य के सापेक्षिक सन्दर्भ का जटिल प्रश्न स्वयमेव खडा हो जाता है जिसका विवेचन अभिप्रेत है। इलेक्ट्रानिक माध्यम एव साहित्य के अन्तर्सबध की चर्चा के लिए इन माध्यमो की सीमा, इसके परिप्रेक्ष्य मे साहित्य का विवेचन तथा इन माध्यमो से साहित्य एव साहित्यकार के सरोकार का सर्वेक्षण करते हुए सभावनाओ के द्वार को तलाशना होगा।

रेडियो : एक माध्यम के रूप में

रेडियो ने मौखिक शब्द के प्रसारण को सभव बनाया। रेडियो ध्वनि तरगो का माध्यम है, इसे दृश्यरहित, नेत्ररहित अथवा अन्धा माध्यम भी कहा जाता है क्योकि इसमे सचारक एव श्रोता दोनो ही एक दूसरे को नहीं देख सकते हैं। यहाँ अन्धापन दोतरफा होता है। जबकि फिल्म अथवा

टेलीविजन मे एकतरफा। इसमे प्रतिक्रिया जानना सहज नहीं है। रेडियो मस्तिष्क की आँख को न कि शारीरिक नेत्र को छूता है। यह एकल इन्द्रिय माध्यम है, क्योकि यह कानो को ही छूता है और इसलिए इसे नितात श्रव्य माध्यम कहा जाता है।[1] श्रव्य माध्यम होने के कारण यह अन्तरग माध्यम है, जिसे रसोईघर, बिस्तर, पढते एव अन्य काम करते समय भी साथ रख सकते है। यह अपने लोकधर्मी कार्यक्रमो के कारण पारिवारिक माध्मय भी है। पत्र-पत्रिकाओ की तरह आकाशवाणी का कोई खास वर्ग नही है, बल्कि इसके विशेष कार्यक्रमो के श्रोता अवश्य खास वर्गो के होते है। 'बी० बी० सी०', 'आकाशवाणी' एव 'विविध भारती' के विविध चैनलो के अपने-अपने श्रोता होते हैं। रेडियो का सम्बन्ध मूलत शब्द एव ध्वनि से है और साहित्य स्वय शब्द की विधा है अत इनके सबन्धो के रूपायन की असीम सभावना है।

मुद्रित भाषा से पृथक माइक्रोफोन की भाषा का व्याकरण

यद्यपि साहित्य मौखिक एव लिखित दोनो स्वरूपो मे होता है फिर भी साहित्य का प्राय मुद्रित या लिपिबद्ध स्वरूप ही प्रचलन मे अधिक है। लिपिवद्ध साहित्य की रचना का अपना एक व्याकरण होता है जबकि रेडियो के माइक्रोफोन की अपनी सीमा एव सामर्थ्य है। माइक्रोफोन बोलने वाले एव श्रोता के बीच की कडी हे जो सवेदनशील मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह करता है। अस्तु बोले हुए शब्दो मे स्वर-विन्यास, आवाज का उतार-चढाव और बलाघात का सही अन्दाज होना परम् आवश्यक है। छपे हुए शब्द मे हमे बहुत से विरामचिन्ह, कोष्ठको या शब्दो को रेखाकित करने के सुलभ तरीके उपलब्ध हैं जिनसे बात को सम्प्रेषित करने मे सुविधा होती है। बोले हुए शब्दो मे हमे यह सारा काम केवल अपने स्वर विन्यास और आवाज के उतार-चढाव से ही उत्पन्न करने होते हैं। शब्द और वाक्यो को परस्पर बाँधने का काम भी हम आवाज के सहारे की करते है। विराम, अर्द्धविराम, प्रश्नचिन्ह, आश्चर्य सूचक चिह्न, कोष्ठक या उद्धरण, दिए गए अशो को मूल कथन से भिन्न अभिव्यक्ति देने का काम सक्षम वार्ताकार की आवाज ही करती है।

---

1 जनसचार - राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ 108

यह सारा शिल्प यदि किसी दानिश और सक्षम वार्ताकार के हाथ मे आ गया तो वह चाहे गूढ वेदान्त दर्शन न भी छाँट रहा हो तो भी अपनी सहज बात को श्रोता के मन पर अमिट छाप छोड जाएगा। सिर्फ शब्दो को लगातार पढते रहना ही नही, कही - कहीं अत्यत अर्थवान 'पॉज' (मौन) भी बहुत कुछ सम्प्रेषित कर देता है।[2] बोले हुए शब्द की गति क्या हो इसकी समझ अत्यत आवश्यक है। बोलने वाले को यह एहसास नही होता कि जहाॅ छपे हुए शब्द को दुबारा पढने की सुविधा रहती है— वहाॅ बोले हुए शब्द की डोर एक बार टूट जाने पर दुबारा नही पकडी जा सकती। इसलिए कही हुई बात का क्रम यदि एक बार कही से टूट गया तो श्रोता के लिए आगे कुछ भी सुनना बेमानी होता है। इसलिए कहा जाता है कि रेडियो पर बोलते हुए एक ही बात को कई तरह से घुमाकर कई बार कहना चाहिए। इस दृष्टि से छापे म जिस पुनरावृति को अवगुण माना गया है, वह रेडियो मे सद्गुण के रूप मे समझा गया है।[3] यह रेडियो का सामर्थ्य हे। छपी हुई किताब मे पाठक के लिए छपाई के अक्षर एव चित्रादि आँख और मन के साधन है, लेकिन रेडियो मे वैसा कुछ नही है। शब्द और मात्र शब्द ही श्रोताओ के लिए ध्वनि रूप मे उपलब्ध होते है। ऐसी हालत मे रेडियो के लिए लिखते समय हमेशा ध्यान मे रखना होता है कि शब्द ऐसा हो, जो श्रोताओ के पकड सके।[4] बोधगम्य शब्द ही श्रोता तक पहुॅचते है। अन्यथा वे शून्य मे विलीन हो जाते है। रोडियो की भाषा के सदर्भ मे एक विचारणीय प्रश्न यह भी है कि रेडियो पर बोला गया शब्द ठीक वही अर्थ नही देता जो उसे पढते वक्त लिया जाता है। माध्यम की प्रकृति से भाषा भी बदलती है।[5]

बोले हुए शब्द, सगीत एव ध्वनि प्रभाव, ये सभी वायु तरगो द्वारा श्रोता तक ले जायी गयी आवाज है। श्रोता द्वारा इनके ग्रहण के लिए यह आवश्यक है कि श्रोता के कानो के लिए ये

---

2 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 107

3 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 107

4 भारतीय प्रसारण विविध आयाम, डॉ० मधुकर गगाधर पृष्ठ 61

5 दूरदर्शन विकास से बाजार तक, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 105।

प्रीतिकर एव सम्प्रेणशील हो। श्रोता की कल्पनाशक्ति का उत्तजित करने के लिए इनका कलात्मक समन्वय एवं मिश्रण होना चाहिए अन्यथा प्रसारक का उद्देश्य बेकार चला जाएगा।[6] रेडियो प्रसारण एक किस्म की सगीत प्रधान कविता है। जिस प्रकार सगीत प्रधान कविता मे शब्दो के महत्व के साथ ध्वनि का महत्व रहता है और अनुगूँज तक का महत्व रहता है। उसी तरह से रेडियो मे भी शब्दो के साथ उनकी ध्वनि का बडा महत्व होता है, कई बार ऐसा होता है कि दो साहित्यिक और अर्थगर्भित, शब्द साथ-साथ लिखे जाते हैं ओर पढने मे अच्छे लगते है, किन्तु जब उन्हे बोला जाता है, तो उच्चारण करने मे सुविधा नहीं होती है। जेसे एक उदाहरण लीजिए- शीला खुशी-खुशी ससुराल शाति के साथ गयी। यहॉ 'श' आर उसके वाद 'स' फिर 'श' की स्थिति है। वाचन के समय यह कठिनाई पैदा करेगा और हा सकता ह वाचक खुशी की सतर्कता से आकर 'ससुराल' को 'शशुराल' बोल दे। यह तो शव्दगत कठिनाई हुई। कई वार भावा की अभिव्यक्ति मे भी ऐसी ही दिक्कते आती है।[7] अत माइक्रोफोन के समक्ष हमेशा सजगता की मॉग रहती है। प्रसिद्ध लेखक जार्ज बर्नार्ड शॉ ने माइक्रोफोन को प्रसारणकर्ता का सवसे वडा मित्र एव उससे भी प्रबल शत्रु कहा था।[8] माइक्रोफोन का सही इस्तेमाल, उससे सही दूरी, आत्मीयता बना करके भी उससे एक कलात्मक तटस्थता बनाए रखना तथा फेडरो का कुशल प्रयोग[9] आवश्यक है। किसी प्रसारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह भाषा के अभिधा, लक्षणा ओर व्यजना तीनो शब्द शक्तियो से भली-भाँति परिचित हो और भाषा को फूहड ओर बाजारू बनाने वाले शब्दो से बचा सके। माइक्रोफोन पर खडे होने के पूर्व प्रसारक को आलेख तेयार कर लेना होता है। यह आलेख वस्तुत प्रसारण योग्य शब्दो का चनय, क्रम एव समायाजन है। जा माइक्रोफोन से प्रसारण की शर्तो पर लिखा होता है। यह साहित्य के अन्य लेखन से भिन्न होता है। माइक्रोफोन की इस सीमा एव

---

6 Elements in mass media, Published By IGNOU Page 22

7 भारतीय प्रसारण विविध आयाम - डॉ० मधुकर गगाधर, पृष्ठ, 62

8 Microphone is a devilish precision instrument, (G B Shaw, 1925)

9 शब्द की शाख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 99

लेखन और प्रसारण के अतर के कारण यह आवश्यक नही ह कि एक अच्छा लेखक स्वय एक अच्छा प्रसारक हो। इसके अतिरिक्त एक प्रसारक के लिए जरुरी नही कि वह ललित कलाओ मे निष्णात सिद्ध हो, किन्तु उसकी प्राथमिक जानकारी इतनी व्यापक तो हो कि वह सगीत के विभिन्न प्रकारो से, नाटक के तमाम रूपो से, सामाजिक, राजनेतिक पृष्ठभूमियो से और साहित्य के मूल ढाँचे और उसकी आधुनिक गतिविधियो से किसी-न-किसी स्तर पर परिचित हो।[10] प्रसारण मे पाण्डित्य प्रदर्शन उपयुक्त नहीं होता जहाँ तक वार्ता अथवा सामान्य कार्यक्रमो की बात है- भाषा और शब्द के पाण्डित्य रूप को कभी वार्ता मे शामिल नहीं करना चाहिए। रेडियो के लिए वार्ता लिखना, अनुसधान करना या लेख लिखना नहीं है। शोध आर लेख पाठको के लिए होते हैं। रेडियो वार्ता का भागता हुआ तूफान है, जो एक दिशा मे निरतर गतिमान रहता है। प्रवाहमान शब्दो से जितना कुछ आप श्रोताओ से बातचीत कर सके वही वार्ता की विशिष्टता है। इसमे एक भी शब्द और भाव निरर्थक नहीं जाना चाहिए।[11] माइक्रोफान के व्याकरण की इन मर्यादाआ को ध्यान मे रखकर ही प्रभावी प्रसारण किया जा सकता है।

अस्तु साहित्य के परिष्कृत, परिमार्जित एव विशिष्ट रूप को रेडियो पर उस रूप मे नही उतारा जा सकता जिस रूप मे मुद्रित साहित्य से विचार एव भावो की अभिव्यक्ति सभव है। रेडियो की इन सीमाओ का ध्यान रखते हुए बोल-चाल की भाषा का परिमार्जित एव प्राञ्जल रूप उपयुक्त एव सहज सप्रेषणीय होता है।

रेडियो मे रचनात्मक हस्तक्षेप

किसी माध्यम का सास्कृतिक व्यक्तित्व तब खडा होता हे जब उसमे सृजनधर्मी व्यक्तियो का सहयोग हो एव वह माध्यम रचनाधर्मिता से सरोकार रखे। इलेक्ट्रानिक मीडिया जहाँ

---

10 वही, पृष्ठ 96

11 रेडियो वार्ता की कला, डा० रमेशचन्द्र त्रिपाठी, सचार माध्यम जुलाई सितम्बर भारतीय जनसचार सेस्थान नई दिल्ली की त्रैमासिकी, पृष्ठ 17

सास्कृतिक प्रदूषण ओर फूहडता के लिए अभिशम हे वहॉ रेडियो उमका एक अग होने के बावजूद इस अभिशाप से कुछ हदतक मुक्त है। मम्कृतकर्मी एव साहित्यकारा द्वारा रेडियो को प्रत्यक्ष और परोक्ष योगदान मिलना इसका मूल कारण है। स्वर एव शब्द जिनके लिए ब्रह्म है ऐसे स्वर साधक एव शब्द साधको ने अपनी रचनाधर्मी दृष्टि से रेडिया को ममृद्ध ओर सम्पन्न किया। इसको स्वराज्य के बाद बडे-बडे साहित्यकारो आर रचनाकारा की सेवाएँ सलाहकार, प्रोडयूसर, वार्ताकार, सवाददाता के नाते उपलब्ध होती आ रही है जैसे- सुमित्रानन्द पत, भगवतीचरण वर्मा, डॉ० नगेन्द्र, अज्ञेय, रामचन्द्र, टन्डन, नरेन्द्र शर्मा, भारतभूपण अग्रवाल, नरेश मेहता, गिरिजा कुमार माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, विष्णु प्रभाकर, चिरजीत, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भवानी प्रसाद मिश्र, जगदीश चन्द्र माथुर, उदयशकर भट्ट, लक्ष्मीनाराण मिश्र, विद्यानिवास मिश्र, केशवचन्द्र वर्मा, गोपीकृष्ण 'गोपेश', अमृतलाल नागर, 'रेणु', रजनी पन्त्रिकर, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, ओकार नाथ श्रीवास्तव, राजनारायण बिसारिया, हेमलता आजनेयुलू, आरिगपृडि आदि।[12]

इन माध्यमो की महत्ता को स्वतत्रतापूर्व के रचनाकारा ने भी समझा था। इसलिए उस समय के अधिकाश रचनाकार भी किसी-न-किसी रूप मे आकाशवाणी से जुडे रहे। प्रेमचन्द्र अपनी दो कहानियो को आकाशवाणी से सुनाने दिल्ली गए थे। उस समय इस पाठ के लिए उन्हे अस्सी रूपये मिले थे। स्वाभाविक ही है कि उस समय उन्हे आकाशवाणी के प्रति मोह नहीं होता तो बनारस से चलकर इतनी दूर आकाशवाणी दिल्ली क्या आते?[13] चाहे महादेवी वर्मा हो या रामधारी सिह 'दिनकर', देश के सभी मूर्धन्य साहित्यकार आकाशवाणी से आजीवन जुडे रहे। 'नयी कविता' शब्द का प्रचलन सबसे पहले रेडिया की एक वार्ता के माध्यम से हुआ था।[14] अग्र पक्ति के आधुनिक हिन्दी कवि एव प्रगति-प्रयोग की नयी कविता आन्दोलन के प्रवर्तको मे से एक जगदीशचन्द्र माथुर 1943 से 1977 तक आकाशवाणी के वरिष्ठ कार्याधिकारी रहे। रेडियो को

---

12 जनसचार माध्यम और भाषा- डॉ प्रभाकर माचवे के लख से (जनसचार सपादित राधेश्याम शर्मा) पृष्ठ 133

13 साक्षात्कार , डॉ० कमलकिशोर गोयनका, दिल्ली वि वि । दृष्टव्य, सचार माध्यम बनाम साहित्य योगेन्द्र प्रताप सिह

14 साक्षात्कार, श्री लक्ष्मी शकर बाजपेयी, आकाशवाणी दिल्ली। दृष्टव्य सचार माध्यम बनाम साहित्य योगेन्द्र प्रताप सिह

आपका मुख्य योगदान हिन्दी कार्यक्रमो का प्रारभ, प्रयागशील नाटक, गीति-नाट्य, विज्ञान तथा ब्रह्माण्ड विषयक कल्पना नाटक तथा विशेष रूप मे लिखे गए 'श्याम आए नयना मे' तथा 'हम होगे कामयाब एक दिन' जैसे लोकप्रियगीत है। 'हम हागे कामयाव एक दिन' गीत एक राष्ट्रीय गान बन चुका है। बडी सख्या मे आपके नाटक तथा वृत्तलेख आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रम मे प्रसारित हो चुके है। तुलसीदास तथा सूरदा के शताब्दि समारोहो पर आपके वृत्त नाटक विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार श्री माथुर ने काव्य तथा साहित्य के लिए विशिष्ट योगदान तो किया ही है, साथ ही रेडियो तथा दूरदर्शन के क्षेत्र मे भी वडा यागदान किया है।[15] पडित कातानाथ पाण्डेय ने रेडियो के लिए नए प्रकार के हास्य-व्यग्य लिखना शुरू किया।[16] प्रख्यात नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर ने 1955 से 1962 तक आकाशवाणी- भारत सरकार क महासचालक के रूप मे अपनी सेवाएँ दी।[17] पहले सूचना प्रसारण मत्री आचरण धर्मी कमठ नेता सरदार बल्लभ भाई पटेल ने प्रसारण क्षमता का सही मूल्याकन करके देश म्नायु केन्द्रा म रेडिया स्टशना की स्थापना की अपनी सास्कृतिक विरासत से जोडते हुए भारतीय मानस का अस्मिता देने का प्रसारण मत्री बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर ने जिस तरह लगातार काम किया, वह भारतीय प्रसारण सेवा का स्वर्ण युग ऑका जाएगा। डॉ० केसकर को प्रसारण की कलाधर्मी नीति कार्यान्वित करने के लिए भी बालकृष्ण राव और फिर वाद मे भी जगदीश चन्द्र माथुर की प्रशासनिक सेवा ओर रचनाधर्मी दृष्टि का सहयोग मिला। केसकर-माथुर की जोडी ने रेडियो प्रोग्रामा का एक ऐसा अभूतपूर्व वातावरण तैयार किया, जिसमे एकाध वर्ष के भीतर ही हर भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार, कवि, सगीतज्ञ, नाटककार, अच्छे गायक और अभिनेता सभी किसी-न-किसी रूप मे रेडियो से जुड गए।

शिखरस्थ रचनाकारो ने देश की साहित्यिक, सास्कृतिक ओर सागीतिक परम्पराओ को आजाद हिन्दुस्तान के नवोन्मेष से जोडने की कोशिश की। तमाम ऐसे विशिष्ट व्यक्ति रेडियो केन्द्रो मे सलाहकारो या कार्यक्रमो के 'प्रोडयूसर' होकर आ गए थे। प्राग्राम के चयन, निर्देशन और

---

15 राष्ट्रवाणी, सम्पादक - रमश नारायण तिवारी, प्रकाशन विभाग भारत सरकार पृष्ठ 3।

16 हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, सम्पादित धीरेन्द्र वर्मा , पृष्ठ 79

17 हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, सम्पादित धीरेन्द्र वर्मा , पृष्ठ 198।

सयोजन मे उनकी आवाज ही सर्वोपरि थी। नौकरशाही और लालफीताशाही का प्रोग्रामो की वरीयता के समक्ष झुकना पडा था। यह जबरन झुकना नोकरशाही के गले के नीचे कभी नही उतरा। पर उन्हे पडित सुमित्रानन्दन पन्त, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, उदयशकर भट्ट, फणीश्वर नाथ रेणु, आर सी प्रसाद सिह, हस कुमार तिवारी, हरिवश राय बच्चन, अज्ञेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, लक्ष्मी नारायण लाल, जैसे तमाम लोगो के अनेक हिन्दी केन्द्रो से जुड जाने से सहसा सारी रचनात्मक प्रतिभा को नकारना कठिनतर होता गया। यही हाल मराठी, गुजराती, बगला, तमिल, मलयालम, तेलगू, कन्नड आदि भाषाओ के रेडियो केन्द्रो मे भी हुआ।[18] रेडियो मे अखिल भारतीय स्तर के साहित्य समारोह भी आयोजित हुए। सर्वभाषा कवि सम्मेलनो की परम्परा चली। देश की सम्पूर्ण रचनात्मक प्रतिभा को रेडियो के द्वारा भारतीय पटल पर पहली बार इतने महत्वपूर्ण ढग से उतारा गया कि भारतीय साहित्य, सगीत, नाटक, और तत्सबन्धी कला दृष्टि से आम श्रोता का साक्षात्कार हुआ[19] और श्रेष्ठ रचनाए उसके मनोरजन का आधार बनीं।

शुरू-शुरू मे जब देश मे रेडियो तत्र से प्रसारण प्रारम्भ हुआ तब सभी केन्द्रो पर समझ-बूझ वाले स्टेशन डाइरेक्टर नियुक्त हुए वे रेडियो की विधा के अच्छे जानकार थे और उनकी क्षमताएँ भी तदनुरूप थीं। उनके पास अपने केन्द्रो को चलाने के व्यापक अधिकार थे। अपनी जाँच-परख से वे अपने केन्द्रो मे काम करने वाले प्रोग्राम के अधिकारियो को स्वय ही नौकरी दे सकते थे। उन पर कोई प्रतिबन्ध न था। वे खासे निरकुश होते हुए भी कलाकारो के प्रति विशिष्ट तमीजदारी से पेश आते थे और जो शीर्षस्थ व्यक्ति केन्द्र पर आते, उनसे मिलना - जुलना और उनका सम्मान करना उनका विशेष दायित्व था। सामान्यत उनके कमरे मे आना जाना प्रतिबन्धित था, उनके द्वारा किसी को विशेष रूपसे बुलाये जाने पर पूरे केन्द्र मे सनसनी मच जाती थी। इनमे

---

18 शब्द की साख, केशव चन्द्र वर्मा, पृष्ठ 25

19 शब्द की साख, केशव चन्द्र वर्मा, पृष्ठ 26

कई स्टेशन डाइरेक्टर पत्रकारिता आर साहित्य जगत मे अपनी प्रतिभा के बल पर आये थे। कई उल्लेखनीय प्रतिभाएँ इस पद पर रहीं है। अपने व्यापक गुणा, प्रभाव ओर सपाट अधिकारो के कारण किसी भी रेडियो स्टेशन के स्वरूप का केन्द्र विन्दु उसका केन्द्र निदेशक ही होता था। जो उस समय (और इस समय भी) स्टेशन डाइरेक्टर के नाम से ही जाना जाता था। वे लोग जो शीर्ष पर थे अधिकाशत उर्दू भाषा जानने वाले थे। इसी कारण अनेक केन्द्रो पर - जिनकी सख्या बहुत सीमित थी- उर्दू बहुल प्रोग्राम ही होते थे। हिन्दी भाषा से लोग उदासीन थे। उर्दू भाषा के मुकाबले उसे अधिक 'ग्राम्य गिरा' समझा जाता था। हिन्दी वालो ने रेडियो के इस तरह की तमाम नीतियो को लेकर बहुत दिनो तक रेडियो केन्द्रो का ओर उनसे आए हुए प्रोग्रामो का बहिष्कार कर रखा था। प्रसारण मत्री केसकर के काल मे जब श्री बालकृष्ण राव (आई सी एस) प्रसारण विभाग के महानिदेशक और सचिव हुए तो उन्होने सर्वप्रथम हिन्दी के बहिष्कार आन्दोलन को समाप्त कराया। हिन्दी कवि प० सुमित्रानन्दन पन्त रेडियो म कार्यक्रम के सलाहकार बने। फिर वे चीफ प्रोड्यूसर भी हुए। डॉ० केसरकर के ही मत्रित्व काल मे हिन्दी के नाटककार श्री जगदीश चन्द्र माथुर (आई सी एस) महानिदेशक के पद पर आये। केसकर आर माथुर की जोडी ने रेडियो की उर्दू बहुलता को समाप्त करके उसे राष्ट्रीय धारा म जोडने की कोशिश की। हिन्दी के अनेक वरिष्ठ कवि और लेखक रेडियो स्टेशन के कार्यक्रमा से सीधे जुडे। बहुतो को कार्यक्रमो का प्रोड्यूसर बनाकर अलग-अलग केन्द्रो पर नियुक्त किया गया।[20] उस समय प्रशासक एव साहित्यकारो का परामर्शदाता मण्डल था। ये लोग रचनाकारो, गुणीजन एव ससाधनो के पास स्वय जाकर जोडने का प्रयास करते थे और साथ ही उनकी नियमित एव स्थायी सेवाएँ प्राप्त करने का स्वय अग्रह भी करते थे। अमृतलाल नागर, फणीश्वर नाथ रेणु, लक्ष्मी नारायण लाल, भगवती चरण वर्मा जी, आदि सभी लोग इसी प्रकार आकाशवाणी से जुडे । इस काम म नोकरशाही बाधक न थी। कुछ घटनाओ का उदाहरण देना प्रासगिक होगा। इलाहाबाद मे 1956 मे एक दिन आकाशवाणी के प्रोड्यूसर

---

20 शब्द की साख, केशव चन्द्र वर्मा, पृष्ठ 133

साहित्यकार श्रीमती शाति मेहरोत्रा के पास पहुँच एव उनसे आकाशवाणी से स्थायीरूप से जुड़ने का आग्रह किया। उन्हें यह सुनकर आश्चर्य हुआ क्योंकि न तो उन्होंने कोई आवेदन किया था और न ही किसी से उनकी इस विषय मे कोई बात हुई थी। फिर भी विशेष आग्रह के कारण वे आकाशवाणी से प्रोडयूसर के रूप मे जुडकर अपनी सेवाएँ दीं।[21] इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त के निमत्रण पर, 1950 मे केशवचन्द्र वर्मा कॉलेज की अध्यापकी छोडकर आकाशवाणी, इलाहाबाद के केन्द्र पर नौकरी शुरू किए।[22]ऐसे ही अनेको रचनाकारा के साथ हुआ।

साहित्य एव माध्यम के रूप मे आकाशवाणी दोनो सहधर्मी रहे है। साहित्यकारो ने प्रसार माध्यमो के रूप मे आकाशवाणी को अपनाने मे तनिक भी सकोच नहीं किया। विगत मे इलाहाबाद हिन्दी प्रसारण मेखला का अत्यत प्रमुख केन्द्र था- लखनऊ आर पटना तक उससे जुडा हुआ था। इलाहाबाद वैसे भी साहित्यिक गढ था। जो यहाँ नहीं रहते थे, वे भी बराबर आते रहते थे। पत जी ने हिन्दी की अनेक प्रतिभाओ को रेडियो कार्यक्रमा म समोलिया- एक निराला नहीं आये, जिन्हे मनाने का बडे प्रयास हुआ। महादेवी वर्मा बहुत बाद मे रेडिया पर कार्यक्रम देने को तैयार हुई। उन दिनो हिन्दी साहित्य के उत्कृष्टतम् कार्यक्रम यहाँ से प्रसारित हुए।[23] अनेक उद्‌भट विद्वान केन्द्र पर प्राय आते। हर दिन देश की किसी महान विभूति के दर्शन आकाशवाणी केन्द्र पर होते ही थे। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, फिराक, प० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० गोरख प्रसाद आदि रेडियो पर आते और नई चर्चाएँ करते। नयी कविता के प्रारभिक दिन थे। इस आन्दोलन को भी रेडियो केन्द्र ने आगे किया। जो कुछ साहित्य म, सगीत म, कला मे, इतिहास में, राजनीति मे जीवत था, जो नये आन्दोलनो के रूप मे आकार ले रहा था, वह सब आकाशवाणी के केन्द्रो से

---

21 श्रीमती शाति मेहरोत्रा का डॉ0 जीवन लाल गुप्त द्वारा लिया गया साक्षात्कार, आकाशवाणी से प्रसारित, दिनाक 29-3-99, साय 7 30 बजे

22 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 26

23 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 26

निरतर प्रतिध्वनित और प्रतिबिबित हो रहा था।[24]

इस प्रकार रचनाकार एव माइक्रोफोन का मराकार बना रहा किन्तु कालान्तर मे केसकर के चुनाव मे हार की वजह से जाते ही परिस्थितियॉ बदली। उनके बाद जो भी प्रसारण मत्री हुए, उनके पास सस्कृति और कला सबन्धी कोई परिपक्व दृष्टि थी ही नही। जगदीश चन्द्र माथुर भी डाइरेक्टर जनरल पद से हटे। उनकी जगह पर फिर कभी कोई रचनाधर्मी दृष्टिवाला महानिदेशक नही आया। रचनाकारो को दोयम दर्जे की जगह पर बिठाने की कोशिशे हुई। नौकरशाही का बोल-बाला हुआ। रेडियो के प्रोग्रामो के स्तर से सहसा उदासीनता शुरू हो गयी। तमाम लेखको और कलाकारो ने रेडियो छोड दिया। रेडियो को कलाधर्मी कार्यक्रमो से हटाकर सरकारी भोपू बनाने की मशीनरी तेजी से चली ओर केवल एक व्यक्ति की छवि बनाने के लिए उसका इस्तेमाल बेहयायी के स्तर तक उतर कर होने लगा। सत्ता की आत्मश्लाघा आर भोपूनुमा बडबोलेपन ने श्रोताओ के मन मे एक विरक्ति और डर भर दी। देश मे इमर्जेमी क दरम्यान आकाशवाणी से प्रसारित शब्द केवल हास्यास्पद हो कर रह गए आर विश्वसनीयता के नाम पर लोग दूसरे देशो के प्रसारण सुनने लगे।[25] दूसरे आकाशवाणी को टलीविजन ओर फिल्म की भी मार सहनी पडी। इसके बावजूद कुछ रचनाकारो ने उपयुक्त राम्ता निकालने की कोशिशे की तथा एक सरकारी विभाग मे रहकर भी रचनाधर्मिता को जीवत रखने का प्रयास किया। आज भी कोई अखबार अपने साहित्यिक परिशिष्ट के माध्यम से अथवा कोई पत्रिका मोटे तोर पर जितनी भी कविताएॅ प्रकाशित करती है, उससे कहीं ज्यादे कविताएँ रेडियो पर प्रसारित होती हे। देश के महानतम साहित्यकारो से लेकर नितान्त युवा रचनाकार तक को आकाशवाणी मे अवसर मिलता है। आकाशवाणी ही ऐसा माध्यम है जहाँ रचनाकार अपना अधिकार समझकर लड-झगडकर भी कार्यक्रम ले लेता है। छोटे-से-छोटे शहर एव कस्बे मे भी जहॉ उसके लिए कोई और माध्यम नहीं है, उसकी रचनाएॅ

---

24 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 27

25 शब्द की साख, केशवचन्द्र वर्म, पृष्ठ 27

कही नही छपती है, ऐसे लोगो का भी आकाशवाणी म अवसर मिलता है। इस प्रकार रचनाकारो को अवसर देने से लेकर रचनात्मकता और साहित्य का वातावरण बनाना, यह सभी कार्य आकाशवाणी करता है।[26] इसी कारण आकाशवाणी अन्य इलेक्ट्रानिक माध्यमो में अभी भी शिष्ट एव श्रेष्ठ है।

रेडियो से उपजी साहित्य कीनवीन विधाएँ

ऐसी बहुत सी विधाएँ हैं जो सिर्फ रेडियो के माध्यम से ही हो सकती है जिनमे रेडियो नाटक प्रमुख है। रेडियो नाटक एव रगमच के नाटक मे बहुत अतर है। रेडियो नाटक साहित्य की एक विधा के रूप मे विकसित हो चुका है, उसका अध्ययन हा चुका है एव उस पर शोधग्रथ प्रकाशित हो चुके है। कुछ रेडियो नाटक विश्वविद्यालय क पाठ्यक्रमा मे स्थान भी पा चुके है। 'अन्धायुग' पूर्णत रेडियो के लिए लिखा गया। विष्णु प्रभाकर जी ने बहुत सारे एकाकी नाटक रेडियो के लिए लिखे। इसी तरह रेडियो रूपक एक अलग विधा बन गई।[27] आकाशवाणी के अस्सी से ज्यादा केन्द्रो से विभिन्न भाषाओ मे रूपक ओर नाटक प्रसारित किए जाते हैं। मूल नाटको के अलावा लोकप्रिय उपन्यासो, लघु कथाओ आर स्टेज नाटका के रेडियो रूपातर भी प्रसारित किए जाते है अनेक आकाशवाणी केन्द्र बेरोजगारी, अशिक्षा, पर्यावरण प्रदूषण, लडके-लडकियो के बीच भेदभाव जैसी ज्वलन्त सामाजिक समस्याआ पर नियमित रूप से पारिवारिक-धारावाहिक-नाटक प्रसारित करते हे। महीने मे चोथे बृहस्पतिवार को नाटका या रूपको का राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। जिसमे क्षेत्रीय केन्द्रा से हिन्दी नाटक ओर उनका विभिन्न भाषाओ मे अनुवाद प्रसारित किया जाता है। दिल्ली के केन्द्रीय रूपक एकाश मे 30-30 मिनट की अवधि के विशेष भाषाओ मे रेडियो नाटककारो की अखिल भारतीय प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। सभी पुरस्कृत प्रवृष्टियो का हिन्दी मे अनुवाद करके उन्हे सभी केन्द्रो मे भेजा जाता है जहाँ उनका विभिन्न भारतीय भाषाओ मे रूपातर होता है।

---

26 साक्षात्कार - लक्ष्मीशकर बाजपेयी, आकाशवाणी दिल्ली दृष्टव्य मचार माध्यम वनाम साहित्य योगेन्द्र प्रताप सिह

27 साक्षात्कार - लक्ष्मीशकर बाजपेयी, आकाशवाणी दिल्ली दृष्टव्य, सचार माध्यम वनाम साहित्य योगेन्द्र प्रताप सिह

रेडियो नाटको का प्रसारण 1928 से हुआ। 3 जनवरी 1936 को क्षीरोदचन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित बगला नाटक 'मनतोष' का उर्दू रूपातरण नई दिल्ली केन्द्र मे हुआ। नाटको के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अतर्गत पहला रेडियो नाटक 26 जुलाई 1956 को प्रसारित किया गया। शुरू मे रेडियो नाटक रगमचीय नाटको जैसे ही होते थे। राजनारायण मेहरा के नाटक 'नल दमयन्ती' को अधिकाश व्यक्ति रेडियो का प्रथम हिन्दी नाटक मानते है। इसका प्रथम प्रसारण 13 नवम्बर 1936 को हुआ। कुछ प्रसिद्ध रेडियो नाटक लेखक है— सआदत हसन मटो, कृष्ण चन्दर, उपेन्द्र नाथ, 'अश्क', उदयशकर भट्ट, डॉ० रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, विष्णु प्रभाकर, चिरजीत, मोहन राकेश, राजाराम शास्त्री और धर्मवीर भारती। प्रसारण कार्यक्रमो मे सगीत के बाद नाटक सबसे दिलचस्प कार्यक्रम माना जाता है। आकाशवाणी के कार्यक्रमो का लगभग 3 7% समय रेडियो नाटको और रूपको पर दिया जाता है। 1980 मे कुल कार्यक्रमो से रेडियो नाटको के प्रसारण पर 13,270 घटे 10 मिनट समय दिया गया है। आकाशवाणी के केन्द्रो से हर वर्ष पॉच हजार नाटको का प्रसारण होता है। नाटको के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत दिल्ली से हर महीने मे एक बार नाटक का प्रसारण होता है। उसे प्रादेशिक केन्द्र या तो रिले करते है या अपने क्षेत्र की भाषाओ मे अनुवाद करके प्रसारित करते है।[28]

रेडियो नाटक मे पात्र की मनोदशाओ का चित्रण शब्द के माध्यम से किया जाता है। विभिन्न रचनाकारो द्वारा रचित जिन प्रमुख नाटको का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा हुआ है उनमे है— 'अन्धाजोगी' (एफ सी माथुर, प्रसारित 12-1-39), 'मदिर' (एम सी सरकार, 8-10-39), 'पूरन भगत' (कृष्णलाल प्रेम, 12-6-40) 'सीता स्वीकार' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 16-3-40), 'मालती माधव' (जे एन श्रीवास्तव, 13-7-46), 'गगावतरण' (एस एन चोबे, 1-4-47), 'पहाड के देवता' (राज माथुर, 17-5-47), 'सागर मन्थन' (कृष्णचन्द्र देव बृहस्पति, 24-5-47), 'कलिग की विजय' (हरीशचन्द्र खन्ना, 25-5-47), 'उद्धव सदेश' (एस एन चौबे, 14-6-47),

---

28 आकाशवाणी राम बिहारी विश्वकर्मा पृष्ठ - 44

'नव भारत' (सेठ गोविन्ददास और चन्द्रगुप्त विद्यालकार, 16-8-47), 'विश्वामित्र' (उदयशकर भट्ट, 1944), 'अन्त पुर का छिद्र' (गोविन्द बल्लभ पत, 1940), 'कलिग विजय' (जगदीश चन्द्र माथुर, 1937), 'औरगजेब की आखीरी रात' (डॉ० राम कुमार वर्मा, 8-6-42), 'अन्धायुग' (धर्मवीर भारती,, 1954), 'विल्वमगल की ऑखे' (चिरजीत, 31-5-63), 'घर का किवाड' (निर्मला दर, 4-10-63), 'हम हिन्दुस्तानी' (चिरजीत, 29-11-70), 'जहर का कोई रग नही' (रेवती सरन शर्मा, 1974), 'रगीन रोशनदान' (के पी सक्सेना, 1-6-79) 'विद्रुप' (मुद्राराक्षस, 26-2-76), 'यक्षप्रिया' (कैलाश भारद्वाज, 11-3-75), 'एक ओर अजनबी' (मृदुला गर्ग, 1977) 'एक फूल का पतझड' (काति देव, 22-2-77), 'तीसरा डक' (राजेन्द्र कुमार शर्मा, 16-2-73), और 'काले सूरज की शवयात्रा' (मुद्राराक्षस, 24-7-75) आदि।[29]

नाटक को हमारे आचार्यो ने दृश्यकाव्य की सज्ञा दी है, लेकिन वैज्ञानित विकास के युग मे रेडियो के आविष्कार के बाद नाटक का दृश्य रूप गायब हो गया और श्रव्यरूप रह गया। रेडियो नाटको की रचना केवल श्रव्य उपकरणा को ध्यान म रखकर की जाती है। नाटक का यह श्रव्यरूप साहित्य के अधिक निकट है। रेडिया नाटक कथोपकथन एव सगीत पर ही चलता है। कथावस्तु की श्रृखला वहाँ वाचक-वाचिका के शब्दा मे जोडी जा सकती है, यद्यपि बार-बार वाचक और वाचिका को लाना नाटककार की अक्षमता का बोध कराता है। रेडियो नाटक मे दो कलाओ का मिश्रण बडी आसानी से हो सकता हे - साहित्य ओर सगीत। साहित्य के अन्तर्गत भी कहानी और कविता रेडियो और नाटको पर एक साथ आ सकते है।[30] रेडियो नाटक का शिल्प अभी विकानशील है। सम्पूर्ण रूप से कथोपकथन मे बँधी हुई कहानी रेडियो नाटक मे सफल होती है। इस कथोपकथन का काव्यमय होना या प्रभावशाली होना ही अनिवार्य है, यदि बहुत पात्र हुए तो उसमे व्याघात पहुँचता है। दो चार पात्रो की आवाजो से तो हम उन्हें पहचान सकते हैं, पर

---

29 आकाशवाणी राम विहारी विश्वकर्मा पृष्ठ 46

30 साहित्य की मान्यताए - डॉ० भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 16

जहाँ पात्रो की सख्या अधिक हुई श्रोता भटकने लगता है।[31]

विगत मे रगमच पर अभिनय से पृथक नाटक का अस्तित्व विशुद्ध साहित्यिक रूप मे कुछ सन्दिग्ध सा रहा है। नाटक के साथ अभिनय की अनिवार्यता को देखते हुए नाटक को हिन्दी साहित्य मे स्थान प्राप्त करने के लिए सघर्ष करना पडा। जबकि शेक्सपियर मूलत नाटककार है और उनके नाटको मे जो कवित्व है वह केवल अभिनय का ही नही है, वह पठित साहित्य मे सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसी प्रकार कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की प्रतिष्ठा पठित काव्य के कारण है। किन्तु नाटक जहाँ साहित्य का अभिन्न अग होकर साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे विवेचित होने लगा है वहीं रेडियो नाटक अपनी स्वीकृति के बावजूद साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे अपना स्थान रेडियो नाटक के रूप मे नहीं बना सका है। किन्तु अब वह समय दूर नही जब रेडियो नाटक अभिनय की उपयुक्तता एव उत्कृष्ट सृजनधार्मिता के कारण साहित्य की अनिवार्य विधा बन जाए।

इसी तरह कुछ अन्य विधाएँ भी हैं जो किसी अन्य माध्यम से सभव ही नहीं है जैसे, किसी कहानी के रेडियो प्रस्तुति की। किसी कहानी मे यदि ट्रक चलने का वर्णन है तो कहानी मे पढ सकते है कि 'ट्रक चला जा रहा था' किन्तु रेडियो मे यह सुविधा है कि ट्रक चलने का ध्वनि प्रभाव दे सकते हैं। कहानी की रेडियो प्रस्तुति मे नाटकीय रूप मे दे सकते है, सवाद पढने की जगह पर सवाद बुलवा सकते हैं, सुबह के दृश्य को ध्वनि प्रभाव से उकेर सकते हैं, लडाई के दृश्य वर्णन को ध्वनि प्रभाव से उपस्थित कर सकते है। यह सब मात्र रेडियो मे ही सभव है। न तो पत्रिका से सगीत निकल सकता है, और न अखबार से ।

इधर कुछ और विधाएँ विकसित हुई है जिसे साहित्यिक मान्यता भले ही न मिली हो जैसे 'रेडियो रिपोर्ट' और 'गीतो भरी कहानी'। अन्य रिपोर्टिंग मे वक्तव्यो को सीधे कहना पडता है

---

31 वही, पृष्ठ 168

जबकि रेडियो मे उस साहित्यकार की आवाज मे ही वो बात प्रस्तुत कर सकते है। 'गीतो भरी कहानी' रेडियो की अपनी विधा है। उसमे कई-कई बार फिल्मो के गीत प्रयोग होने के कारण इसे कोई साहित्य की मान्यता नहीं देता है।

रेडियो मौखिक साहित्य का सवाहक

रेडियो अन्तरग माध्यम है। श्रम परिहार एव श्रम के साथ दोनो ही स्थितियो मे रेडियो की अतरगता सभव है। रेडियो इस युग मे लोक साहित्य की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम हो सकता है। क्योकि समाज की बदलती परिस्थिति मे सामुहिकता का अभाव होते जाने से एकातिकता बढ रही है। इस स्थिति मे सामुहिक उत्सवधर्मिता की बजाय एकातिकता का ही अवसर अधिक है। फलत इसी कारण से परपरागत लोक माध्यमो की तुलना मे ऐसे माध्यम यथा रेडियो, टीवी, फिल्म आदि का आज वर्चस्व है। जिसमे आदमी भीड मे भी अवतरण, रेडियो मे सभव है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि लोक साहित्य की भरपाई आकाशवाणी मे केवल विकास गीतो से ही न की जाए। जो सवर्था अस्वाभाविक सत्ता-स्तुति हुआ करती है।

रगमच, टीवी, फिल्म आदि अन्य माध्यमो मे लिखित साहित्य के अधिकाश भाग को माध्यमो के अनुकूल कुछ परिवर्तन आवश्यक हो जाता है, वहीं पर रेडियो ही एक ऐसा माध्यम है जो साहित्य के मौखिक स्वरूप की यथावत अभिव्यक्ति करता है। इस रूप मे रेडियो मौखिक साहित्य का प्रमुख सवाहक है जो शब्द की सचेतन प्रस्तुति करता है। ऐतिहासिक अनुभवो से स्पष्ट है कि इलेक्ट्रानिक माध्यमो विशेषकर रेडियो के कारण बोली हुई भाषा की प्रभुसत्ता पुन जीवत हो उठी है। अस्तु यह और भी आवश्यक हो जाता है कि रेडियो टेलीविजन से अपनी स्पर्धा न करे तथा रेडियो रचनाधर्मी हाथो की साधना बने। इसी मे इसका भविष्य भी सुरक्षित है,अपने इस गुरुतर दायित्व निर्वाह से रेडियो निश्चित ही साहित्य का प्रमुख प्रसारक सिद्ध हो सकेगा एव साहित्य की अन्यान्य नवीन विधाओ की खोज एव स्थापना मे सहयोग दे सकेगा।

दूरदर्शन और साहित्य

इलेक्ट्रानिक मीडिया का दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम दूरदर्शन (टेलीविजन) है जो सभी माध्यमो से सर्वाधिक लोक प्रचलित है। दूरदर्शन से पूर्व लोकनाटय एव प्रिट मीडिया ने लोकभाषा एव साहित्य से सरोकार रखते हुए अपना स्वतत्र सास्कृतिक व्यक्तित्व खडा किया। इसी तरह आकाशवाणी ने भी उपरोक्त दोनो माध्यमो के अनुभव का लाभ लेते हुए लोकस्वरूप ग्रहण किया भारत मे दूरदर्शन ने मीडिया के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन स्थापित किया एव सूचना क्रान्ति का सवाहक बना। लोकनाटय एव चित्रपट के बाद किन्तु उससे भी महत्वपूर्ण और परिवर्तकारी माध्यम दूरदर्शन ने विशाल सभावनाओ का मार्ग प्रशस्त किया। प्रारम्भ मे दूरदर्शन को विकास की जिम्मदारी मिली किन्तु मनोरजन कार्यक्रमो की शुरूआत होने के उपरान्त दूरदर्शन ने अपने को छिछले स्तर पर उतार लिया और लगभग डेढ–दो दशक मे ही वह अपनी रचनात्मकता से चुक कर इडियट बाक्स की उपाधि ग्रहण कर लिया।

विगत मे नाटक ने जिस प्रकार साहित्य–क्षम सवेदन को चाक्षुष सवेदन मे बदलने की सभावना का मार्ग प्रशस्त किया था उस तरह मे दूरदर्शन भी सभावनाशील था एव साहित्य की समझ एव जनशिक्षा के विस्तार के उपयोगी उपकरण के रूप मे सार्थक सिद्ध हो सकता था तो भी दूरदर्शन ने अपनी सीमाओ एव सभावनाओ का ख्याल किए बिना इडियट बाक्स की छवि निर्मित कर लिया। यही वह समय है जब मीडिया से जुडे ढेरो प्रश्न खडे हुए एव इलेक्ट्रानिक मीडिया पर यह आरोप लगने लगा कि यह साहित्य का अहित कर रहा है और पाठक पुस्तक विमुख हो रहे हैं। इसी प्रश्न के साथ साहित्यकारो एव आलोचको के दो वर्ग खडे हुए। एक वर्ग ने दूरदर्शन से अपना सम्बन्ध बनाकर धन एव ख्याति दोनो अर्जित किया। दूसरे वर्ग ने साहित्यिक शुचिता के नाम पर शब्द ब्रह्म को पवित्र बनाए रखने का बीडा उठाया।

शुद्ध साहित्य की दृष्टि से न देखे तो भी दूरदर्शन अपनी सामाजिक भूमिका मे सोच–विचार या समझदारी बनाने का माध्यम हो सकता था क्योकि दूरदर्शन अपने स्वभाव मे ही लोकतान्त्रिक है। फिर भी दूरदर्शन अपने व्यापक प्रभाव के बावजूद उस जिम्मेदारी का निर्वाह न कर सका। सामुदायिक विकास के मूलमत्र से अपनी यात्रा प्रारम्भ कर टेलीविजन आज बाजार तत्र के पूर्ण चगुल मे आ चुका है और

सम्पूर्ण जनसस्कृति को उपभोक्ता सस्कृति मे बदलने के उपकरण के रूप मे कार्य कर कर रहा है। वह बहुत कुछ राज्याश्रय से मुक्त होकर बाजार की शक्तियो से सचालित हो रहा है। 'जब दूरदर्शन शुरू किया गया था तब यह प्रतिज्ञा ली गई थी कि वह जनशिक्षण और विकासमूलक माध्यम होगा साथ ही वह जनता का मनोरजन भी करेगा। लेकिन देखते–देखते उसका काम सिर्फ मनोरजन रह गया। जनशिक्षा और विकास विसर गए। आज दूरदर्शन पूरी तरह बाजार का दोस्त है। पिछले चार–पॉच साल मे दूरदर्शन तेजी से बाजारोन्मुख हुआ। इसी दोर मे वह फैला ओर ग्लाबल हाते हुए वह नई अर्थनीति और भूमडलीकरण का सबसे बडा वाहक बन गया। " अन्य माध्यमो म जहॉ सीमित था वहॉ टेलीवीजन मे कला ब्रान्ड हो गया और मनुष्य सास्कृतिक एव जैविक इकाई नहीं बल्कि उपभोक्ता इकाई के रूप मे परिवर्तित हो गया। वस्तुत टेलीविजन के ऊपर खडे हाने वाले प्रश्नो के लिए मूल कारण यही है क्योकि सरकार ने भी दूरदर्शन को एक कमाऊ पूत की तरह इस्तेमाल किया चाहे वह विज्ञापन मे शराब बेचे या कल्पनाजीवी अथवा अतियार्थवादी रोमास प्रस्तुत करे।

आज हम मल्टीचैनल के युग मे जी रहे हैं केबल टीवी ने गॉव एव मुहल्ले स्तर पर चैनल निर्माण को सभव बना दिया है। एक तरफ इलेक्ट्रानिक समाज निरतर सस्ते हो रहे हैं तो दूसरी ओर कागज–किताबो के दाम दिन–दूने चढ रहे हैं। गली मुहल्लो मे लाइब्रेरी की बजाय बीडियो लाइब्रेरी खुल रही है। 'इलेक्ट्रानिक मीडिया के युग मे या टेलीवीजन युग मे किताबो का भविष्य क्या है यह भी एक अत्यत महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है। आज प्रबुद्ध वर्ग भी टेलीविजन देखने का आदी होता जा रहा है। लगता है आज जैसे सारे शिक्षित समाज को किताब पढने का समय ही नही है। आज पठन–पाठन की वह सस्कृति मिटती जा रही है जिसमे तात्कालिक उत्तेजना नहीं आसन लगाकर कई घटो बैठने के बाद ही रस मिलता है। पढना थोडा–बहुत है तो भी वह अखबारो तक सीमित है, किताबो के प्रति जिज्ञासा है तो उसे पुस्तक समीक्षाएँ पढकर जिज्ञासा तृप्त कर लिया जाता है। आज अपने शहर को गॉव को टेलीविजन के प्रभाव क्षेत्र मे लाने का दबाव सरकार पर अवश्य डाला जाता है। लेकिन पुस्तकालय

---

32 दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचौरी पृ 7

वाचनालय खोलने का न सरकार पर दबाव है और न गैर सरकारी सस्थाएँ ही इसके लिए प्रयासरत हैं।'[33] इलेक्ट्रानिक माध्यमो ने पढने की रूचि को प्रभावित किया है साथ ही इनके दवाव के कारण गभीर साहित्य के अध्ययन–मनन पर प्रभाव पडा है। आज गभीर साहित्य एव पत्र–पत्रिकाएँ इलेक्ट्रानिक मीडिया खासकर दूरदर्शन से अपनी प्रतिस्पर्धा करने लगी हैं। पठनयी एव गम्भीर सामग्री की बजाय आकर्षक एव सक्षेप मे सदर्भ प्रस्तुत करने वाली सामग्री पर पत्र–पत्रिकाएँ ज्यादा ध्यान देने लगी हैं। यही कारण है कि गभीर से गभीर विषयो का प्रतिपादन करने वाली पत्रिकाएँ भी फिचराइच्ड हो गई हैं।

टेलीविजन मे 'हमलोग से सीरियल जैसी नई विधा की शुरूआत हुई और अब टेलीवीजन के लिए धारावाहिक अत्यन्त लोकप्रिय विधा हो गई है। इस समय टेलीविजन का अधिकाश समय धारावाहिको के प्रसारण मे ही व्यय होता है। सीरियल मूलत एक नाटयरूप मे प्रस्तुत कहानी की ऐसी विधा हे जो दर्शक के विवेक ज्ञान या सवेदनशील ससार को किसी तर्क या विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत न करके उसके सीधे सवेदनात्मक ससार पर अपनी समूची शक्ति केन्द्रित करती है इसलिए एक सम्पन्न सीरियल मे एक प्रभावोत्पादक कथा के साथ–साथ ऐसी पटकथा की सरचना जरूरी हो जाती है जो दर्शक से सीधे–सीधे बिना किसी व्यवधान के रागात्मक तादात्म्य स्थापित कर सके। सीरियल की पटकथा सरचना इस मायने मे किसी कहानी के नाट्य रूपातर के काफी नजदीक बैठती है किन्तु कैमरे की कला होने के कारण वह नाटक की सरचना से भी थोडी अलग और विशिष्ट बन जाती है। यह बहुत कुछ पारपरिक रस–सिद्धान्त के साधारणीकरण को अपना आधार बनाकर चलती है जो बहुत कुछ फिल्मो से मिलता जुलता तत्व है।[34] इससे कुछ लोग सीरियल और फिल्म को एक समान विधा मानकर चलते हैं तो कुछ लोग कथा साहित्य पर आधारित विधा होने के कारण इसे साहित्य के नजदीक मानते हैं। इसी कारण धारावाहिको ने प्रारम्भ मे बम्बई के फिल्म उद्योग को बडी मात्रा मे आकर्षित किया तो दूसरी ओर धारावाहिक निर्माण के लिए बडी सख्या मे साहित्यिक कृतियो को आधार बनाया गया। दूरदर्शन ने अपने लिए धारावाहिक लेखक पैदा किया एव रचनाकारो को अपनी ओर धन लोकप्रियता एव ग्लैमर के कारण आकर्षित किया। इसके बावजूद दूरदर्शन एव साहित्य मे विकसित होते रिश्ते ने अत्यन्त

---

33 अवधारणाओ का सकट पूरनचन्द जोशी पृष्ठ 77
34 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी पृ 72

गम्भीर और विचारणीय रूप ग्रहण किया और साहित्य की साख समाप्त करने का आरोप दूरदर्शन पर लगा।

दूरदर्शन से जितने साहित्यिक या साहित्यिक किस्म के धारावाहिक प्रसारित हुए उनसे लेखको को आर्थिक लाभ अवश्य हुआ परन्तु इससे साहित्यिक कृतिया की श्रेष्ठ प्रस्तुति नहीं हुई। कथा की दृष्टि से भी दूरदर्शन ने दो–तीन तरह के सीरियल दिए। कथा सागर दर्पण एक कहानी 'रागदरबारी बसती 'कभी दूर कभी पास सत्यजीत रे प्रेजेन्टस आदि सीधे साहित्यिक कृतियो को आधार लेकर बनाए गए तो 'ये जो है जिन्दगी हमलोग नुक्कड बुनियाद रजनी किसी कथाकृति पर आधारित न होकर दूरदर्शन के लिए लिखे गए सीरियल है। यदि लाकप्रियता का चार्ट देखा जाए तो दूरदर्शन के लिए खासकर लिखे गए सीरियल कथाकृतिया पर बनाए गए सीरियलो से अधिक लोकप्रिय एव प्रभावशाली रहे।'[35] रागदरबारी (श्री लाल शुक्ल) निर्मला (प्रेमचन्द) बसन्ती (भीष्म साहनी) श्रीकान्त (शरत बाबू) रथचक्र (मराठी) 'दर्पण एक कहानी (कहानियो पर आधारित) एव 'चन्द्रकान्ता' (देवकी नन्दन खत्री) आदि धारावाहिक दूरदर्शन से प्रसारित हुए पर इन सबको वह लोकप्रियता न मिल सकी जैसी 'हमलोग या 'बुनियाद को मिली। चन्द्रकान्ता की जरूर धूम रही परन्तु यह धारावाहिक मूल चन्द्रकान्ता से बहुत अर्थो मे भिन्न रहा। आलोचको ने यहॉ तक कहा कि– कैमरे ने चन्द्रकान्ता को नष्ट किया है बनाया नहीं है। बम्बईया कैमरा नष्ट ही करता है निर्माण नहीं करता।[36] दोनो चन्द्रकान्ता के अतर को रेखाकित करते हुए एक आलोचक ने कहा कि खत्री के यहॉ कौशल बुद्धि चातुर्य और खेल पर बल है। यहॉ बारूद पर बल है एक्सन पर बल है शोय ओर हिसा पर बल है। खत्री के यहॉ तिलिस्म मे कैद प्रेम है, यहॉ चन्द्रकान्ता पन्द्रह मिनट तक वीरेन्द्र से कहती है कि मुझे स्वीकार करके तो देखो ? (मेरे बाल भी सेक्सी मेरे गाल भी सेक्सी)। खत्री की चन्द्रकान्ता पाठक की कल्पना पर अपने पाठ को पूरी तरह छोडती है। यह चन्द्रकान्ता दर्शक के लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखती। यहॉ सब कुछ स्पष्ट है। सिर्फ खत्री की चन्द्रकान्ता नहीं है। निरजा ने उसे तिलिस्म के मनोरम अकेले ससार से निकालकर बी–ग्रेड की बम्बईया फिल्मों के दृश्यो मे फेक दिया है। वह किसी चिडियाघर मे झीने वस्त्र पहने गलत

35 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी पृष्ठ 116
36 'देखी–सुनी स्तम्भ 'जनसत्ता लेखक अजदक 3 अप्रैल 1994

ढग से वीरेन्द्र लिख सकती है। यह एक कृति की हत्या है। ऐसी हत्या जो खुलेआम हुई है जिसे होना था होना है हर महान वृतात वाले हैं। जो लोग इस चन्द्रकाता को देख निराश हो वे समझ ले कि साहित्य अब सस्कृति उद्योग बन चला है। जो खुश हैं वे बी ग्रेड के दर्शन होने का गर्व पाल सकते हैं। [37]

कुछ ऐसी ही स्थिति टेलीफिल्मो की भी रही। गोविन्द निहलानी द्वारा निर्देशित सूरज का सातवॉ घोडा एक सफल प्रस्तुति कही जा सकती है। मूल सवेदना परिवर्तित किए बिना माध्यमो की स्थिति के कारण थोडा–बहुत परिवर्तन क्षम्य है किन्तु अक्सर हम देखते हैं कि टेलीविजन बनाने के लिए कृति तो ले ली जाती है एक महान साहित्यकार की लेकिन उसे बना रहा है वह व्यक्ति जो आज के मिर्च–मसाला फिल्मो के माहौल मे पला है और जिसकी आज के दर्शको को फिल्मी माध्यम से उसके उत्कृष्ट रूप मे नही निकृष्ट रूप मे रिझाने की आदत है। जाहिर है ऐसी महान रचनाओ को भी फिल्मी ढॉचे मे ढालकर विकृत कर देती है। इस सदर्भ मे हमे टेलीविजन द्वारा उच्च साहित्य के प्रदूषण और तोड–मरोडे की प्रकृति पर गभीरता से विचार करना चाहिए। क्या ऐसी तोड–मरोड की टेलीविजन की प्रकृति है या टेलीविजन का दुरूपयोग ? अगर टेलीविजन के लिए उच्च साहित्य को फिल्माने का कार्य योग्य निर्माताओ को सौंपा जाए तो क्या टेलीविजन द्वारा उच्च साहित्य को बिना उस साहित्य की आत्मा को ठेस पहुँचाएँ आम जनता तक पहुँचाया जा सकता है ? मेरी राय मे साहित्यकारो को इस प्रश्न पर भी सोचना चाहिए। [38]

दूरदर्शन की भाषा के प्रति नीति सयत और सुनियोजित नहीं रही है। ' रेडियो की भाषा प्रिट मीडिया की भाषा थी किन्तु लम्बे अरसे से उसको बोलते–बोलते रेडियो ने उसे काफी हद तक अपने स्वभाव के अनुकूल कर लिया। एव वाचिक भाषा का सस्कार बन गया। ये आकाशवाणी है कहते वक्त वाचक और स्रोता के बीच नया सम्बन्ध बनने लगा। चूँकि वह एक वाचिक यानी बोला–सुना जाने वाला माध्यम था इसलिए उसने बोलियो उपभाषाओ और मुहावरो को अपनाया। एक नई भाषा विकसित हुई। रेडियो का विस्तार ज्यो–ज्यो हुआ त्यो–त्यो उसने स्थानीय भाषाओ को अपनाया।'[39] वैसे भी "एक

37 टी वी टाइम्स सुधीश पचौरी पृष्ठ 140
38 अवधारणाओ का संकट पूरनचन्द्र जोशी पृष्ठ 77
39 दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचौरी पृ 106

माध्यम जब किसी भाषा को माध्यम बनाता है ता वह उस अपने अनुकूल बनाता है वह अपने श्रोताओ–दर्शको के हिसाब से बदलता है इस तरह उनके बीच अपनी जगह बनाता है।[40] भाषा के साथ ही रेडियो ने प्रिटमीडिया का सर्जनात्मक सस्कार ग्रहण कर लिया एव समाज मे गम्भीर माध्यम के रूप मे अपनी उपस्थिति दर्ज की । किन्तु दूरदर्शन मे आते–आते स्थिति बिल्कुल बदल गई। जिस तरह देवकी नन्दन खत्री के चन्द्रकाता सतति और भूतनाथ ने एक जमाने मे गैर हिन्दी भाषी और असाक्षर हिन्दी भाषियो दोनो को हिन्दी भाषा सीखने पर मजबूर किया था दूरदर्शन ने असाक्षरो को घर बैठे एक सार्वजनिक हिन्दी भाषा दी।"[41] इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि दूरदर्शन की हिन्दी क्रान्ति का शायद सबसे महत्वपूर्ण पहलू विज्ञापन की भाषा है। बहुतायत मे जो विज्ञापन आते हैं वे हिन्दी मे होते हैं। विज्ञापनो ने हिन्दी को जितना फैलाया है उतना शायद सीरियलो ने भी नहीं फैलाया। हालत यहॉ तक जा पहुॅची है कि प्रशासन या सरकार को यदि कोई विकासमूलक सदेश भी देना होता है तो वह विज्ञापन की भाषा मे होता है। फिल्मे सीरियल और विज्ञापनो ने मिलकर हिन्दी को व्यापार की भाषा बनाया है इतना अधिक कि अग्रेजी वाले तमाम विज्ञापन हिन्दी मे आते हैं। हिन्दी सीधे उपभोक्ता क्रान्ति की वाहक बन गई।[42] तथापि दूरदर्शन ने फिल्म सीरियल एव विज्ञापनो के माध्यम से एक बाजारू भाषा को जन्म दिया जो न तो शुद्ध हिन्दी रह गई और न अग्रेजी। जिसको आलोचको ने हिग्रेजी या हिग्लिश का नाम दिया। दुर्भाग्य यह है कि हमारी भावी पीढी मातृभाषा के रूप मे इसी बाजारू भाषा से सपोषित हो रही है।

टेलीविजन के पूर्व नाटक एव फिल्म भी दृश्य–श्रव्य माध्यम थे किन्तु टेलीविजन के पूर्व कभी भी इतने प्रश्न नहीं खडे हुए जितने कि दूरदर्शन पर हुए। इसका कारण मात्र टेलीविजन का अन्य माध्यमो की अपेक्षा अधिक प्रचलन मे आना नहीं है। बल्कि टेलीविजन की अपनी कुछ सीमाएॅ हैं। ये सभी दृश्य–श्रव्य माध्यम होकर भी अपने मे विशिष्ट हैं, किसी एक ही कथाकृति पर आधारित होकर भी इन तीनो माध्यमो से प्रस्तुत रचना माध्यम की सरचना एव प्रकृति के कारण भिन्न एव विशिष्ट है। नाटक के

---

40 दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचौरी पृष्ठ 106
41 दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचौरी पृष्ठ 108
42 दूरदर्शन विकास से बाजार तक, सुधीश पचौरी पृ 110

दर्शक एव पाठक मे तादात्म्य देखा जा सकता है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से भी दोनो मे एकता है। साधारणीकरण की दृष्टि से नाटक एव फिल्म म भी समानता मिलती है कि तु दूरदर्शन मे स्थिति कुछ भिन्न हो जाती है। दूरदर्शन से फिल्म देखने का सपना एक अलग अनुभव है। फिल्मे जब तक सिनेमाघरो मे देखी जाती रहीं तब–तक हमारा सास्कृतिक अनुभव एक दर्शक एक भावक और एक रसिक का था। फिल्मे लगभग भरत के नाटयशास्त्र के रससिद्धान्त के साधारणीकरण की प्रविधि से सम्प्रेषण करती थीं। टीवी पर आती फिल्मे एक भाव या रसिक के अनुभव को नष्ट कर शुद्ध उपभोक्ता का अनुभव बनाती हैं। सिनेमाघर मे फिल्म देखना और घर पर टीवी मे देखने मे सिर्फ साइज का ही फर्क नहीं होता अनुभव का भी फर्क होता है।'[43] इस फर्क का अनुभव सहज ही किया जा सकता है। सिनेमाहाल मे व्याप्त अधेरा अगल–बगल बैठे दर्शको के बीच अपरिचय की एक हल्की सी चादर तानकर उसकी निजता की चेतना को भी तीव्र करता है ताकि दर्शक और भी अधिक सहज तथा शुद्ध दर्शक बन सके और स्वय को भीड के मध्य पाकर भी अकेला महसूस न कर सके। भीड के साथ एकेले की यह अनुभूति दर्शक की स्वतत्रता की पहरी की भॉति कार्य करती है और उसे एक साथ आवश्यकतानुसार सामूहिक और निजी आनन्द की अनुभूति कराती है। थिएटर हाल के अदर का झीना वातावरण उसकी सवेदना को एक विचित्र किस्म के हल्के–हल्के रहस्य से भरता है जो बाद मे फिल्म के प्रदर्शन के साथ–साथ कथानक की सवेदना से तालमेल बैठाते हुए आगे बढता है।'[44] यही स्थिति नाटक के दर्शको के साथ भी होती है। इन स्थितियो मे दर्शको का रचना से पूर्ण तादात्म्य रहता है ओर वह ताली आदि बजाकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। किन्तु दूरदर्शन के साथ स्थिति भिन्न है। यहॉ दर्शक निष्क्रिय हो जाता है। वह अन्य घरेलू कार्य करते हुए भी मनोरजन का आनन्द उठाना चाहता है। टेलीविजन का एक घरेलू माध्यम होने के नाते दर्शक प्राय उसके साथ गम्भीर नहीं हो पाता। घर का वातावरण ऐसा होता ही नहीं कि उसके सदस्य कम–से–कम दूरदर्शन के मामले में गभीर हो सके। सच तो यह है कि वे दूरदर्शन की ओर से भी किसी प्रकार के गभीरता की अपेक्षा नहीं करते। उनकी चेतना मे उसकी तस्वीर एक मनोरजन करने वाले यत्र से अधिक नहीं है। हमे यहॉ इस अतर को समझना होगा कि दूरदर्शन पर किसी धारावाहिक जैसे रामायण,

---

43 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी, पृष्ठ 69
44 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल, पृष्ठ 55

महाभारत आदि का लोकप्रिय होना अलग बात है तथा उसका गभीर होना अलग बात है। इन दोनो अत्यत लोकप्रिय धारावाहिकों की सफलता का मूल कारण उनकी कथाओ मे निहित ऐतिहासिकता एव उसके प्रति दर्शको का श्रद्धा भाव है। जब भी ऐसे कथानको से दर्शको का वास्ता पडता है तो उनका हृदय भावुकता की लहरो पर तैरने उतराने लगता है। ऐसा दूरदर्शन ही नहीं बल्कि फिल्मो के साथ भी होता है। उदाहरण के तौर पर 'जय सतोषी मॉ की रिकार्ड तोड सफलता हमारे सामने है। जबकि इसके विपरीत भारत एक खोज जैसा सशक्त एव गम्भीर विषय अपने इतने अच्छे ट्रीटमेट के बावजूद लोकप्रियता नहीं पा सका। हॉ उसे सराहना जरूर मिली।[45] इसका तात्पर्य यह नहीं है कि फिल्म दूरदर्शन की अपेक्षा अधिक साहित्यिक–सस्कारक्षम माध्यम है। बल्कि दूरदर्शन से जो अपेक्षित था उस रूप मे स्थापित होने मे वह सक्षम नहीं हो पा रहा है।

जिस प्रकार से नाटक या सिनेमा का दर्शक पूर्व तैयारी के साथ दर्शक की मनोभूमिका से उसे देखते हैं टेलीविजन के दर्शक प्राय उस तरह नहीं हाते हैं। इसके बावजूद टेलीविजन अन्य सभी माध्यमो मे सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम हैं क्योकि टेलीविजन मे अपने दर्शको को अपनी ओर आकर्षित और प्रभावित करने की असीमित क्षमता है तथा उसके सामने बैठने वाला दर्शक उसे आसानी से छोड नहीं पाता है। 'हम फिर माध्यम के सिद्धातवेत्ता मार्शल मैकलूहान के उस प्रसिद्ध वाक्य को उद्धृत करना चाहेगे कि 'माध्यम ही सदेश है। Understanding Media नामक पुस्तक मे मैकलुहान ने इस सूत्र को स्पष्ट करते हुए कहा कि टीवी एक ऐसा क्रान्तिकारी माध्यम है जिसमे सदेश और माध्यम पृथकता खो बैठते हैं। इस अर्थ मे यह एक 'परफैक्ट मीडियम है यहॉ सदेश और माध्यम अलग–अलग नहीं रह पाते। वे इकाई बन जाते हैं।'[46] इसी कारण उत्कृष्ट कार्यक्रमो का अभाव होने के बावजूद, दूरदर्शन का समाज पर व्यापक एव गहरा प्रभाव है और वह नवसस्कृति के निर्माता की भूमिका मे आ खडा है यदि रचनात्मकता से चुक गया तो सम्पूर्ण समाज को अधोगामी बनाने मे भी सक्षम है।

दूरदर्शन की उपरोक्त ह्रासकारी स्थिति के कारण 'माध्यम साहित्यकारो एव समाजशास्त्रियो के लिए चिन्ता का विषय रहा है। वैसे किसी भी माध्यम का समाज पर नकारात्मक एव सकारात्मक, दोनो

---

45 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 54
46 दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचौरी पृष्ठ 20

प्रभाव रहता है। अभिव्यक्ति के किसी बडे माध्यम का सबसे ज्यादा प्रभाव यह पडता है कि वह ऐसे लोगो की सोच बनाता है जिनकी अपनी कोई राय नहीं बन पायी होती है। उनसे सबसे ज्यादा वो प्रभावित होते हैं जो सीखने की दहलीज पर खडे होते हैं। जिनके लिए फतासी असली दुनियॉ की तरह सच बनकर सामने आती है। यह तो सच है कि आज के युवा वर्ग को टेलीविजन और फिल्मो से दूर नहीं किया जा सकता। अत जरूरी है कि अभिव्यक्ति के इन माध्यमो को व्यापक सामाजिक सदर्भ मे देखा जाए और वे जहॉ फिसले उन्हे सचेत किया जाए। खासकर टेलीविजन जैसे माध्यम पर नजर रखना और भी जरूरी है क्योकि ड्राइगरूम मे घुसपैठ के कारण पारिवारिक मनोरजन की वह ऐसी अनिवार्यता बन गया है जिससे बच्चो को दूर रखना सभव नहीं है।[47] अत साहित्य को टेलीविजन पर उतरने के पूर्व सवेदना एव मनोरजन की इस चुनौती को स्वीकार करना होगा और टेलीविजन के प्रति सचेतन स्वीकारोक्ति की दृष्टि अपनानी होगी। 'दूरदर्शन सामान्य दर्शक के सौन्दर्य बोध, सामाजिक रूचि और साहित्यिक स्तर को बढाने के साथ ही उसके प्रतिदिन के कार्यकलापो को सहज ढग से कार्यरूप देने मे सहायक सिद्ध हो सकता है। यह परिष्कृत जीवन-की ओर उन्मुख जीवन मे आशा की किरण भी उत्पन्न कर सकता है'[48] बशर्ते वह अपने को मात्र व्यावसायिक साधन बनने से रोक सके।

माध्यमो की विवेचना से हम पाते हैं कि नए जनसचार माध्यम खासकर टीवी की सचार प्रविधि साहित्य को उसी तरह अपने अनुकूल करती है बदलती है जिस तरह प्रिट मीडिया ने कभी साहित्य को बदला था। वह साहित्य को उसकी निजता स्थानीयता और वैचारिकता से मुक्त कर उसे सार्वजनिक, भूमण्डलीय और तात्कालिक शुद्ध प्रभाव केन्द्रित बनाती है। वह छवि और ध्वनियो को अतिरिक्त सक्रिय करती है और साहित्य को अनिवार्यतया दृश्य मे बदलती है। टीवी मूलत दृश्य की प्रविधि है इसलिए अदृश्य को भी दृश्य मे बदलती है। यही उसके प्रसारण की अभूतपूर्व मौलिकता है। इसलिए उसमे साहित्य ही नही हर कला नया रूप और अर्थ पाती है।'[49] इस प्रकार दूरदर्शन मे साहित्य का पुनर्सृजन होता है। फिर प्रश्न उठता है कि यह पुर्नसृजन साहित्य के पूर्व रूप की तुलना मे उतना ही सृजनात्मक एव श्रेष्ठ

---

47 जनसचार–सपादित राधेश्याम शर्मा के 'जनसचार मे फिल्मो तथा दूरदर्शन का योगदान –हरेश वशिष्ठ पृ 198

48 (जनसचार–सपादित राधेश्याम शर्मा के 'जनसचार मे फिल्मो तथा दूरदर्शन का योगदान हरेश वशिष्ठ पृ 198

49 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी पृष्ठ 26

क्यो नहीं होता है। उसके उत्तर मे मूलत दो बाते की जा सकती है। एक यह कि जिस तरह लिखित साहित्य को पढने के लिए साक्षर होना आवश्यक है उसी तरह क्याकि नाटक के समान टीवी से भी सम्प्रेषण होता है जो नाटक के साधारणीकरण सिद्धान्त के नजदीक ठहरता है उसकी भाषा को समझने के लिए काव्य शास्त्र के ध्वनि सिद्धान्त एव रस सिद्धान्त का ज्ञान होना आवश्यक है। पर लिखित साहित्य का इस माध्यम मे परिवर्तन करते समय शब्द को दृश्य देना पडता है। इन दोनो मे मूलत सवेदना महत्वपूर्ण है जिसका इस रूपातरण मे परिवर्तन नहीं होना चाहिए। परन्तु ऐसा करते समय सवेदनात्मक सप्रेषण क्षीण हो जाता है और रचना कमजोर पड जाती है। दूसरा यह कि टेलीविजन की भाषा और सचार की प्रक्रिया को केवल रससिद्धान्त के आधार पर ही नहीं समझा जा सकता। इसमे प्रायोजक लोकप्रियता तकनीक आदि अन्य तत्व भी सक्रिय होते हैं जो रचना को प्रभावित करते है।

दूरदर्शन पर यह आरोप लगता है कि इसने साहित्यिक रचनाओ की साख को गिराया है। दूरदर्शन को यदि हम नितात साहित्यिक माध्यम न भी माने तो भी यह आरोप बेबुनियाद नहीं है। दूरदर्शन के अतिरिक्त अन्य माध्यम भी सूचना शिक्षा और मनोरजन के सवाहक है किन्तु साहित्य की दृष्टि से दूरदर्शन जितने प्रश्नो से घिरा है उतना कोई अन्य माध्यम नहीं। अन्य माध्यमो के अनुभव के आधार पर साहित्य की दृष्टि से दूरदर्शन को भी सभावनाशील कहा जा सकता है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि वह साहित्यिक रचनाओ को उसके पूरे सदर्भ के साथ प्रस्तुत करे। रचना मे कहीं काट–पीट करनी भी हो तो वह लेखक की सस्तुति से हो। साहित्यिक कृतियो का सबन्ध सवेदना से है। जब तक दूरदर्शन समुदाय रचना की उस सवेदना को नहीं समझता तब तक रचना के साथ न्याय होना सभव ही नहीं है। इसके लिए दूरदर्शन को अपनी नीतियो मे परिवर्तन करना होगा और रूख त्यागना होगा कि चूँकि कोई कृति प्रेमचन्द या रवीन्द्र नाथ टैगोर की नहीं है इसलिए उसके साथ मनचाहा व्यवहार किया जा सकता है। सबसे बडी बात साहित्यिक कृतियो को प्रायोजको के अकुश से बचाना है। प्रायोजक चूँकि पैसा देता है इसलिए उसकी दखलदाजी भी होनी जरूरी है यह बात भी कहीं–न–कहीं साहित्यिक हितो की बलि दे रही है।'[50] दूसरे टेलीविजन पर प्रस्तुत कृति मूलत निर्देशक की कृति हो जाती है और लेखक की कृति सप्रेषित रचना का एक अग होता है अत सप्रेषित रचना की पूरी जिम्मेदारी निर्देशक पर होती है। इस स्थिति में लेखक एव निर्देशक की दृष्टि मे साम्य आवश्यक हो जाता है। दूरदर्शन को भी यह नीति निर्धारित करनी चाहिए कि वह साहित्यिक रचनाओं को सम्मान दे एव उसकी प्रस्तुति में उसके साथ न्याय करे।

---

50 सरोकार गिरिराज किशोर पृष्ठ 73

डिजिटल माध्यम - इन्टरनेट और साहित्य

चर्चा के जिस प्रस्थान बिन्दु पर हम पहुॅचे हैं वहॉ प्रख्यात समाजशास्त्री श्यामाचरण दूबे के एक दशक पूर्व व्यक्त किये गये उस विचार का स्मरण आवश्यक है जो पूर्णत आज सत्य साबित हो रहा है कि 'सचार के अन्य माध्यमो और साहित्य के बीच कठिन प्रतियोगिता भी निश्चित है। सिनेमा रेडियो और टेलीविजन साहित्य के प्रतिद्वन्दी रहे हैं सहायक भी। प्रौद्योगिकी के विकास ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है उससे यह भी सभव हो गया है कि एक केबुल और कुछ बटने जनसचार के साधनो को मिला–जुला रूप मनुष्य को उपलब्ध करा दे और उसकी यह विवशता भी दूर कर दे कि उस समय प्रस्तुत किए जाने वाले कार्यक्रमो मे से ही उसे अपनी रूचि का कार्यक्रम चुनना पडे। कार्यक्रमो का एक विशाल सग्रह अब उपलब्ध होगा और मनचाही सामग्री मनचाहे समय पर पाने के लिए कुछ बटने घुमाने और एक बटन दबाने का ही परिश्रम करना होगा। सगीत नृत्य कला चलचित्र साहित्य समाचार और सूचना सब इस नये माध्यम पर उपलब्ध होगे। पुस्तक सग्रहालयो का रूप बदलेगा साथ ही पुस्तको का भी [51] निश्चित ही यह माध्यम हम सबके बीच साकार हो चुका है जिसे हम इन्टरनेट (अन्तरताना) कहते हैं उसके बारे मे उपरोक्त सभी पूर्णत सत्य है। 'टेलीफोन लिक और माइक्रोफोन ट्रासमीशन जैसे वैज्ञानिक और इलेक्ट्रानिक सचार माध्यमो के सूक्ष्मतम और उच्चतम सार से विकसित यह आविश्व जाल (नेटवर्क) आज दुनियॉ का सबसे बडा वरदान है– मगर अभिशाप की पूरी शका लिए– पुण्य सृष्टि मे सुन्दर पाप की तरह। क्योकि अन्वेषक विचारक स्रष्टा कल्याण के लिए जो खोजते और रचते हैं– उसमे कुछ लोग अकल्याण के अवसर निकाल ही लेते हैं [52] अत [illegible] इस नए माध्यम के प्रति भी साहित्य चिन्तको की सचेतन दृष्टि आवश्यक है।

दूरदर्शन की अपसास्कृतिक गतिविधिया के कारण हिन्दी साहित्य जगत पहले से ही चितित था, अब इन्टरनेट जैसे वैश्विक तत्र से बेखबर हिन्दी जगत के लिए इन्टरनेट धीरे–धीरे चुनौती के रूप मे खडा होता जा रहा है। सचार क्रान्ति के फलस्वरूप पुष्य सृष्टि मे सुन्दर पाप की तरह अन्तरताना (इन्टरनेट) का वैश्विक तत्र सामान्य माध्यम के रूप मे अपनी घुसपैठ बनाता जा रहा है। हालाकि इस अन्तरताने (इन्टरनेट) के लिए आलादीन के जादुई चिराग रूपी सगणक (कम्प्यूटर) की आवश्यकता है, जो सामान्य लोगो की पहुॅच से अभी काफी दूर है तो भी अपने बहुआयामी एव प्रयोगधर्मी उपयोग के कारण इसका प्रचलन तेजी से बढ रहा है। ज्ञातव्य है इससे 'साहित्य के परपरागत रूपो के लिए यह विकास एक चुनौती होगा। साहित्य इस विकास का उपयोग साधन के रूप मे कर सकेगा पर साथ ही उसे इन

---

51 मैथिलीशरर्ण गुप्त अभिभाषण हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दृष्टव्य–परम्परा इतिहास बोध और सस्कृति श्यामाचरण दूबे।

52 'भष्मासुरी न बन जाए जययात्रा' 'वार्गर्थ सितम्बर 1997, पृष्ठ 5

नयी यात्रिकी को भी समझना होगा और नए माध्यम से समझौते करने होगे। इस तरह साहित्य का विस्तार तो सभव होगा पर उसके रूप मे अनिवार्यत अनेक परिवर्तन भी होगे। नए माध्यमो की सीमाओ एव सभावनाओ को समझना आवश्यक है। अभी यह कह सकना कठिन है कि सचार व्यवस्था के आयामो मे होने वाले ये परिवर्तन मानव के भावबोध को किस तरह प्रभावित करेगे। यह बहुत कुछ इस पर अवलबित होगा कि सचार व्यवस्था का नियत्रण किन हाथो मे है और उसका सचालन किन घोषित और अघोषित उद्देश्यो से किया जाता है। [53]

अब हम इन्टरनेट पर उपलब्ध हिन्दी साहित्य की चर्चा करेगे।

इन्टरनेट पर www 123 India com के माध्यम से जब खोज (Search) के खाने मे Hindi Language and literature अकित करते हैं तो हम http //www cs colostate, edu/~ malaiya/ hindi it html के पते पर पहुँचते हैं जहाँ हिन्दी का होमपेज खुलता है और हिन्दी बोलियॉ, भाषा और साहित्य का सक्षिप्त परिचय मिलता है।[54] वाराणसी के गगाघाटो के छोटे से मनोरम दृश्य के साथ देवनागरी मे 'हिन्दी गानो की भाषा किसानो की भाषा विद्वानो की भाषा एव अग्रेजी मे "Hindi the language of songs" का शीर्षक उभरता है। फिर उसके नीचे हिन्दी भाषा और साहित्य के बारे मे जो कुछ भी है वह अग्रेजी मे है फिलहाल गैर हिन्दी भाषियो के लिए महत्वपूर्ण एव शायद वैश्विक तत्र के लिए अग्रेजी की अपरिहार्यता के कारण। यह है योगा की तरह हिन्दी भाषा एव साहित्य का अग्रेजी सस्करण। हिन्दी के इस होमपेज पर आगे हम तीन शीर्षको पर पहुँच सकते हैं—

लिक्स_टू हिन्दी रिसोर्सेज आल एबाउट हिन्दी साग्स एव इमार्टल पोएट्स एन्ड आर्थर्स। पहले पर पहुँचकर हम हिन्दी के व्याकरण फोनेटिक्स आदि की कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे पर हिन्दी गीतकारो, गानो के बारे मे जान एव सुन सकते हैं तथा तीसरे साइट पर हिन्दी लेखको की एक सूची मिलती है जो आरभिक काल मध्यकाल एव आधुनिककाल के उपशीर्षको मे वर्गीकृत है। इनमें से किसी भी रचनाकार के बारे में रचनाओ को जान पढ एव सुन सकते हैं। इसमे से कुछ रचनाकारो के बारे मे जानकारी मिलती है तो कुछ के बारे मे अभी जानकारी भरी नहीं जा सकी है। सिद्ध कवि सरहपा के बारे मे जानने के लिए सरहपा पर क्लिक करने पर नागज। इस्टीट्यूट का होम पेज खुलता है जहाँ सस्काचेवान विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हर्बट गुन्थर द्वारा रचित पुस्तक "Ecstatic Spontaneity

53 मैथिली शरण गुप्त अभिभाषण माला हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय परम्परा इतिहास बोध और सस्कृति—श्यामाचरण दूबे से

54 दृष्टव्य परिशिष्ट 'ख' इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ 174 175 177

Saraha's three cyeles of Doha" के साथ सरह का अत्यत सक्षिप्त परिचय मिलता है।[55] फिर इसी तरह महादेवी वर्मा[56] हरिवशराय बच्चन[57] या किसी भी अन्य की कविताओ का आनन्द ले सकते हैं और उपेन्द्रनाथ अश्क[58] या अन्य रचनाकार के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। गानो के वेबसाइट पर पहुँच कर अपने प्रिय कवि प्रदीप और गुलनार के काव्य का आनन्द ले सकते हैं। अथवा वेब पर उपस्थित कुछ कवियो की समकालीन कविताए पढ सकते हैं।[59] इसी प्रकार हिन्दी रचना होम आफ हिन्दी पोएम' आदि वेब है'। यही वेब पर उपस्थित हिन्दी जगत का स्वरूप है। जिसे एक आलोचक ने इसे हिन्दी की एक भष्ट वेबसाइट बताया।[60]

भाषायी पत्रकारिता की दृष्टि से हम देखते हैं कि अखबारो के साथ–साथ साप्ताहिक–पाक्षिक पत्रिकाएँ वेब पर उपस्थित हैं। भारत मे आन लाइन मीडिया की खास विशेषता यह है कि यहॉ अधिकतर साइट भारतीय भाषाओ के हैं। एक आकलन के मुताबिक कुछ 60 प्रकाशनो के सस्करण नेट पर मौजूद हैं जिनमे अग्रेजी समाचारपत्रो के साइटो की सख्या केवल 18 है–शेष भारतीय भाषाओ के साइट हैं। भारत मे कभी–कभी सभी प्रमुख समाचार प्रकाशनो के आनलाइन सस्करण मौजूद हैं। इसके अलावा छोटे समाचार पत्रो मे हैदराबाद के हिन्दी मिलाप मध्यप्रदेश के एम पी क्रानिकल और बैंगलोर के 'सजीवनी' के सस्करण भी आनलाइन पर है।[61] हिन्दी की मासिक 'कम्प्यूटर सचार सूचना और वेद प्रदीप, तमिल की 'कौमुदम 'कुयिल और 'तमिल चोलाई बगला की प्रवास मराठी की जाले और साहित्य अणि सस्कृत कन्नड मे 'विश्वकन्नड और बगलूर मन्थली आल लाइन जैसी पत्रिकाएँ इन्टरनेट पर मौजूद है ।[62] जैसी अन्य भारतीय भाषाओ की पत्रिकाए इन्टरनेट पर है वैसी सशक्त लघुपत्रिका आन्दोलन को सपोषित करने वाले हिन्दी जगत की साहित्यिक पत्रिकाए इन्टरनेट पर नहीं है। कैलिफोर्निया से अशू जौहरी द्वारा सम्पादित हिन्दी की एक मासिक साहित्यिक पत्रिका इन्टरनेट पर मिलती है।[63] अप्रैल 2000 के सस्करण मे 'उद्‌गार' शीर्षक से अशु जौहरी का एक सपादकीय लेख है[64] पाठको की प्रतिक्रियाए

---

55 दृष्ट्व्य परिशष्ट ख इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ सख्या 180
56 दृष्टव्य परिशष्ट ख इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ सख्या 183
57 दृष्टव्य परिशष्ट ख इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ सख्या 182
58 दृष्टव्य परिशष्ट ख इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ सख्या 184
59 दृष्टव्य परिशष्ट ख इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ सख्या 186
60 दृष्टव्य 'हिन्दी की भ्रष्ट वेब साइट – बटरोही अमर उजाला 1 अप्रैल 2000.
61 Vidur भारतीय प्रेस सस्थान का जर्नल अक्टूबर दिसम्बर 1998 पृष्ठ 38
62 Vidur - भारतीय प्रेस सस्थान का जर्नल अक्टूबर दिसम्बर 1998 पृष्ठ 47
63 दृष्टव्य परिशिष्ट 'ख' इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ 188
64 दृष्टव्य परिशष्ट 'ख' इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ 190

हैं कथाश शीर्षक से उत्कर्ष राय की पितृ ऋण नामक लघुकथा[65] एव अन्य स्तभ है। किन्तु अपने को साहित्य मासिक घोषित करने वाला वेब कैलीफोर्निया के गैर हिन्दी भाषी जगत के लिए साहित्यिक हो सकता है किन्तु भारतीय हिन्दी साहित्य का गभीर एव श्रेष्ठ स्वरूप यहॉ नहीं मिलता है।

इन्टरनेट एव अन्य माध्यमो मे सबसे बडा अन्तर यह है कि इन्टरनेट एक अन्त क्रियात्मक माध्यम है। जहॉ पत्रकारिता मे केवल आपका पत्र स्तभ ही अन्त क्रिया का अवसर प्रदान करते है वहीं इन्टरनेट पर हर समय हर जगह अन्त क्रिया का अवसर है। इन्टरनेट पर साहित्य की पुस्तको के लिए एक पुस्तकालय जैसा भी हो सकता है जहॉ साहित्य के साथ–साथ साहित्यिक पत्रिकाओ के नए पुराने सस्करण भी प्राप्त किए जा सकते हैं। किसी भी साहित्य के प्रकाशन मे सशोधित सस्करण होते हैं इन्टरनेट एक ऐसा माध्यम है जहॉ अद्यतन सस्करण अत्यत कम समयान्तराल मे प्राप्त किया जा सकता है। कुछ ऐसे समाचार–पत्र हैं जो इ–मेल के माध्यम से समाचार प्रदान करते हैं। यहॉ बस इ–मेल के जरिए अपनी रुचि और पसन्द बस बताना पडता है। इसी प्रकार ई–मेल को माध्यम बनाकर साहित्य का प्रचार–प्रसार इन्टरनेट पर सभव है। परन्तु इन सभी सभावनाओ के बावजूद गभीर साहित्य कम्प्यूटर स्क्रीन पर नहीं उतरा है जिसके लिए साहित्य जगत को एक भागीरथ प्रयत्न की आवश्यकता है।

मल्टीमीडिया ने कम्प्यूटर को मुद्रण के ससार के अलावा रेडियो और टेलीविजन की दुनियॉ से जोडा है। अत इन्टरनेट एक ऐसा माध्यम है जहॉ प्रिट माध्यम एव दृश्य–श्रव्य माध्यम दोनो सभव है। किसी दृश्य श्रव्य माध्यम से रचना की प्रस्तुति अपनी अभिव्यक्ति के कारण जहॉ विवादित हो जाती है वहीं प्रिंट मीडिया के साथ इन्टरनेट पर शब्दविधा मे यथावत प्रस्तुति के कारण साहित्य को भ्रष्ट होने से बचाया जा सकता है। इन्टरनेट का भविष्य साहित्य एव पत्रकारिता की भाषा एव सवेदना को बचाकर विकसित होने मे ही सुरक्षित है।

हालाकि हिन्दी जगत दूरदर्शन की अपसास्कृतिक कार्य कलापो के कारण इन्टरनेट के प्रति सशकित है। इसके पीछे इस माध्यम का पहले दुरूपयोग होना मूल कारण है। इसके बावजूद स्क्रीन पर कविता पढने एव सुनने का एक अद्वितीय अनुभव है। मल्टीमीडिया के प्रयोग से कम्प्यूटर द्वारा कविताएँ एक साथ पढी एव सुनी जा सकती हैं। इसके लिए ऐसे साफ्टवेयरो के निर्माण की सभावना है। इसके साथ ही इस माध्यम के प्रति हिन्दी जगत के इस आरोप का उत्तर भी दिया जा सकता है कि ये भागीदारिता का अवसर नहीं देते हैं। क्योकि एक पुस्तक की तरह स्क्रीन पर कविता के साथ यहॉ एक मार्जिन भी उपलब्ध है। इन सभावनाओ के साथ भाषा की उच्चतम शक्ति–कविता की उस गहराई को स्क्रीन पर उतारने की आवश्यकता है। आगे समय बताएगा कि यह कितना सर्जनात्मक है। एक समर्थ रचनाकार इस मीडिया मे रचना की जीवनी शक्ति उकेर सकता है। फिर सम्पूर्ण कविता की इस सम्भावना मे एक सभावित प्रश्न भी निहित है कि क्या इलेक्ट्रानिक माध्यमो खासकर दूरदर्शन के कारण कविता की जो नकारात्मक क्षति हुई उसकी पूर्ति इस डिजीटल माध्यम से सभव है ?

---

65 दृष्टव्य परिशिष्ट 'ख' इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एव साहित्य पृष्ठ 193

अध्याय - पॉच

साहित्य एवं चित्रपट

अध्याय - पॉच

साहित्य एवं चित्रपट

मुद्रित शब्द को सचार माध्यमो मे सबसे पहले सिनेमा मे चुनोती मिली। सिनेमा और साहित्य ने एक दूसरे को कितना प्रभावित किया इसका मूल्याकन अभी तक न हो सका है और न ही दोनो के सम्बन्धो का वस्तुनिष्ठ अध्ययन ही हुआ है। दोनों के सम्बन्ध शुरू से ही विवादास्पद रहे है। आज सिनेमा और साहित्य को विकास के उच्च सोपान पर पहुॅच जाने पर दोनो के सम्बन्ध को किसी निश्चित प्रमेय मे ढालना उचित नहीं है। सरसरी निगाहो से यदि हम मानते है कि सिनेमा मे एक व्यवस्थित कथा होती है, जिसके चारो ओर सिनेकला के अन्य तत्व चक्कर लगाते हैं तो यह बात स्वत सिद्ध हो जाती है कि सिनेमा का साहित्य से सीधा रिश्ता है। इस रिश्ते की पहचान पहले के फिल्मकारो और साहित्यकारो, दोनो ने पूरी तरह की थी और दोनो ने एक दूसरे को पूरी तरह सहयोग करना भी शुरू किया था।[1] मुशी प्रेम चन्द, भगवती चरण वर्मा, फणीश्वर नाथ 'रेणु', उपेन्द्र नाथ 'अश्क', अमृत लाल नागर, महावीर अधिकारी, रामअवतार त्यागी, नरेन्द्र शर्मा आदि साहित्यकार फिल्म से जुडे। लेकिन हिन्दी के बहुत कम लेखक बम्बई की फिल्मी दुनियॉ मे जम पाए, सिवा सुदर्शन, प्रदीप, नरेन्द्र शर्मा, कमलेश्वर और नीरज के। अधिकाश बम्बई की ढइया छूकर वापस चले गए।[2]

पत ने उदयशकर की 'कल्पना' के गीत लिखे। उदयशकर भट्ट ने 'सागर लहरे और मनुष्य' बम्बई के चित्रपट के लिए लिखा था, यशपाल ने दिव्या भी। पर किसी ने इन्हे फिल्माया नहीं। रागेय राघव ने 'हनुमान पाताल विजय' की कथा और डायलाग लिखे थे। बाद मे जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' पर फिल्म बनी। प्रेमचन्द के 'गोदान', 'सेवासदन' पर भी फिल्म बनी। पर चली नहीं। हिन्दी के कई नए लेखको की कहानियो एव उपन्यासो पर फिल्मे बनीं, रागेय राघव, रमेश बख्शी, निर्मल वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, मन्नू भडारी आदि अच्छे उदाहरण हैं, पर इन सबके एक या किसी की दो कथाओ पर फिल्मे बनने के बाद यह कथा वहीं क्यो समाप्त हो जाती है? वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी, अजेय, मोहन राकेश, राहुल साकृत्यायन, यशपाल, नागार्जुन आदि सुविख्यात रचनाकारो की हिन्दी कृतियो मे से कोई फिल्मवालो का ध्यान आकृष्ट क्यो नही कर सकीं? क्या, फिल्मो पर

---

1 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल, पृष्ठ 35

2 जनसचार सम्पादित राधेश्याम शर्मा के जनसचार माध्यम और भाषा-प्रभाकर माचवे के लेख से, पृष्ठ 131

साहित्यिक हिन्दी का कुछ भी प्रभाव नहीं पडा?[3] ये मारे ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर फिल्म और साहित्य की सीमाओ के मूल्याकन के लिए ढूढने पडेगे।

साहित्यिक कृतियॉ एव फिल्म

फिल्म ससार की विशालता के बावजूद साहित्यिक रचनाओ पर भारत मे अपेक्षाकृत कम फिल्मे बनीं हैं। 'गोदान', 'गबन', 'चित्रलेखा', 'सघर्ष' 'साहब बीबी और गुलाम', 'तीसरी कसम', 'गाइड' 'हजार चौरासी की मा', ओर आदि साहित्यिक कृतिया पर बनी कुछ फिल्मे हैं। धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवा घोडा' पर श्याम बनेगल ने एक फिल्म बनाई। इस उपन्यास मे छ छोटी-छोटी प्रेम कहानियाँ हैं जो अत मे जाकर एक दूसरे के साथ जुड जाती हैं। साहित्यिक कृतियो पर सबसे अधिक फिल्म बनाने वाले सत्यजीत राय फिल्म निर्देशक बनने के पहले स्वय लेखक थे। इन्होने रवीन्द्र नाथ टैगोर की दो, मुशी प्रेमचन्द की दो, विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय की चार, ताराशकर वन्द्योपाध्याय की दो और सुनील गागुली की दो कहानियो पर फिल्मे बनाईं। दस फिल्मे तो स्वय उन्होने अपनी ही कहानियो पर बनाया। इब्सन के नाटक 'द इनिमी ऑफ पिपुल' पर उन्होने 'गणशत्रु' नामक फिल्म बनाया। विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'पथेर पाचाली' ने इन्हे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलायी। 'पथेर पाचाली' का अर्थ है 'पथ का गीत'। सत्यजीत राय ने सम्पूर्ण उपन्यास की कथा तीन फिल्मो मे अकित की है। उपन्यास का पहला भाग 'पथेर पाचाली' (1955) मे है, दूसरा 'अपराजितो' (1955) और तीसरा 'अपूर मसार' (1959) फिल्म मे रचा गया है। सत्यजीत राय की यह त्रयी विश्व सिनेमा की श्रेष्ठ उपलब्धिया म है।

इसी प्रकार अच्छी कहानियो को फिल्मकारो ने फिल्माकन के लिए सहर्ष स्वीकार किया। विमल मित्र ने कई अच्छी साहित्यिक कृतिया का कैमरे की भाषा मे अनुवाद किया है। सिनेमा के नवयथार्थवादी दौर मे विमल राय की एक महत्वपूर्ण देन, जो उनके विषय वस्तु के चुनाव से सम्बन्धित है, वह साहित्यिक रचनाओ का फिल्म स्रोत के रूप मे प्रस्तुत किया जाना है। यद्यपि विमल राय के पहले भी साहित्यिक कृतियो पर फिल्मे वनी है किन्तु अपने समसामयिक फिल्मकारो मे वे पहले फिल्मकार हैं जिन्होने भारत के श्रेष्ठ कथाकारो की अनेक रचनाओ को फिल्म-भाषा मे रूपातरित किया। उन्होने शरतचन्द्र के उपन्यासो पर आधारित 'परिणीता', 'बिराज बहू' तथा 'देवदास' फिल्मे बनाईं। सुबोध घोष के उपन्यास पर 'सुजाता', जरासध के उपन्यास पर 'बन्दिनी' तथा चन्द्रधर शर्मा

3 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 35

गुलेरी की कहानी पर 'उसने कहा था' फिल्मा का निर्माण किया। विमल राय ने इन फिल्मो के निर्माण मे साहित्यिक कृतियो की मूलभावना को सुरक्षित रखा है। साहित्यिक कृतियो की विषयवस्तु को सिनेमा की भाषा मे ढालते समय कुछ परिवर्तन अवश्य हुए है किन्तु उनकी साहित्यिक सवेदना को विनष्ट नहीं किया गया है।[4]

उल्लेखनीय है कि सिनेमा मे नवयथार्थवादी दार का प्रारम्भ इटली से हुआ। इस आन्दोलन ने सिनेमा के व्याकरण को नया रूप दिया जिसे सौन्दर्यशास्त्रीय आन्दालन के रूप मे जाना गया।[5] इटली मे प्रारम्भ होने वाले इस नवयथार्थवाद पर श्रेष्ठ साहित्यिक कथाकारो का प्रभाव था। हेमिग्वे (अमेरिका), आन्द्रे बाजा (फ्रास), दॉसफेस्को (अमेरिका) इसके उदाहरण हैं। हिन्दी मे मोपॉसा की कहानी 'पापा साइमन' पर आधारित 'बाप बेटी' का निर्माण किया गया।[6]

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो और कहानियो मे नारी पात्रो को अत्यधिक करुणा और मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। वे प्रेम और सौदर्य की अप्रतिम रूप है। परिणामत उनकी मानवीय प्रतिछवियाँ अधिक सम्मोहक और सवेदनशील है। विमल राय ने शरत् के नारी पात्रो की इन विशेषताओ को उनकी सच्चरित्रता तथा स्वाभाविकता के साथ उभारा है। नारी के प्रति समाज की निर्ममता, असमान व्यवहार और उनके शोषण को अत्यत गहराई के साथ 'परिणीता', 'बिराजबहू' तथा 'देवदास' मे प्रदर्शित किया है। इन कृतियो मे नारी जीवन की करुणदशा को उन्होंने बडी कुशलता और प्रभावी ढग से दर्शाया है। 'बिराज बहू' मे यह सब देखा जा सकता है। समाज और व्यक्ति के बीच खोये हुए सतुलन की मर्मकथा और उसकी तलाश शरतचन्द्र के उपन्यासो का आधार बिन्दु है विमल राय ने उपन्यासो की थीम की इस सच्चाई को समझा है तथा उसे फिल्म मे उभारने की चेष्टा की है।[7]

साहित्य को पर्दे पर रूपातरण करने मे गुलजार की अद्वितीय भूमिका रही है। गुलजार ने कैमरे को कलम बना दिया है और उन्होने इसका ऐसा इस्तेमाल किया कि उनकी फिल्मे देखने पर कविता और कहानी पढने का सा अनुभव मिलता है। फिल्म निर्माता-निर्देशक के साथ-साथ वे स्वय कवि और कथाकार भी हैं। इन्होने कथानक के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलुओ पर प्रकाश डालकर उसे अपूर्व शक्ति

4 भारतीय नया सिनेमा सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 20

5 भारतीय नया सिनेमा सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 14

6 भारतीय नया सिनेमा, सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 20

7 भारतीय नया सिनेमा, सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 20

प्रदान की है। इसी प्रकार वासु भट्टाचार्य ने भी सशक्त कथानको पर फिल्मे बनाई हैं। ऐसे फिल्मकार की फिल्मे कलम से भी ज्यादा ताकतवर सिद्ध होती हैं।

अन्य भारतीय भाषाओ यथा बगाली मे शरत चन्द्र, विभूति भूषण वद्योपाध्याय, रवीन्द्र नाथ टैगोर, प्रमेन्द्र मित्र, समरेस वसु, विमल मित्र आदि की रचनाओ पर फिल्मे बनी है। मराठी मे भी साने गुरुजी, विस खाडेकर, अत्र, चिवी जोशी, पुलदेशपाण्डे, खानोलकर की रचनाओ पर चित्रपट बने है। ऐसे ही गुजराती मे गोवर्धनराय त्रिपाठी, भवेरचन्द मेघाणी के एम मुशी, पन्ना लाल पटेल आदि का योगदान है। अन्य दक्षिण भारतीय भाषाओ की रचनाओ पर भी फिल्म निर्माण की समृद्ध परम्परा रही है। परन्तु हिन्दी मे साहित्यकार फिल्म जगत के हासिए पर ही रहा है। सभव है इसका कारण हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र मे फिल्म निर्माण स्टूडियो का अभाव[8] एव फिल्म निर्माण पर दक्षिण भारतीय भाषाओ के लोगो का वर्चस्व रहा हो। फिल्म निर्माण के व्यवसाय मे सभी भारतीय भाषाओ मे हिन्दी ही प्रमुख भाषा माध्यम बनी। इस रूप मे फिल्म ने हिन्दी को अखिल भारतीय एव राष्ट्रभाषा स्वरूप दिलाने मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

हिन्दी के फिल्मकारो ने कहानी के चयन मे देश–विदेश की सकीर्ण सीमा का उल्लघन कर अच्छी–से–अच्छी कहानी लेने का प्रयास किया और उनके आधार पर अपनी फिल्मे बनाईं इस दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि यूरोपीय भाषाओ मे अग्रेजी के कथाकारो की कहानियो पर आधारित कथावस्तु को ग्रहण करने मे हमारे फिल्म निर्माताओ की सर्वाधिक रुचि रही है। महान् नाटककार विलियम शेक्सपियर के कुछ प्रख्यात नाटक रजतपट पर प्रस्तुत किए गए हैं। सन् 1931 मे सवाक् चित्रपट के निर्माण के दो वर्ष पश्चात ही शेक्सपियर की प्रसिद्ध कामेडी 'कामेडी ऑफ एरर्स' की कहानी को 'भूलभुलैया' शीर्षक से रणजीत मूवीटोन नामक फिल्म कम्पनी ने फिल्माया। एक सी शक्ल–सूरत के दो मालिको एव दो नौकरो की यह हास्य प्रधान कहानी हिन्दी फिल्मो मे एकाधिक बार फिल्मायी गयी है। 'भूलभुलैया' का निर्देशन जयत देसाई ने किया है। आगे चलकर शेक्सपियर के इस कहानी पर 'हँसते रहना', 'दो दुनी चार' तथा 'अगूर' शीर्षक देकर तीन अलग–अलग फिल्मे बनीं। दर्शको का मनोरजन करने मे इन फिल्मो ने कोई कसर छोड नहीं रखी थी। 'भूलभुलैया' तो सन् 1933 मे बनीं। इससे पहले ही एक वर्ष पूर्व पारसी थियेटर कम्पनी 'मार्डन थियेटर' ने शेक्सपियर की एक अन्य कृति 'टेमिग ऑफ दि श्रू' को रजत पट पर उतारा। जे जे मॉडन निर्देशित इस फिल्म का नाम था

---

8 भारतीय नया सिनेमा मुरन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 20

'हठीली दुल्हिन'। इसके बाद शेक्सपियर की महान् ट्रेजडी 'हेमलेट-डेनमार्क का राजकुमार' को सन् 1935 मे रुपहले पर्दे पर प्रस्तुत किया गया। पिता की मात का बदला लेने के राजकुमार हेमलेट के द्वन्द्व को 'खून का खून' नाम से फिल्माया गया। सोहराब मोदी ने इस फिल्म का सफल निर्देशन किया था।

शेक्सपियर की अन्य सुप्रसिद्ध कृति 'टेम्पेस्ट' का 'न्यू-थियेटर्स' कलकत्ता ने 'आँधी' नामक से फिल्माकन किया। इसके एक वर्ष बाद इनकी महान् कृति 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' को फिल्माया गया। शेक्सपियर ने इसका नाम वेनिस के भद्रव्यापारी ऐण्टानियो के नाम पर रखा। किन्तु 'माडर्न थिएटर' नामक पारसी थिएटर कम्पनी ने इसका नाम इस कहानी के खलनायक यहूदी व्यापारी शरलॉक के कारण 'जालिम सौदागर' रखा। इस तरह फिल्मी दुनिया मे आकर्षण के लिए हिसा की प्रभुता के सवेदनात्मक दबाव को पारसी थिएटर कपनियो के काल स ही देखा जा सकता है।

'रोमियो और जुलिएट' के प्रेमाख्यान को सन् 1947 मे निर्माता-निर्देशक अख्तर हुसैन ने फिल्माया। इसके गीतो के रचनाकार मजरुह सुल्तानपुरी, प्रसिद्ध शायर जिगर मुरादाबादी तथा प्रख्यात कवि फैज अहमद फैज थे। सर वाल्टर स्काट अग्रेजी के प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार थे, जिन्होने अपनी मातृभूमि स्काटलैण्ड के नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रति अनन्य प्रेम दिखलाते हुए मध्यकालीन सामती पृष्ठभूमि पर अनेक उपन्यास लिखे हैं। इनके महत्वपूर्ण उपन्यास 'लेडी ऑफ दि लेक' पर मोहन पिक्चर्स ने 1942 मे 'सरोवर की सुन्दरी' नामक फिल्म बनाया, जिसका निर्देशन ए एम खान ने किया था। पुन इसी निर्देशक महोदय ने 1960 मे 'लेडी ऑफ दि लेक' के नाम से ही एक और फिल्माकन किया। बीरेन बाग ने 1964 मे दाफ्रे द मारियर की प्रसिद्ध कथाकृति 'रैबेका' को 'कोहरा' नाम से फिल्माया, जिसके गीत कैफी आजमी ने लिखे थे। 1965 मे सुप्रसिद्ध भारतीय लेखक आर के नारायण की अग्रेजी कथाकृति 'गाइड' पर विजय आनन्द ने फिल्म बनाया। यह फिल्म भी खूब चली। किसी भारतीय लेखक की अग्रेजी कथाकृति को शायद ही इतनी लोकप्रियता मिली हो जो 'गाइड' को मिली।[9]

मैक्सिम गोर्की की विश्वविख्यात रचना 'मदर' पर पुदोव्किन ने फिल्म बनाई थी जो सोवियत फिल्म के इतिहास की अविस्मरणीय एव स्वर्णिम उपलब्धि है। 'मा' विश्व की श्रेष्ठ कृतियो मे से एक है किन्तु उसके कथानक का फैलाव फिल्म निर्माण की दृष्टि से बहुत उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। हालाकि गोर्की स्वय इसके प्रति आशकित थे, उनकी मान्यता थी कि 'आज के आदमी अपने दैनदिन जीवन की साधारण घटना से विशेष उद्दीपन का अनुभव नहीं करते हैं। लेकिन वही साधारण घटना ही

---

9 स्वतत्र चेतना, 13 फरवरी 99 के 'विदेशी साहित्य पर आधारित भारतीय फिल्मों का धमाका 'लेख से'

चलचित्र मे एक घनीभूत नाटकीय रूप धारण कर आदमी के मन को आन्दोलित कर देती है। मुझे भय का एहसास होता है कि कहीं चलचित्र की यह दुनियाँ यथार्थ का अतिक्रमण कर मनुष्य के हृदय और मन पर अपना अधिकार न जमा ले।[10]

रचना के फिल्माकन की सफलता

साहित्यिक कृतियो पर बनी फिल्मो को दर्शक स्वीकार करेगा या नहीं, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। ऐसा फिल्मो की सफलता सदिग्ध रहती है। पिछला इतिहास यही बताता है कि ऐसी अधिकाश फिल्मो को दर्शको ने अस्वीकार ही किया है। चाहे प्रेमचन्द जैसे रचनाकार के उपन्यास 'गोदान' अथवा कहानी 'मिल मजदूर' ओर 'शतरज के खिलाडी' पर बनी फिल्म हो, या रेणु के उपन्यास पर बनी फिल्म 'तीसरी कसम' हो अथवा मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता हुआ आदमी' हो, सभी फिल्मे असफल रही हैं। नौवे दशक मे भी कुसुम असल के उपन्यास पर बनी फिल्म 'पचवटी', उदय प्रकाश की कहानी पर बनी फिल्म 'उपरात' तथा योगेश गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' पर बनी फिल्म 'अतहीन' नहीं चली।[11] दूसरे दौर मे 'तीसरी कसम' चली भी तो गाने के कारण।

दूसरी ओर आर के नारायण के उपन्यास 'गाइड' पर बनी फिल्म अत्यत सफल रही। शरतचन्द्र के 'देवदास' पर तो तीन फिल्मे बनीं और तीनों सफल रहीं। सन् 1993 के अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह मे प्रदर्शित मादेम बावरी के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'माया मेमसाब' भी काफी चली, हालाकि इसके चलने का कारण इसकी कथावस्तु नहीं बल्कि उसके तथाकथित यथार्थवादी बोल्ड दृश्य रहे। महाश्वेता देवी की कहानी पर आधारित 'रुदाली' जनप्रिय सिद्ध हुई और चर्चित भी रही।[12]

कई बार लेखक अपनी ही कृतियो पर निर्मित फिल्म से सतुष्ट नहीं होते हैं और फिल्मकार पर यह आरोप लगाते हैं कि इन्होने हमारी रचना की आत्मा ही मार दी, अर्थात् लेखक का मन्तव्य पूरी तरह

---

10 सिनेमा की संवेदना, डा० विजय अग्रवाल, पृष्ठ 38

11 सिनेमा की सवेदना, डा० विजय अग्रवाल पृष्ठ 38

12 सिनेमा की सवेदना डा० विजय अग्रवाल पृष्ठ 38

से बदला हुआ लगता है जो लेखक के लिए असह्य पीडादायक होता है। दूसरी ओर धर्मवीर भारती यदि 'सूरज का सातवा घोडा' के फिल्म रूप से सतुष्ट थे तो यह इस बात का प्रमाण है कि लेखक फिल्मकार एक दूसरे के पूरक भी हो सकते हैं।[13]

प्रसिद्ध जर्मन लेखक गुथर ग्रास का एक बहुचर्चित उपन्यास है— 'द टिन ड्रम'। इस उपन्यास मे एक ऐसे अनोखे आस्कर के माध्यम से कहानी कही गई है जो युद्ध की विभिषिका, समाज के पतन के विरुद्ध अपने विकास को स्वय ही रोक लेता है। वह ड्रम बजाता है, तो उसकी आवाज से शीशे टूट जाते हैं। कहने का आशय यह है कि इस बौने की दृष्टि को सिनेमा के पर्दे पर लाना लगभग असभव काम था। लेकिन जर्मन फिल्मकार श्लौंडोर्फ ने 1979 मे इसी उपन्यास पर एक अविस्मरणीय फिल्म बनाई। स्वय गुथर ग्रास भी इस फिल्म को देखकर सतुष्ट थे। बौना आस्कर पर्दे पर आकर और भी असरदार ढग से युद्ध और अमानवीयता के विरुद्ध अपना 'ड्रम' बजाता रहा। कान महोत्सव (फ्रास) मे इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म भी माना गया।

पर्दे के लिए मुश्किल नजर आने वाली गुथर ग्रास की कृति का फिल्माकन सफल रहा। लेकिन अक्सर अच्छे चर्चित और कालजयी उपन्यास पर्दे के लिए एक मुश्किल किस्म की चुनौती नजर आते है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक गाब्रिएल गार्सिया मार्केस का उपन्यास 'वन हैन्ड्रेड इयर्स ऑफ सॉलीच्यूड' दुनिया भर मे चर्चित है। हालिवुड से शुरू होकर नामी निर्माताओ के प्रस्ताव मार्केस के पास आए कि हम इस उपन्यास पर फिल्म बनाना चाहते हैं, लेकिन मार्केस ने अनुमति नहीं दी। हो सकता है भविष्य मे किसी समर्थ फिल्मकार को मार्केस अनुमति दे भी दे। उनकी एक अन्य चर्चित कृति 'क्रानिकल ऑफ ए डेथ फोरटोल्ड' पर इतालवी फिल्मकार फ्राचेस्को रोस्सी एक फिल्म बना भी चुके हैं जो अगर बहुत अच्छी नहीं थी, तो खराब भी नहीं थी।[14]

फिल्माकन के उपयुक्त रचना

ऐसा नहीं है कि श्रेष्ठ साहित्य पर श्रेष्ठ फिल्मे नहीं बनायी जा सकती हैं श्रेष्ठ साहित्य पर अच्छी फिल्मे बन सकती है किन्तु सभी श्रेष्ठ साहित्य पर अच्छी फिल्मे बने यह आवश्यक भी नहीं है। इसलिए यह विचार करना आवश्यक है कि किस प्रकार का साहित्य फिल्म के अनुकूल होता है? फिल्म निर्माता-निर्देशक की साहित्य की समझ और साहित्य सर्जक व समीक्षक की समझ एक हो यह

---

13 समय और सिनेमा विनादे भारद्वाज, पृष्ठ 33

14 समय और सिनेमा विनादे भारद्वाज, पृष्ठ 34

आवश्यक भी नहीं है। अभी तक के अनुभवो से यह स्पष्ट है कि इन दोना की समझ मे मेल नहीं रहता है। गुलशन नन्दा के कई उपन्यासो पर फिल्मे बनीं ओर सफल रहीं। लेकिन प्राय इन्हे साहित्यकार की कोटि मे नहीं रखा जाता है और न ही इनकी रचनाएँ साहित्य के रूप मे मानी जाती हैं। फिल्म के लिए किसी भी कहानी का चयन करते समय तथा चयन के बाद उसका फिल्माकन करते समय यह बात निर्माता-निर्देशक ध्यान रखते हैं कि कला की अन्य विधाओ की तरह फिल्म का निश्चित दर्शक वर्ग नहीं होता है बल्कि सिनेमा युवा-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित सबका माध्यम है। दूसरे यह कि सबसे मँहगी कलात्मक विद्या होने के कारण किसी भी सर्जनात्मक प्रतिभावाले फिल्मकार के लिए यह सभव नहीं होगा कि वह लगातार ऐसी फिल्मे बनाता रहे, जो बहुत घाटा दे रही हो। सिनेमा मूलत फिल्म निर्देशक की विधा है, फिर भी यह एक 'सामूहिक विधा' है। इसे मूर्तरूप देने मे सवाद लेखक, गीतकार, सगीत निर्देशक, छायाकार, यहा तक कि सपादक की भी अपनी भूमिकाएँ होती है, बावजूद इसके कि ये सभी निर्देशक की इच्छा के अनुकूल ही अपना-अपना काम करते है। केवल इतना ही नहीं बल्कि नायक-नायिका की अपनी सामाजिक-सास्कृतिक पृष्ठभूमि भी अभिनीत चरित्र पर अपना अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती है।[15]

जो कहानी इस पैमाने पर सटीक बैठती है, उसे ही निर्माता निर्देशक फिल्म के लिए उठाता है। 'सूरज का सातवा घोडा' को बेनेगल ने फिल्म बनाने के लिए इसलिए लिया क्योंकि उसमे फिल्म के लिए उपयोगी दो प्रधान तत्व थे— पहला प्रेमकथा का होना और दूसरा अलग-अलग घटनाओ का एक-दूसरे से जुडकर आश्चर्य मिश्रित सयोग की सृष्टि करना।[16] साहित्य को लेकर सत्यजीत राय ने सर्वाधिक फिल्मे बनाई हैं लेकिन उनकी सभी फिल्मे साहित्य पर आधारित नहीं हैं। उन्होने उस साहित्य को अपनी फिल्म के लिए प्राथमिकता दी, जिसमे डिटेल्स थे, ताकि साहित्यिक कृति की आत्मा को चित्रित किया जा सके और साहित्यकार तथा निर्देशक के सवेदनात्मक टकराव एव विलगाव को कम-से-कम दूर रखा जा सके। पथेर पाचाली के विषय मे उनका कहना था, 'पथेर पाचाली' का प्रमुख गुण था— उसकी सरलता। उसमे था मन का आवेग, काव्यमयता, यथार्थता, मानवता आदि जैसे गुणो का समावेश उस फिल्म मे उन गुणो के समावेश होने के कारण ही उसने दर्शको के मन मे एक ऐसी छाप छोड दी जिसे मिटाया नहीं जा सकता।[17] किसी फिल्म का चलना और न चलना उसके

15 दृष्टव्य, सिनेमा की सवेदना, डॉ विजय अग्रवाल, पृष्ठ 37

16 दृष्टव्य, सिनेमा की सवेदना, डॉ विजय अग्रवाल, पृष्ठ 37

17 दृष्टव्य, सिनेमा की सवेदना, डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 38

साहित्यिक कथानक पर निर्भर नहीं है। जैसे सामान्य फिल्मे पिट जाती है उसी तरह साहित्य आधारित फिल्मे भी पिट सकती हैं। जो फिल्मे चलीं उनका मूल कारण रहा उन फिल्मो की कलात्मकता। जो फिल्मे साहित्य पर आधारित थीं और जिनकी प्रस्तुति उस साहित्य के अनुकूल रही और उतना ही प्रभावोत्पादक रही उसका कारण था उस लेखक और फिल्मकार दोनो की सर्जनात्मक शक्ति और दोनो की आलोचनात्मक एव सवेदनात्मक समझ का मतैक्य। फिल्मकार किसी रचना पर फिल्म बनाते समय उस रचना का पुनर्सृजन करता है। अब तक का यह अनुभव रहा है कि यदि साहित्यिक कथानक को थोडे-बहुत परिवर्तन के साथ सिनेमाई अदाज मे प्रस्तुत किया गया, तो फिल्म चली, अन्यथा वह असफल हो गई। स्वय सत्यजीत राय ने भी यह स्वीकार किया है कि वे साहित्यिक कथानक को ज्यो-का-त्यो प्रस्तुत करने के मोह मे नहीं पडते। यह बहस का मुद्दा है कि किस सीमा तक परिवर्तन की अनुमति दी जा सकती है।[18] इस परिवर्तन मे निर्देशक को स्वय की कल्पना का आश्रय लेना पडता है। 'उपन्यास पर आधारित कोई ऐसा सार्थक चलचित्र आज तक नहीं निर्मित हुआ है, जिसमे निर्देशक को अपनी कल्पना का सहारा न लेना पडा हो।'[19]

साहित्यिक कथानको पर फिल्म बनाने वालो पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि वे साहित्य को विकृत कर देते हैं। सत्यजीत राय ने अपने द्वारा बनाये गए फिल्म 'चारुलता' के सदर्भ मे एक लेख मे उपन्यास के मूल अश तथा फिल्मो के सवाद को आमने-सामने रखकर इस आक्षेप का उत्तर दिया है।[20] इसी तरह 'साहब, बीबी और गुलाम' फिल्म मे उसके लेखक विमल मित्र के आरोपो का उत्तर देते हुए निर्देशक गुरुदत्त ने कहा था कि कहानी लिखते समय लेखक के पास कहानी के विस्तार एव उसकी अभिव्यक्ति की असीम सभावनाए होती हैं लेकिन उस कहानी पर फिल्म बनाते समय उन सभी कल्पनाओ को दृश्य देना पडता है, इसके दृश्याकन मे गति एव समन्वय बनाये रखने के लिए थोडा हेर-फेर आवश्यक हो जाता है।[21] यह परिवतन मात्र प्राविधिक मजबूरियो के कारण ही नहीं करना पडता अपितु इसके पीछे दर्शको की मनोवृत्ति भी होती है। इसे स्पष्ट करते हुए सत्यजीत राय ने कहा था, कि 'दर्शक सुघड प्लाट, सवलित कहानी चाहते है   दर्शक नाटकीय घात-प्रतिघात चाहते

---

18 सिनेमा की सवेदना, पृष्ठ 39

19 'चलचित्र कल और आज'—सत्यजीत राय (सिनेमा की सवेदना पृष्ठ 125 से उद्धृत)

20 'चलचित्र कल और आज'—सत्यजीत राय (सिनेमा की सवेदना, पृष्ठ 125 से उद्धृत)

21 श्री श्रीष मित्र , फिल्म समीक्षक, जनसत्ता से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार, द्रष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य' योगेन्द्र प्रताप सिह

है, सुन्दर नायक-नायिका चाहते हैं, मनोरम बहिर्दृश्यावली चाहते हैं, तडक-भडकदार परिवेश चाहते हैँ। साथ ही साथ विभिन्न रसो का एक उपभोग समन्वय चाहते है, जिससे सर्वांत मे उनका मन परिपूर्ण हो उठे।[22]

साहित्य एवं समानान्तर सिनेमा

दर्शक की माँगो के दबाव मे फिल्म की दो धाराओ का विकास हुआ। एक धारा फिल्म के विकसित कुछ फार्मूलो से इसका समाधान प्रस्तुत करती है तो दूसरी धारा इस व्यावसायिक धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप कला का आदर्श प्रस्तुत करती है। कलात्मक फिल्मो की इस धारा का विकास बॉक्स ऑफिस फार्मूले की प्रतिक्रिया मे हुआ। 1969 मे मृणालसेन की फिल्म 'भुवन सोम' से हिन्दी कला फिल्म का जन्म माना जाता है।[23] फिल्म समीक्षको ने इस धारा को नया सिनेमा, कला सिनेमा, सार्थक सिनेमा तथा समानान्तर सिनेमा आदि नाम दिया। पाँचवे दशक मे फिल्म की कथा वस्तु मे नवयथार्थवाद के समावेश के कारण विमल राय की 'दो बीघा जमीन', राजकपूर की 'बूट पालिश' और 'जागते रहो', सत्यजीत राय की 'पाथेर पाचाली' और शातासम की 'दो आखे बारह हाथ' आदि फिल्मे बनीं, जिन्हे विश्वभर मे ख्याति प्राप्त हुई। नवयथार्थवाद का प्रारम्भ इटली से माना जाता है तथा यथार्थवादी फिल्मो की प्रेरणास्रोत साहित्यिक कृतियाँ ही रही है। भारत मे कला सिनेमा की वास्तविक शुरुआत विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय के उपन्यास 'पाथेर पाचाली' पर फिल्म बनाकर सत्यजीत राय ने किया।[24] इस प्रकार कला सिनेमा का आरम्भ भी प्रख्यात उपन्यास के फिल्माकन से होता है।

नए-नए प्रयोगधर्मी निर्देशको ने इस धारा मे इस माध्यम को कला की दृष्टि से काफी सजाया-सवाँरा। कुमार शाहानी (माया दर्पण, 1972), मणिकौल (उसकी रोटी, 1970), श्याम बेनेगल (निशात, 1975 तथा कलियुग, 1981) गोविन्द निहलानी (अर्द्धसत्य, 1983), सागर सरहदी (बाजार, 1983), मृणालसेन, खण्डहर, 1983), सैयद मिर्जा (अल्बर्ट पिन्टो को गुस्सा क्यो आता है, 1984), मोहन जोशी (हाजिर हो, 1984), केतन आनन्द (शर्त, 1985), रमेश शर्मा (न्यू दिल्ली टाइम्स, 1985), महेश भट्ट ('जन्म' और 'साराश', 1985) आदि निर्देशको ने न केवल इन फिल्मो मे नए-नए विम्बो

---

22 चलचित्र कल और आज - सत्यजीत राय (सिनेमा की सवेदना, पृष्ठ 124 से उद्धृत)

23 'दि मारेल' हिन्दी साप्ताहिक के 'सार्थक सिनेमा का गुलशन क्यों उजडा'- लख से 20 अक्टूबर 2 नवम्बर 1998

24 दि मारेल, हिन्दी साप्ताहिक (20 अक्टूबर - 2 नव) के फिल्म विषयक लख

एव प्रतीको का प्रयोग कर उन्हे कला के क्षेत्र मे श्रेष्ठ कृति के रूप मे स्थापित किया[25] अपितु फिल्मी दुनियाँ का यह भ्रम भी तोडा कि फार्मूले बाजी से अलग हटकर अच्छे कथानको पर फिल्मे नहीं बन सकती है। इस दौर मे मणिकौल ने मोहन राकेश की कहानी पर आधारित 'उसकी रोटी' (1970) तथा विजयदान देथा की कहानी पर आधारित फिल्म 'दुविधा' (1979) का निर्माण किया। कुमार शाहानी ने निर्मल वर्मा की कहानी का फिल्म रूपातरण 'मायादर्पण' (1972) नाम से किया। इसके पहले बासु चटर्जी राजेन्द्र यादव के उपन्यास पर 'सारा आकाश' (1969) बना चुके थे। उन्होने मन्नू भडारी की कहानी "यही सच है" 'रजनी गधा' नाम से 1974 मे फिल्म बनाया जिसे बहुत अधिक लोकप्रियता मिली। मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ का एक दिन' पर मणिकोल ने 1972 मे फिल्म बनाई है। प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कृति 'कफन' पर तेलगू मे 1977 मे फिल्म बनी। रमेश बक्षी के उपन्यास पर आधारित फिल्म '27-डाउन' को 1973 मे अवतार कोल ने बनाया। राजेन्द्र सिह बेदी की कहानी पर एम एस सैक्यू ने 'गरम हवा' (1973) का फिल्माकन किया। कमलेश्वर की कहानी पर शिवेन्द्र सिन्हा ने 'फिर भी' (1971) नामक फिल्म बनाया। शिवराम कारत के उपन्यास पर बी बी कारत ने 'चौमन दुडी' (1975) बनाया। इसी प्रकार यू आर अनन्तमूर्ति की कथा पर बनी फिल्म 'घटश्राद्ध' (1977) का निर्देशन गिरीश कासरवल्ली ने किया।

सातवे दशक मे इन फिल्मो का जबर्दस्त दोर था लेकिन अगले दशक के साथ ही इनकी आभा धूमिल हो गई और हिन्दी कला फिल्मो की अकाल मृत्यु की घोषणा हो गई। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि अपने कथा वस्तु के चयन तथा उसके प्रस्तुतिकरण मे बेहद प्रयोगवादी एव बोझिल शैली का प्रयोग किया गया जिससे ये फिल्मे उन लोगो से सीधे सवाद स्थापित नहीं कर सकीं जो इनके मुख्य दर्शक वर्ग थे। 'खडहर', 'सतह से उठता हुआ आदमी' तथा 'एक डाक्टर की मौत' जैसी फिल्मो की सप्रेषणीयता तब तक पूर्ण नहीं हो पाती, जब तक कि समीक्षक नाम का मध्यस्थ उसकी व्याख्या न करे।[26] ये फिल्मे यह पूर्वापेक्षा पालकर चलती हैं कि तर्कपरायण दर्शक ही इन्हे देखेगे, भावुक नहीं। जबकि हिन्दी फिल्मो के दर्शको की सवेदना न तो अभी इतनी रूक्ष हुई, और न ही उसकी चेतना का स्तर इतना उच्च हुआ है कि वह ऐसा कर सके। इसलिए हुआ यह कि ऐसी फिल्मो के साथ आम दर्शक न तो भावना के स्तर पर तादात्म्य स्थापित कर सका और न ही उसे चेतना के स्तर पर ग्रहण कर

---

25 जनसचार राधेश्याम शर्मा - लेख 'जनसचार तकनीक और शैलिया' - सोहल लाल शर्मा

26 दृष्टव्य सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 14

सका।[27] फलत ऐसी फिल्मे मास मीडिया के बजाय क्लास मीडिया के रूप मे बदल गईं और सभ्रात वर्ग के सीमित दायरे मे ही आकर सिमट गईं, जबकि फीचर फिल्मे सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति लाने मे महती भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं क्योकि दृश्य माध्यम होने का कारण ये सच्चे अर्थों मे जन माध्यम होती हैं।

साहित्य एव व्यावसायिक सिनेमा कथानक

कलात्मक फिल्मो की गति धीमी थी, आर अत प्रश्नवाचक था। फिल्म जगत् ने इस कमी को पहचाना तथा इसे दूर करने के लिए 'तीव्रता और सुखान्त' की नीति को अपनाया। फलस्वरूप 'हिसा' जैसे तथ्य की तलाश की गई, क्योकि इसके द्वारा फिल्म के कथानक की गति को तीव्र किया जा सकता था तथा उसके दर्शक मे रोमाच भी पैदा किया जा सकता था। इसी हिसा के माध्यम से फिल्म के अत को भी आसानी से सुखात बनाया जा सकता था।[28] सन् 1948 मे फिल्मी ससार मे एक युगान्तकारी घटना घटी। दक्षिण भारत के एस एस वासन ने चन्द्रलेखा फिल्म बनाई जिसमे आलीशान सेटो और एक भव्य ढोलक नृत्य का आयोजन किया गया। यहाँ से ही बाक्स-आफिस-फार्मूला फिल्मो के निर्माण की शुरूआत हो गई। कालान्तर मे बडे बजट और एक से अधिक बडे-बडे सितारो वाली अन्य फिल्मे बनने लगीं जो प्रक्रिया अभी भी जारी है।[29] बाक्स आफिस फार्मूले के रूप मे फिल्म जगत् ने सेक्स और हिसा की आवश्यक बुराई को स्वीकार कर लिया। सिनेमा अपने जन्मकाल से मनोरजन के एकमात्र उद्देश्य से प्रारम्भ हुआ तो फिर उससे कभी मुक्त न हो सका। फलत दर्शक उससे किसी प्रकार की गभीरता से सरोकार न बना सका। आज काई प्रबुद्ध दर्शक भी फिल्म देखने जाता है तो मात्र मनोरजन के लिए। उपरोक्त सभी परिस्थितियो का दुष्परिणाम यह हुआ कि फिल्मो के कथानको मे नवीनता एव वैविध्यता के बजाय कथानक की एक सपाटता रूढ हो गई। अस्सी वर्षों के पूरा करने के बावजूद कथानक की दृष्टि से हिन्दी फिल्म अभी मेच्योर नहीं हो पायी है। आज भी अश्रुगलित रुग्ण भावुकता वाले प्रेमपरक कथानक ही फिल्मो के केन्द्र मे है। हालाकि कुछ प्रतिबद्ध फिल्मकारो ने कथानक मे वैविध्यता लाने की कोशिश की, लेकिन दुर्भाग्यवश वे फिल्मे मुख्य धारा की फिल्मे नहीं बन पायीं। एक ऐसे समय मे, जबकि यूरोपीय और लैटीन सिनेमा ही नहीं, बल्कि कुछ एशियाई सिनेमा

---

27 दृष्टव्य सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 14

28 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 14

29 जनसचार राधेश्याम शर्मा पृष्ठ 114

की भी मुख्यधारा समाज के गभीर सरोकारो को अभिव्यक्त कर रही है, हिन्दी सिनेमा 'ये जिन्दगी उसी की है, जो किसी का हो गया', के भाव जगत् से मुक्त नहीं हो सका। नतीजा यह हुआ कि उसकी दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रो पर बहुत कम पडी तथा प्रेमकथाए ही घुमा-फिराकर फिल्माई गईं। आखिर प्रेम कथानको की भी एक सीमा तो है ही। पहले मेच्योर प्रेम को प्रस्तुत किया गया, बाद मे 'बाबी' से 'अल्हड' प्रेम का दौर चला। फिर कॉलेज का प्रेम आया, ओर अब आया 'डर' का प्रेम। ऐसे कथानको मे और भले ही कई बाते बदल गईं हो, लेकिन प्रेम ज्यो का त्यो बना हुआ है।[30] इस स्थिति मे पटकथा लेखक प्रेम त्रिकोण को कितने रूपो मे लिख सकता है?

इस प्रेम का चित्रण जितने तरीके से होना चाहिए था, करीब-करीब हो चुका है। निश्चित रूप से यह कथावस्तु अब दर्शको के लिए रूढ हो गई है। कथा की सरचना अब दर्शको के लिए इतनी जानी-पहचानी हो गई है कि फिल्म खत्म होने से पहले ही उनके लिए खत्म हो चुकी होती है। उन्हे पहले से ही यह मालूम हो जाता है कि अब आगे क्या होगा। चाहे लाख मुसीबत आए प्रेमी-प्रेमिका मिलेगे ही, यह उनकी धारणा बन चुकी है। 'नायक एक 'अतिमानव' है, वह किसी भी विकट परिस्थिति मे विजयी होकर ही निकलेगा', की पूर्व निर्धारित धारणा अब दर्शको को नायक की सवेदना के साथ जोडने मे अक्षम सिद्ध हो रही है। अब छोटे-छोटे बच्चो मे भी यह 'सेस'' आ गया है कि फिल्म मे आगे क्या होने वाला है। यह सचमुच एक आश्चर्यजनक, किन्तु फिल्मकारो के लिए दु खद एव शर्मनाक बात है।

कथानक से ही जुडा हुआ तथ्य है— फिल्म दृश्यो की स्थितियॉ। कथानक मे ऐसी असभव स्थितियो एव सयोगो की सरचना की जाती है जो दर्शको को अपने साथ बहाकर ले जा सके। चूंकि कथानक का अत सुखमय ही होना है, और कथानक जटिल होता है, इसलिए उसे सुलझाने के लिए 'अविश्वसनीय सयोगो की सृष्टि करनी पडती है। इन सयोगो की भी अखिर एक सीमा तो होती ही है। फलत· एक ही जैसे सयोग, और एक ही जैसी स्थितियो की इतनी अधिक आवृत्तियाँ की गई हैं कि दर्शको के लिए वे सयोग जाने-पहचाने से हो गए हैं। उन्हे मालूम है कि फिल्म के अत मे नायक कितने भी दुश्मनो से घिरा हुआ हो, वह अकेले निपट लेगा तथा उसके निपटने के बाद ही पुलिस आएगी। मरणासन्न व्यक्ति की बात जैसे ही पूरी होगी उसकी गरदन लुढक जायेगी।[31] ये

---

30 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल, पृष्ठ 15

31 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल, पृष्ठ 16

परिस्थितियाँ फिल्म के कथानक की एक सीमा बनाती चलती हैं। उपरोक्त विवेचन का आशय यह है कि व्यावसायिक तौर पर सिनेमा का लेखन माग एव पूर्ति पर आधारित हो जाता है। जहा उपरोक्त बन्धनो एव शर्तों के अनुसार पटकथा लिखनी होती है। इस प्रकार के लेखन मे लेखक की सवेदना एव सर्जनात्मकता चुक जाती है फलत यह लेखन सर्जनात्मक कोटि के साहित्यिक स्तर से वचित रह जाता है। इस प्रकार की कथावस्तु पर आधारित फिल्म सस्ते नावेल के श्रेणी मे आ खडा होता है। वैसे भी सिनेमा मे कथानको का महत्व अब कम हो गया है।

फिल्म जगत् में लेखनकर्म

फिल्म मे लेखन की विभिन्न विधाएँ हे। पटकथा, गीत एव सवाद आदि को लिखने वाले फिल्म मे विभिन्न लोग हैं। इन विभिन्न विधाओ के लेखन को उत्कर्ष तक पहुचाने मे विभिन्न साहित्यकारो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु आज के फिल्मो के असाहित्यिक, अपसास्कृतिक स्थितियो को देखकर यह विवेचन आवश्यक हो जाता है कि किन परिस्थितियो, सीमाओ और बाधाओ मे फिल्म जगत का वर्तमान लेखन चल रहा है।

फिल्म जगत के लिए यह विडम्बना ही है कि यहाँ सब कुछ ग्लैमर पर चलता है। यहाँ तक कि फिल्म के लिए लेखन भी ग्लैमर की वस्तु है। सवाद लेखक आनन्द रोमानी के शब्दो मे यहाँ सिर्फ वर्तमान को देखा जाता है, अतीत से किसी का कोई लेना-देना नहीं है, आपने क्या लिखा, कितना लिखा, यह कोई नहीं देखता। फिल्म यदि हिट हो गई तो भीड लग जायेगी अन्यथा कोई नहीं पूछता। पहले फिल्म बनाने के लिए कहानी तलाशी जाती थी अब स्टार तलाशे जाते हैं।[32] सम्प्रति फिल्म का केन्द्र बिन्दु स्टार होता है। इसके पीछे स्टार की अभिनय-क्षमता के अतिरिक्त हिट हो जाना मुख्य होता है। स्टार को ध्यान मे रखकर कहानी तलाशी जाती है अथवा फिल्मी फार्मूले के तहत कहानी गढ ली जाती है। दूसरी बात यह है कि किसी फिल्म के हिट होने पर उसके नायक की एक निश्चित छवि बन जाती है। अन्य फिल्मो के लिए काम लेते समय पूर्व अभिनय की छवि ही सबके दिमाग मे होती है। इससे अगली कहानी पर बनी फिल्म के साधारणीकरण मे अवरोध उत्पन्न होता है। अपनी ही छवि को न तोड पाने का एक अन्य कारण नायक की सीमित अभिनय क्षमता का होना है। इस दौर मे कम उम्र के नायक-नायिका को विशेषकर इनकी भौतिक सुन्दरता को ध्यान मे रखकर ही चयन होता है। अभिनेता के मँजे हुए न होने पर भी वे अपने आपको दुहराते हैं और उनकी किसी विशेष किरदार की

---

32 दैनिक जागरण, 12 अप्रैल 1998, 'रचना और रचनाकार' स्तभ से

छवि नहीं टूट पाती है। यह भारतीय सिनेमा के लिए कथावस्तु की दृष्टि से दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि आज उसमे वैविध्यपूर्ण कहानी के फिल्माकन की सभावना कम होती जा रही है। निर्देशक रामगोपाल वर्मा असमजस मे है कि वे मेगास्टार अमिताभ बच्चन को अपनी फिल्म मे क्या चरित्र दे? उनकी जो प्रचलित इमेज है वह दें अथवा उनकी आयु के अनुसार। इसी प्रकार अलग-अलग विषयो पर फिल्म बनाने वाले टूटू शर्मा ने अपनी फिल्म मे काम करने हेतु जब गोविन्दा से साइन कराया तो किसी ने उस फिल्म की कहानी के बारे मे पूछने पर बताया कि 'मेरी फिल्म मे कहानी नहीं गोविन्दा है।'[33] ऐसे अनगिनत उदाहरण है जो आज के फिल्म जगत् की साहित्य विरोधी स्थितियो को इगित करते है। फीचर फिल्म की सबसे बडी विडम्बना है कि वह तीन घण्टे की अवधि बाँध कर चलती है, इससे कहानी का अनावश्यक विस्तार अथवा सक्षिप्तीकरण कर दिया जाता है। साहित्य के लिए बाधा के रूप मे फिल्म मे ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

फिल्म एक सश्लिष्ट विधा है, जिसमे अनगिनत कलाकारो के सहयोग से कला सृजित होती है। गीत, कथानक एव सवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद फिल्म मे लेखक का काम दोयम दर्जे का माना जाता है। फिल्म के अन्य उपादानो पर व्यय की अपेक्षा लेखक को बहुत कम पारिश्रमिक मिलता है। उदाहरणस्वरूप सन् 1940 मे बनी फिल्म रतन के लिए नौशाद ने गीत व सगीत दिया। अपने दिलकश गीतो और सगीत के कारण यह फिल्म इतनी अधिक सफल रही थी कि इसके वितरको को करीब एक करोड रुपये का लाभ मिला था। जबकि उसको सगीत देने के लिए नौशाद को केवल आठ हजार रुपये मिले थे।[34] हालाकि अन्य लेखन की अपेक्षा फिल्म-लेखन मे अपेक्षाकृत ज्यादा पैसा है किन्तु वहाँ का लेखन मूलत फिल्म जगत् की शर्तो पर है। इसी के साथ फिल्म जगत् के लेखन को लेखक समुदाय मे भी दोयम दर्जे का काम माना जाता है। फिल्म और टेलीविजन मे ज्यादा पैसा है इसलिए यह भी मान लिया जाता है कि लेखक बिक गया।[35] हिन्दी के अनेक लेखक इन माध्यमो से जुडने की आलोचना जरूर करते हैं लेकिन प्राय यह भी देखा जाता है कि आलोचना करने वाले ये लेखक फिल्म या टेलीविजन विधा के ढाँचे, उसकी जरूरतो, उसकी दिक्कतो को जानते ही नहीं हैं।

---

33 द्रष्टव्य हिन्दुस्तान 13 फरवरी 'रगोली' के पृष्ठ से

34 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 128

35 समय और सिनेमा, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 32

बहुत से लेखक फिल्म और टेलीविजन के ग्लैमर, लोकप्रियता, दबावो आदि से घबराते है। इस तरह के दबाव मे काम करना उनके वश की बात नहीं होती है। इन लेखको का सकोच तो समझ मे आता है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि जो लेखक इन विधाओ से जुडे उनकी आलोचना ही की जाए। लेखक खराब लिखे तो उसकी आलोचना उसी तरह होना चाहिए जैसे एक खराब रचना की होती है। लेकिन फिल्म और टेलीविजन का अपना ढाँचा और अपनी शर्ते है। उन्हे ध्यान मे रखकर ही रचनाकार की सफलता-असफलता को मापा जाना चाहिए।[36]

फिल्म एवम् साहित्य : सवेदनात्मक अभिव्यक्ति

एक अत्यत सवेदनशील कलात्मक विधा होने के वावजूद फिल्म की लागत ने इसे एक वस्तु मे बदल दिया है जबकि कला के अन्य रूप इससे कुछ बचे हुए है। इसलिए फिल्म की सफलता-असफलता के प्रसग मे सामाजिक सदर्भ के सोद्देश्यता की बजाय बाक्स आफिस पर बटोरे गए धन की चर्चा होती है। इस बात का महत्व नहीं के बराबर रह जाता है कि उस फिल्म की सवेदना, सदेश एव कला क्या है। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि फिल्म की सफलता का फिल्मकार अथवा फिल्म की सवेदना और कलात्मकता से कोई लेना-देना नहीं है। यह बात तो है ही कि अतत फिल्म दर्शको के लिए बनाई जाती है। और यदि वे ही उसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं, तो फिर बनाने की उपयोगिता क्या है? 'स्वान्त: सुखाय' के लिए साहित्य तो रचा जा सकता है, लेकिन फिल्म बनाने वाले इक्के-दुक्के मिलेगे। इसलिए फिल्मो मे लोकप्रिय तत्वो का, जिसे फार्मूला कहा जाता है, इतनी अधिकता और प्रबलता होती है। यहाँ तक कि प्रतिबद्ध फिल्मकार के लिए भी इस फार्मूले से बच पाना आसान नहीं होता। अतर केवल मात्रा का रह जाता है।[37] यह अतर जितना ही अधिक होगा फिल्म साहित्यिक सस्कारो से उतनी ही दूर होगी।

साहित्य सवदेनात्मक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति जितनी ही प्रबल होगी और सवेदना जितनी ही प्रगल्भ होगी वह साहित्य उतना ही श्रेष्ठ होगा। इसी प्रकार अच्छी फिल्मो की महत्वपूर्ण बात होती है सवेदना। सवेदना फिल्म को ऊँचाई देती है। सवेदनात्मक अभिव्यक्ति ही सस्ते

---

36 समय और सिनेमा, विनोद भारद्वाज, पृष्ठ 33

37 सनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 22

साहित्य और श्रेष्ठ साहित्य तथा व्यावसायिक फिल्मे ओर अच्छी फिल्मो के पार्थक्य को निर्धारित करती हैं।

फिल्म का समीक्षा लेखन

कला विकसनशील होती है तथा विकास के साथ जटिल होती जाती है। कला अपने प्रारभिक चरण मे सहज सम्प्रेषणीय होती है लेकिन प्रयोगशीलता के बढते जाने से कला का सम्प्रेषण पक्ष दुरूह होने लगता है। विकास की इस यात्रा मे कला का जनसस्कृति (मासकल्चर) से वर्गसस्कृति (क्रास कल्चर) मे रूपातरण होने लगता है। क्लास कल्चर की कृतियाँ अपने भावक से उसके ज्ञान के निश्चित स्तर या प्रशिक्षण की पूर्वापेक्षा रखती है। इस कला की समीक्षा उसके इसी मॉग को पूरा करती है। हालाकि कला के विकास के प्रत्येक सोपान पर समीक्षा उस कला की आईना होती है जो उस कला को सवरने का अवसर प्रदान करती है अर्थात् समीक्षा कला के विकास के लिए अत्यत आवश्यक है। समीक्षा किसी कला विशेष पर प्रकाश डालकर उसे आलोकित करती है। उस कृति के सृजन की तुलना मे उसकी समीक्षा उतनी ही सर्जनात्मक भी होती है। किन्तु दुर्भाग्य से फिल्म समीक्षको ने स्वस्थ्य फिल्म सस्कृति के निर्माण के लिए ईमानदारी से प्रयास नहीं किया। इसके लिए मेरी सम्मति मे फिल्म निर्माण से जुडे लोग उतने दोषी नहीं हैं जितने फिल्म लेखक एव समीक्षा। फिल्म समीक्षा के नाम पर आज जो कुछ हो रहा है वह अत्यत विडम्बनापूर्ण है। फिल्म समीक्षा उस फिल्म की कहानी का सार-सक्षेप एव अभिनेता-अभिनेत्रियो के सम्बन्धो के चुलबुले प्रसगो की पर्याय हो चुकी है। अधिकाश फिल्म समीक्षक फिल्म लेखन को अपनी रचनाधर्मिता का सह उत्पाद मानते है।[38] फिल्म पर लेखन आसान माना जा रहा है, फिल्म की कहानी ही फिल्म की समीक्षा बन गई है। हर औसत व्यक्ति फिल्म देखता है, इसलिए वह समझता है कि फिल्म पर भी कुछ-न-कुछ तो लिख ही लेगा। इसलिए उसके लेखन को अभी तक सबसे आसान लेखन माना जा रहा है। समीक्षको की यह नई पीढी 'विशेषज्ञता' के आतक से इस कदर आतकित है कि उसके लिए फिल्म की कहानी ही फिल्म की समीक्षा बन गई है। उसके पास न तो समाजशास्त्र का ज्ञान है, न कला की अन्य विधाओ की समझ और न ही इतिहास और सास्कृतिक बोध ही है। इसलिए सिनेमा का लेखन केवल सिनेमा के लिए लेखन बनकर रह गया है। इस लेखन मे ऐसा कोई प्रयास नहीं दिखाई पडता जो दर्शको मे सिनेमा की सही समझ विकसित कर सके, एक स्वस्थ सिनेमाई सस्कृति का विकास कर सके और सिनेमा जगत् पर एक अप्रत्यक्ष

---

38 सिनेमा की सवेदना, डॉ विजय अग्रवाल, 104

बौद्धिक दबाव डालकर उसकी दिशा को एक सकारात्मक मोड दे सके।[39] सिनेमा की समीक्षात्मक पहल मे पत्रकारिता का दृष्टिकोण भी बहुत रचनात्मक नही कहा जा सकता। फिल्म से सम्बन्धित पत्रिकाएँ फिल्म के अन्तर्वस्तु की समीक्षा के बजाय सिने जगत् की भावात्मक हलचलो को मिर्च मसाले के साथ प्रस्तुत करती है। लोगो की जनरुचि बिगाडने मे इन पत्रिकाओ की अहम् भूमिका है। पत्रकारिता जगत मे गभीर पैठ रखने वाला समाचार पत्र भी पृष्ठ के अधिकाश भाग को कामोद्दीपन करने वाले अर्द्धनग्न तस्वीरो को छापने मे अपने कर्त्तव्यो की इतिश्री समझते हैं और अफवाहो को ही फिल्मी पत्रकारिता के कच्चे माल के रूप मे इस्तेमाल करते है। उसका एक अन्य पक्ष यह भी है कि अच्छी फिल्म पत्रकारिता का विकास अच्छी फिल्मो से जुडा है। जब अच्छी फिल्मे ही नहीं है तो अच्छी फिल्म पत्रकारिता कैसे जन्म लेगी।[40] किसी भी भाषा मे किसी विषय से जुडी पत्रकारिता या समीक्षात्मक लेखन तभी आगे आ सकता है, जब साहित्य आर भाषा से जुडे लोग उसमे दिलचस्पी दिखाए तथा उस विषय के तकनीक पक्ष और तत्र से निकट सम्बन्ध बनाने का माहौल हो। हिन्दी मे इन बातो की कमी रही है।[41] हिन्दी मे अन्य भारतीय भाषाओ की अपेक्षा सर्वाधिक फिल्मे बनती है। किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दी फिल्मे मूल हिन्दी भाषी क्षेत्र से दूर तथा प्राय कामचलाऊ और गैर हिन्दी भाषी लोगो द्वारा ही बनाई जाती रही है। ऐसे फिल्मकारो को हिन्दी भाषी क्षेत्र की परिवेश की अनुभूति कम रही है। इस कारण भी मराठी, बगाली और अन्य भारतीय भाषाओ की फिल्मो की तरह हिन्दी फिल्मे उतनी उत्कृष्ट नहीं हैं। इस दूरी के कारण हिन्दी भाषी क्षेत्र के लेखको से फिल्म सस्कृति का सम्बन्ध भी कम रहा है। दूसरी बात यह हैं कि एक लम्बे समय तक हिन्दी साहित्यकार फिल्म को दूसरे दर्जे की विधा के रूप मे देखते रहे। फिल्म से उनका सम्बन्ध रहा भी तो व्यावसायिक किस्म का।[42] व्यावसायिकता से गभीर उत्तरदायित्वो की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके लिए पहल साहित्य कर्मियो की तरफ से ही करनी होगी, आशकाओ और पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर। यदि फिल्म पत्रकारिता के इस तर्क को यदि मान भी लिया जाए कि अच्छी फिल्मे नहीं बन रही है इसलिए अच्छी समीक्षा कैसे हो। तो इस विषय मे पत्र-पत्रिकाए देश मे ही क्यो विदेश की अच्छी फिल्मो पर सार्थक चर्चा कर सकती हैं। मगर सम्पादको की दिलचस्पी नहीं है। तर्क दिया जाता है कि यूरोपीय या विश्व सिनेमा की जानकारी से

---

39 सिनेमा की सवेदना, डॉ विजय अग्रवाल, 107

40 नया सिनेमा, विनोद भारद्वाज, पृष्ठ 19

41 नया सिनेमा, विनोद भारद्वाज, पृष्ठ 20

42 नया सिनेमा, विनोद भारद्वाज पृष्ठ 20

क्या लाभ है? या फिर उन फिल्म पर विस्तार से क्यो लिखा जाए जिन्हे लोग देख ही नहीं पाते। ऊपर से ये तर्क बहुत आकर्षक नजर आते हैं। मगर इस बात पर ध्यान नही दिया जाता कि बेहतर सिनेमा के प्रति जनमानस बनाने के लिए इस तरह की सामग्री की कितनी उपयोगिता है[43] और साथ ही इस सत्य को भी झुठला दिया जाता है कि फिल्म के दर्शको से ज्यादा इसको समीक्षाओ और खबरो के पाठक हैं। अच्छी समीक्षा उस कृति से ज्यादे जरूरी है। जिस तरह से अच्छी किताब की विस्तृत और विश्लेषणात्मक समीक्षा किताब के उपलब्ध न होते हुए भी किताब मे उठाए गये सवालो और बातो से हमारा सार्थक परिचय कराती है, उसी तरह से किसी क्लासिक फिल्म की विस्तृत समीक्षा फिल्म तकनीक से लेकर फिल्म से जुडी कल्पनाशक्ति के अद्‌भुत विकास और सम्भावनाओ की हमे गहरी जानकारी दे सकती है। मूल की महिमा तो है ही मगर उस तक सीधे पहुँचना भी जरूरी नहीं है।[44]

फिल्म जगत् का अर्थशास्त्र 'लागत' ओर 'लाभ' का अर्थशास्त्र है। एक निर्माता के लिए फिल्म एक वस्तु है, जिसके उत्पादन मे वह निवेश करता है। इस वस्तु के विक्रय का एक महत्वपूर्ण आधार होता है उसका विज्ञापन। इस विज्ञापन के कई तरीके हैं, मगलन, पोस्टर, होर्डिग, गीत आदि। दुर्भाग्यवश फिल्म समीक्षाए भी इसी श्रेणी मे आती जा रही है। फिल्मकारो के अपने-अपने निजी जनसम्पर्क अधिकारी होते हैं। ये जनसम्पर्क अधिकारी सिनेकारो के निजी जीवन के प्रसगो को भी कितना रग देना है उसमे बहुत माहिर होते हैं। ये बडी चतुराई के साथ अपना काम करते हैं और बडी कुशलता से अपना मतलब साध लेते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि फिल्म समीक्षाए समीक्षाए न होकर सूचनाए बनती जा रही हैं। आज फिल्म की कहानी वता देना तथा अत मे कुछ पक्तियो मे निर्देशन, अभिनेता, अभिनेत्री, सगीतकार और छायाकार के बारे मे लिख देना ही समीक्षा कहलाने लगी है।

फिल्म समीक्षा का गिरता स्तर लेखको की श्रेष्ठ कृतियो के फिल्माकन मे बहुत बडा अवरोध है। समीक्षा का यह गोरखधन्धा छिछला वातावरण वनाकर श्रेष्ठ कृतियो के निर्माण को हतोत्साहित करता है। कारण यह है कि श्रेष्ठ कृतियाँ जितनी ही सास्कृतिक होती हैं ये उतनी ही अपसास्कृतिक होती हैं। श्रेष्ठ रचना सवेदनात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ रूप और कथ्य, दोनो मे प्रयोगशील होती हैं और विम्बात्मक व प्रतीकात्मक भाषा का निर्माण करती हैं। इन कृतियो पर बनी फिल्मे भी इनके

43 नया सिनेमा, विनोद भारद्वाज, पृष्ठ 20

44 नया सिनेमा, विनोद भारद्वाज पृष्ठ 21

समानान्तर अपनी सर्जनात्मक भाषा की रचना करती हैं। यदि फिल्मकार इस कला से चूक जाता है तब साहित्यकार यह आरोप लगाते हैं कि उनकी कृति के साथ फिल्माकन मे अन्याय हुआ है। फिल्म की सर्जनात्मक भाषा के निर्माण मे समीक्षको की भी अहम् भूमिका है। मुक्तिबोध की रचना 'खडहर' पर आधारित 'सतह से उठता हुआ आदमी' तथा 'एक डाक्टर की मौत' जैसी फिल्मो की सम्प्रेषणीयता तो तब तक पूर्ण नहीं हो पाती, जब तक कि समीक्षक नाम का मध्यस्थ उसकी व्याख्या न करे।[45] शायद ही कोई ऐसी फिल्म हो जिसमे प्रतीक एव विम्बयोजना का उपयोग न हुआ हो। दृश्य और बिम्बो के अर्थ खोलते-चले जाने पर उबाऊ फिल्म भी आनन्दमयी हो जाती है। यदि समीक्षक प्रतीको के अर्थ खोल दे तो फिल्म रुचिकर लग सकती है। इससे अच्छी फिल्मो के निर्माण मे प्रोत्साहन मिलेगा। फिल्मे अच्छी तरह सामाजिक भूमिका का निर्वाह भी कर सकेगी।[46]

आवश्यकता इस बात की है कि फिल्म पत्रकारिता के नाम पर उग आए कुकुरमुत्तो को स्वस्थ फिल्म पत्रकारिता से स्थानापन्न किया जाए और इसे सास्कृतिक कर्म के रूप मे लिया जाए।

कविता की संगीतमय अभिव्यक्ति - गीत

प्रसगात गीतो की चर्चा आवश्यक है। गीत क्रिएशन का पर्याय है और साहित्य की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। सिनेमा के उद्‌भवकाल मे समाज मे थिएटरो की वही प्रतिष्ठा थी जैसी आज फिल्म की है। वस्तुत· फिल्म का निर्माण प्रारम्भ मे नाटको के फिल्माकन से ही शुरू हुआ है। नाटक के लिए सगीत आवश्यक नहीं है। इसी कारण मूक फिल्मे भी अपने जमाने मे खूब चलती थीं। टाकीज की शुरुआत से सगीत का प्रयोग शुरू हुआ और सयोग से सगीत एव गीत दोनो की जोडी सिनेमा मे साथ-साथ ही चलती रही। धीरे-धीरे यह सिनेमा के लिए अपरिहार्य हो गया। सिनेमा को लोगो तक पहुँचने मे सगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। गीत फिल्मी सगीत का केन्द्रीय तत्व और कविता की सगीतमय अभिव्यक्ति है। कई बार किसी फिल्म के गीत ही उसकी सफलता के आधार सिद्ध होते हैं क्योकि सिनेमा के ऐतिहासिक अनुभव से स्पष्ट है कि कई फिल्मो की अपार सफलता का कारण उसके गीत रहे हैं। फिल्म निर्मित होने के पूर्व ही बाजार मे रिलीज हुए उसके गीत प्राय इतने लोकप्रिय हुए कि फिल्म के दर्शको की सख्या अत्यधिक बढ गई और उसकी तूती बोलने लगी।

---

45 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 14

46 सिनेमा की सवेदना डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 102

गीत, फिल्म को विस्मरण से बचाते हैं। आज बहुत-सी ऐसी फिल्मे है जो समाज मे अपने गीतो के कारण ही जीवित हैं, क्योकि ऐसी फिल्मे मन ओर मस्तिष्क मे अपना घर बना लेती हैं। हिन्दी को अखिल भारतीय स्वरूप एव गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रा मे हिन्दी की स्वीकृति दिलाने मे भारतीय फिल्म एव उनकी गीतो की अहम् भूमिका रही है। फिल्म के गीतो ने ही इस जगत् के लिए साहित्यकारो की उपस्थिति को आवश्यक बनाया।

भारतीय सिनेमा मे साहित्यिक स्तर के सृजनशील अभिव्यक्तियो की समृद्धिशाली परम्परा रही है। शैलेन्द्र, हसरत जयपुरी, मजरूह सुल्तानपुरी, फेज अहमद फैज, कैफी आजमी, इन्दीवर, गोपालदास नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, योगेश, समीर, भरत व्यास, बालकवि वैरागी, साहिर, नरेन्द्र शर्मा, प्रदीप और गुलजार आदि गीतकारो ने अपने शब्दो के माध्यम से साहित्य को जनता की जुबान पर उतारा है। इनमे साहिर लुधियानवी और कैफी आजमी जैसे प्रगतिशील शायर थे तो शैलेन्द्र, प्रदीप, नरेन्द्र शर्मा जैसे हिन्दी के गीतकार भी थे। इनकी चेतना मे प्रगतिशील लेखक सघ और छायावादी साहित्य दोनो का प्रभाव था। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ एक ओर फिल्मी गीतो मे सामाजिक चेतना के भाव व्यक्त हुए वहीं दूसरी ओर प्रेम और सौन्दर्य के उच्च मानदण्ड भी स्थापित हुए। ये मापदण्ड भाव और भाषा दोनो स्तरो पर किसी भी साहित्यिक गीत अथवा कविता से निम्र कोटि के नहीं हैं। बल्कि शायर और गीतकारो के मिले-जुले रूप का प्रभाव यह हुआ कि हिन्दी और उर्दू के मिश्रण से गीतो की एक नई भाषा ने जन्म लिया और इसी कारण ये गीत आम लोगो के बीच लोकप्रिय हो सके।[47]

चन्दन सा बदन, चचल चितवन, जीवन से भरी ये दो आँखे मजबूर करे जीने के लिए, जिन्दगी का सफर है ये कैसा सफर, ओहरे ताल मिले नदी के जल मे (इन्दीवर) , तू चन्दा मैं चाँदनी, तू तरुवर मै छाया (बालकवि बैरागी), सत्यम् शिवम् सुन्दरम् (नरेन्द्र शर्मा), चल अकेला चल, तेरा मेला पीछे छूटा रे (प्रदीप), छुपालो दिल मे प्यार मेरा जैसे मदिर मे लौ दिये की (मजरुह), हमने देखी है इन आँखो मे महकती खुशबू (गुलजार), तू आ गए तो नीर आ गया है जैसे चिरागो से लौ जा रही थी (गुलजार), दिल के गिरह खोल दो (शैलेन्द्र), तू गगन की चन्द्रमा मैं धरा की धूल हूँ (भरतव्यास) नीले गगन के तले, खिलते हैं गुल यहाँ खिल के बिखरने को (नीरज) आदि गीतो की लोकप्रियता ने इस बात को झुठला दिया कि श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाए जनता पसन्द नहीं करती है और यह उसके लिए दुर्बोध होती हैं। साहित्य की गीत विधा यदि कहीं सुरक्षित है तो वह फिल्म मे। फिल्म मे श्रेष्ठ गीतो का

---

47 आजकल, दिसम्बर 1990 पृष्ठ 27

अपरिमित ससार है। यहाँ उन सभी का उल्लेख आवश्यक नहीं है। साहित्य के सदर्भ मे विवेचन ही अभिप्रेत हैं।

फिल्म मे गीत एव सगीत का चोली दामन का साथ है। फिल्म अपनी लम्बी विकास यात्रा मे गीत एव सगीत के सतुलित सामजस्य को पोषित करता आया है। इस परम्परा मे यह प्रयास रहा है कि सगीत की स्वर ध्वनि मे गीत के शब्द धूमिल न होने पाए। लेकिन बदलते वक्त ने परिस्थितियाँ बदल दी हैं। आज सगीत के शोर मे गीत का शब्द खो गया है, जो बचे शब्द हैं भी वे अपसस्कृति के वाहक और भोडे स्वरूप के मात्र। सगीत की क्या स्थिति है इस बारे मे बहुत नहीं कहा जा सकता किन्तु इस बात से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सगीत के आचार्य-गुरु अपने शिष्यो को फिल्मी सगीत को सर्वथा निषिद्ध करते हैं। सगीत के लिए यह शुभ लक्षण हो सकता है कि आजकल धुन का महत्व बढ गया है। पहले गीत के बाद सगीत तैयार किया जाता था। आजकल ज्यादातर धुने पहले तैयार की जाती हैं और फिर गीत लिखे जाते हैं। मगर तैयार धुनो पर गीत लिखे तो उसमे कविता नहीं रह जाती। पहले कहानी की सीमा थी, फिर प्रसगो की सीमा हुई ओर अब धुनो की सीमा हुई। अब हर दृश्य बदल गया है। अब सगीत कम्पनिया और सगीतकारो की तूती बोलती है और अफसोस की बात है कि वे गीतो का मूल्य नहीं समझते। गीतकारो को उनका श्रेय नहीं मिलता, जब कि उनका योगदान बराबर और कभी-कभी अधिक ही होता है।[48] सगीत की इस महत्ता के बावजूद सगीत का व्यापार पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि गाने मे मोती की सी चमक पैदा करने की फुरसत नहीं मिल पाती। सगीतकारो को जिस सगीतकार की कोई फिल्म हिट हो जाती है, कोई गाना चल जाता है, उसके पीछे सभी दौडने लगते हैं। उसके पास इतना काम हो जाता है कि जितना वह कर नहीं सकता। प्रोड्यूसर उसकी सफलता को जल्दी से जल्दी कैश कर लेने के लिए उतावले रहते हैं। शाम को धुन फाइनल हुई, सुबह रिकार्डिंग। कई बार तो रिकार्डिंग और कैसेट कम्पनियो को गाने सिर्फ धुन सुनाकर बेच दिए जाते है। उस वक्त तक तो उसके बोल भी लिखे नहीं गए होते। जब गाना पहले ही बिक चुका हो तो उसके बोलो पर मेहनत करने-कराने की जरूरत किसी को क्यो महसूस होगी? 'चदन सा बदन', चचल चितवन, जैसे गीत इस जल्दबाजी मे भला कैसे बनेंगे।[49] फिल्म की विकास यात्रा के इस मोड पर व्यावसायिकता इस कदर हाबी हो गई कि खूबसूरत कविताओ व गजलो को गीतो मे ढालकर जिन गीतकारो ने हिन्दी सिनेमा को प्रचलित हल्के-फुल्के व घटिया किस्म के गीतो से उबारा है और फिल्मी

---

48 इन्दीवर (मुझे नहीं लगता कि मैने खुद को गिराया है) अमृत प्रभात 23 अगस्त 1996

49 कल्याण जी आनन्द जी (सन्नाटे में सवाद-साहित्य वार्षिकी इण्डिया टुडे 1993-94) पृष्ठ 192

गीतो मे साहित्य को महत्व देने के लिए जिनकी प्रशसा की जाती रही है उन्ही गीतकारो पर अब अश्लील होने का आरोप लग रहा है, और वे बेतुके-ताल के द्विअर्थी व अश्लील गानो की रचना कर रहे हैं। इस परिस्थिति से विवश होकर कुछ श्रेष्ठ गीतकारो ने गीत लिखना बन्द कर दिया और इस कला से कलम को निकाल दिए जाने पर चिता व्यक्त की[50] तो कुछ वही श्रेष्ठगीतकार चोली, कबूतर और खडाला पर उतर आए। इसी स्थिति से चितित होकर ही फिल्मी गाने के भी सेसर किए जाने की बात उठाई गयी।

दोष केवल गीताकारो का ही नहीं है। सिचुएशन के अनुसार गीत लिख दिया जाता है और रिकार्डिंग के समय गायको को भी यह पता नहीं होता है कि उसका गाया गाना किस तरह पिक्चराइज किया जाएगा। सीधे-साधे शब्दो वाले गाने को भी इस तरह फिल्माया जा सकता है कि वह द्विअर्थी लगे।[51] दुर्भाग्यवश सभी कलाओ की विशेषकर सिनेमा की स्वतत्र अभिव्यक्ति व्यावसायिकता के पिजडे मे कैद हो गई है। फिल्म निर्माताओ का उद्देश्य अच्छी व शिक्षाप्रद फिल्मे बनाना न होकर ऐसी मसाला फिल्मे बनाना रह गया है, जिनसे अधिक-से-अधिक पैसा कमाया जा सके। पहले सिनेमा कहानी, गीत, सगीत आदि के लिए बाहरी कलाकारो और साहित्यकारो पर निर्भर था लेकिन आज सिनेमा ने अपनी अलग खिचडी पकानी शुरू कर दी। इसके अपने लेखक, गीतकार और सगीतकार हैं, जिन्हे साहित्य और सास्कृतिक विरासत की कोई जानकारी नहीं है। इनमे से अधिकतर लोग पैसा व लोकप्रियता की चाह मे सिनेमा से जुडे।[52] फिर इनसे सास्कृतिक उत्तरदायित्व की कितनी अपेक्षा की जा सकती है ? यही कारण है कि ये लोग एक बार चमकते हैं तो फिर तुरन्त विलोप भी हो जाते हैं और पता ही नहीं लगता कि कहाँ चले गए। विचार एव सवेदना के अभाव मे ये लेखक शब्द की बाजीगरी करने लगते हैं।

एक जमाना था जब सगीतकार आत्मा एव परमात्मा को सामने रखकर सगीत पैदा करता था। अब लोग टिकट की खिडकी को ध्यान मे रखकर सगीत की रचना करते हैं।[53] फिल्मी गानो मे जो

---

50 मजरुह सुल्तानपुरी (सन्नाटे में सवाद - इण्डिया टुडे साहित्य वार्षिकी) वर्ष 1998-99 पृष्ठ 190

51 अल्का याज्ञिक (सन्नाटे में सवाद - इण्डिया टुडे साहित्य वार्षिकी), वर्ष 1998-99, पृष्ठ 200

52 गुलजार, मनोरमा जनवरी 96, पृष्ठ 96

53 ममता कालिया, 'भारतीय सिनेमा उपलब्धिया और सभावनाए' विषय पर सगोष्ठी, आकाशवाणी से 24-8-96 को प्रसारित

मिठास हुआ करती थी वह खत्म हो गई। एक आप ाप। इसम से समाप्त हो गया। ऐसा लगता है कि शोर के विरुद्ध जो नारे हमने गढे हैं वे इस फिल्मी शोर के पक्ष मे चला जाता है और इस तरह से हम एक शोर ही पैदा करते हैं।[54]

कविता की विकास यात्रा मे छन्दबद्ध और छन्दमुक्त दो धाराए निर्मित हुईं जिसमे छन्दबद्ध धारा का अधिकाश फिल्मीगीतो मे सरक्षित रहा तथा छन्दमुक्त धारा शुद्ध साहित्य के कोटे मे चला गया। हालाकि आनन्द बक्शी जैसे कुछ गीतकारो ने फिल्मो मे गद्यगीत के आयाम (अच्छा तो हम चलते हैं- फिल्म आन मिलो सजना) उद्घाटित किए। परिवर्तीकाल मे फिल्मी सगीत से कविता के शब्द की आभा धूमिल हुई, लय बना रहा तथा शुद्ध साहित्यिक कविता धारा से लय खो गया, शब्द शेष रह गया। इन दोनो अतियो ने साहित्य को लोक से दूर ही किया हे। लय और शब्द दोनो ही कविता की सजीवनी शक्तियाँ है। यदि फिल्मकार और साहित्यकार दोनो इसे ध्यान रखे तो निश्चित ही साहित्य के लोकविसर्जन के साथ फिल्मी गीतो की गरिमा वापस मिल सकती है।

भारतीय सिनेमा का सौन्दर्य शास्त्र और साहित्य

भारतीय सिनेमा ने शती मना ली। अब वह एक स्वतत्र इकाई के रूप मे विकसित हो चुका है। उसकी अपनी प्रविधि और विशेषता है तो साथ ही अपना शब्दकोष भी। इधर सिनेमा समीक्षा ने कुछ नये शब्दो की सृष्टि की है। उनकी चर्चा के बिना सिनेमा पर विचार अधूरा होगा। प्रेम-त्रिकोण, देह का भूगोल, भय, हिसा व सेक्स की त्रिवेणी,अत मे नायक-नायिकाओ का मिलन, ये सब सिनेमा के अपने पद हैं। वर्तमान स्थिति को देखते हुए कह सकते हैं कि अब सिनेमा को किसी सधे साहित्यिक हाथो की आवश्यकता नहीं है। सिनेमाई साहित्य के कुछ सरल सूत्र हैं। एक लब्ध प्रतिष्ठित या प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार को भी सिनेमाई साहित्य के लिए इन्हीं सूत्रो का प्रयोग करना पडता है। यही कारण है कि प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को फिल्म की शर्तें स्वीकार न हुईं फलत उन्हे वापस लौटना पडा।

प्रेम का सारभौमिक व सारभूत तत्व सिनेमा मे अपने वैविध्य के साथ बिखरता है। भारतीय सिनेमा का प्रेम त्रिकोण प्रख्यात है। कथा मे कुछ भी गूढ नहीं है। भारत के भावुक भावक (दर्शक) को ध्यान मे रखकर लिखी गई कथा बिल्कुल सपाट व स्पष्ट होती है। दर्शक को यह पता रहता है कि इसके आगे क्या होने वाला है। बँधे-बँधाए प्लाट पर बनी कुछ फिल्मे सरपट दौडती हैं, कुछ चलती हैं तो कुछ पिट भी जाती हैं। इसका कारण उनमे प्रयुक्त सौन्दर्य साधनो की भिन्नता है। इन सौन्दर्य साधनो

---

54 श्री अजामिल, 'भारतीय सिनेमा उपलब्धियाँ और सभावनाए' सगोष्ठी, आकाशवाणी से 24/8/96 को प्रसारित

मे प्रमुख है- देह का भूगोल शास्त्र, हिसा, भय और दर्शक की भावुकता को तृप्त करने वाले प्लेटोनिक प्यार का सिनेमाई अदाज और भ्रष्टाचार तथा उसके निवारण के करतब दिखाने वाले नायक के फैटम सरीखे आवश्यक कारनामे। 'राम तेरी गगा मैली हो' या 'चोली के पीछे' छिपे रहस्य की जिज्ञासा ये सभी दर्शको के लिए साधारणीकरण की दृष्टि से सर्वोत्तम एव उपयुक्त ठहरते है। आज के युग मे जबकि सिनेमा व्यावसायिकता से आक्रान्त है, फलत पैसा लगाने वाला निर्देशक बनने की दौड मे हो तो यह स्वाभाविक ही है कि वह अपने कुशल निर्देशन से दर्शको को स्वस्थ मनोरजन देने के बजाय बिजली की चकाचौंध से नायिका की कचनकाया को चमकाए।

दर्शक की चेतना को सुसुप्त करने की क्षमता जितनी ही किसी फिल्म मे होगी, वह फिल्म उतनी ही सफल होगी। यह फिल्म की सफलता का व्यावमायिक मापदण्ड है। सीमा विश्वास की अभिनीत सचाई पर विश्वास कर दर्शको के जितने ऑसू और आक्रोश फफके है, शायद फूलन देवी के सचाई से उतने न हुए हो। मिस्टर इण्डिया और प्रतिघात ने जीवन के समर मे हार मानकर भ्रष्टाचार को अपना लेने वाले दर्शको के मन मे भी अपने प्रति सहानुभूति उत्पन्न की है। यह दर्शको की अपनी सीमाएँ हैं। फिल्मो की हिसा ने अपराध की नई विधाएँ विकसित की है, यह भी किसी से छिपा नहीं है।

तकनीकी विकास ने सिनेमा को सम्पन्न किया है तो चुनौती भी खडी की है। फोटोग्राफ इलेक्ट्रानिक्स एव कम्प्यूटर ने सिनेमा मे चार चाँद लगाए हैं तो यह आकस्मिक ही है कि सेल्यूलर व इण्टरनेट के इस युग मे कबूतर भी प्रासगिक हो गया। सिनेमा मे प्रयोग की अनत सभावनाएँ हैं। सिनेमाई सगीत ने छत पीटकर भी अपना सरगम निकाला है। जिस प्रकार शास्त्रीय सगीत मे स्वर विधा, शब्द विधा (गीत या कविता) से मुक्त होकर भावोद्रेक करती है उसी प्रकार भाव विहीन सिनेमाई सगीत ने भी उत्कर्ष स्थापित किया है। ऐसे गीत रचनाओ की लोकप्रियता को देखते हुए इसे औद्योगिक समाज का लोकगीत कहना अप्रासगिक न होगा। आवश्यकता जनता के मानस को समझने की है।

सिनेमा का साहित्य से अटूट रिश्ता है। सिनेमा मे कथा है तो निश्चित ही वह साहित्य होगा। यह अलग बात है कि उसकी कथा को हम साहित्य माने या न माने। इधर सिनेमा ने अपने साहित्यकार, गीतकार, सवाद लेखक, पटकथा लेखक आदि विकसित कर लिए हैं। सिनेमा की कथा सिनेकार नायक और नायिका को ध्यान मे रखकर लिखी जाने लगी है। इसे सिनेमा साहित्य का उत्कर्ष माना जाये या नहीं यह शोध का विषय है। ऐसा लगता है कि व्यावसायिक सिनेमा व साहित्य मे ठन गई हो। हालाकि दोनो की अपनी सीमाएँ हैं। सिनेमा के सौन्दर्यबोध की अपेक्षा साहित्य का सौन्दर्यबोध अधिक विकसित और व्यापक है। सिनेमा मे एक वर्ग ऐसा है जिसने साहित्य से सिनेमा को भी समृद्ध करने का प्रयत्न

किया है। इसने व्यावसायिक फिल्मो से अलग हटकर अपनी समानान्तर धारा विकसित करने की कोशिश की है। ऐसी फिल्म कला फिल्म या समानान्तर सिनेमा के नाम से प्रचलित है। समानान्तर सिनेमा के भावबोध अधिक व्यापक तथा सान्दर्यबाध अत्यत मानवीय और यथार्थ है। मुख्यधारा से कटकर समानान्तर फिल्मो ने कलात्मक ऊँचाई छूना चाहा है। किन्तु अभी भी वह पुरस्कार एव व्यावसायिक सघर्ष से उबरकर सामान्य जन तक नही पहुँच पा रही हे। फिर भी साहित्य के लिए व्यापक अक्षर विहीन समाज तक पहुँचने के लिए सिनेमा के माध्यम की सभावना से एक शुभ लक्षण दिखे हैं। आवश्यकता है साहित्य सिनेमा से रूठना छोडकर उसकी सीमाओ को ध्यान मे रखते हुए गुरुतर दायित्व वहन करने तथा सिनेमा वर्तमान सोन्दर्य प्रतिमानो एव व्यावसायिकता के पकिल वातावरण से बाहर आकर सार्थक भाव भूमि का दर्शन करे।

कैमरा और कलम की भाषा

साहित्य शब्द की विधा है। स्वर के साथ जुडकर यह आकाशवाणी और मच की विधा हो जाती है। कला की अन्य विधाएँ साहित्य की शव्द विधा से मिलकर अन्य माध्यमो के विधा की रचना करती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि साहित्य का शब्द अपने सम्प्रेषण के लिए अन्य विधाओ पर निर्भर है। साहित्य की अनिवार्यता भाषा है न कि माक्रोफोन या कैमरा। यह अपने आप मे पूर्ण आत्मनिर्भर विधा है, इसे पाठक चाहिए, दर्शक या श्रोता नहीं। अन्य माध्यम साहित्य को सीमित पाठक की दुनियाँ से बाहर निकाल कर इसे असीमित जनसमूहो के बीच पहुँचाते हैं। उस रचना को क्लास से मॉस (Class to mass) के बीच लाते हैं। अन्य माध्यमो की यह भूमिका अतिरिक्त और महत्वपूर्ण हो सकती है। सिनेमा को ध्यान मे रखकर लिखा गया साहित्य पूरी तरह से साहित्य नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि किसी फिल्मकार को किसी साहित्य से उस पर फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली हो। इस रूप मे वह उस कृति का अन्य माध्यम मे रूपातरण करता है। यह रूपातरण सर्जनात्मक हो सकता है। इसलिए उसे उस रचना का पुनर्सृजन भी कहा जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि रचना के पढने और देखने का अनुभव एक हो। सिनेमा के इतिहास मे ऐसे बहुत कम अवसर रहे हैं जब रचना के देखने और पढने का अनुभव एक रहा हो। एसा तब ही संभव है जब या तो रचनाकार ही फिल्मकार हो अथवा फिल्मकार की साहित्य सम्बन्धी समझ और साहित्यिक आलोचक की समझ एक हो। यह पार्थक्य जितना ही बडा होगा उस रचना पर फिल्माकन उस रचना से उतना ही दूर होगा।

कोई भी कला माध्यम अपने विकास के उत्कर्ष पर स्वतत्र इयत्ता ग्रहण करते हुए पूर्ण आत्मनिर्भर हो जाता है। न भी हो तो उस माध्यम का यही प्रयास रहता है कि वह एक स्वायत्तपूर्ण सम्पूर्ण इकाई का मान दे। इस अवस्था में फिल्म कविता की ऊँचाई तक पहुँचकर कैमरा द्वारा लिखा

गया साहित्य हो जाता है। जब शेक्सपियर या रवीन्द्र नाथ टैगार को कृतिया पर अच्छी फिल्मे बनीं तो इसे एक सुनिश्चित प्रमेय मे बदला गया कि एक अच्छी फिल्म के लिए एक अच्छी कहानी का होना जरूरी है। बिना कहानी की फिल्म तब एक असम्भावना थी। इसी मानसिकता का विस्तार इस रूप मे हुआ कि सिनेमा साहित्य से आगे (बियान्ड लिट्रेचर) कैसे जाए। 50 के दशक से ऐसी फिल्मे देखने को मिलीं जहा फिल्म तो थी, किन्तु कोई कहानी रूप नहीं। इसे सिनेमा के तलाश के मुहावरे मे देखा गया कि सिनेमा अपनी भाषा और सवेदना को पहचान कर उसमे लिखित साहित्य से अलग, अपने आप को व्यक्त करे- सेल्यूलाइड पर कैमरा कविता लिखे। शब्दो मे अनूदित न होकर यदि विम्ब चाक्षुष होता जाए, तो इस भाषा मे कैमरा कविता लिख सकता है, यही तलाश है सिनेमा की और फिल्मकार की, कि वह कविता की ऊचाई का कैमरा ढूँढे या निर्माण करे।[55] इस सोपान पर फिल्म कैमरे की भाषा गढने लगती है और फिल्म मास मीडिया से क्लास मीडिया म रूपातरित हो जाती है। प्रयोगशीलता के इस उत्कर्ष पर फिल्म कला, कला के लिए का प्रयोजन सिद्ध करती है। इतने के बावजूद फिल्म अपनी मूल सरचना एव स्वभाव मे मास मीडिया है। वह साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकती। साहित्य उसके लिए 'मेरुदण्ड' की तरह है, जिस पर उसका ढांचा खडा रहता है। यहॉ यह बात अवश्य है कि सिनेमा किसे अपना साहित्य समझता है, किसे नहीं[56] आर साहित्य के किस रूप का प्रयोग करता है। स्थिति चाहे जो भी हो लेकिन इस बात से इकार नहीं किया जा सकता कि फिल्मे अपनी सही सामाजिक भूमिका तभी निभा सकेगी, जब वे साहित्य का आधार ओर साहित्य के सस्कार लेकर चले।[57] कथानक की वैविध्यता उसे साहित्य मे ही मिल सकेगी। फिल्म मे कथा भिन्न कोणो से, टुकडो मे जोडे गए सवाद-सगीत युक्त और मूक दृश्यो के मिले-जुले प्रोजेक्सन से स्पष्ट की जाती है। यदि सवाद न भी रहे, जैसा मूक सिनेमा मे होता था, तब भी मात्र दृश्यो के ही प्रवन्ध से फिल्म एक निश्चित सवाद या घटना की सृष्टि कर दर्शको की भावनाओ को ऐच्छिक तरीके से आन्दोलित कर सकती है। फिल्मो की यह चित्रात्मकता उसके मूल साहित्य को एक अलग किस्म का जटिल व्याकरण प्रदान करती है, साथ ही उसकी सीमाए भी बाधती है।[58] फिल्म की सतह की भाषा भोतिकवादी प्रतिक्रियाओ की भाषा है

55 'कविता की ऊँचाई का कैमरा'-गौतम चटर्जी (उत्तर प्रदेश-साहित्य वार्षिकी - 1997 के एक लख से)

56 सिनेमा की सवदेना, डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 37

57 सिनेमा की सवदेना, डॉ विजय अग्रवाल, पृष्ठ 39

58 'सिनेमा कुछ नोट्स'-सजय सहाय, आजकल जनवरी 1996 पृष्ठ 8

लेकिन इसके तल मे प्रवाहित होने वाली भाषा सवेदना की भाषा है।[59] केवल सवाद ही उसकी भाषा नहीं है बल्कि दृश्य, ध्वनि, रग, शब्द आदि सभी मिलकर उसकी भाषा की रचना करते हैं।

साहित्य की भाषा के प्रमुख तत्व हैं- बिम्ब, आद्यबिम्ब, प्रतीक, रूपक, अन्योपदेश, स्वप्न, फैन्टेसी, पैरबल, ह्यूमर और किराकर। इसी प्रकार फिल्म की भाषा के प्रमुख तत्व है- प्रतीक, विम्ब, कट्स, दृश्य, स्वप्न, रूपक-कथा, उपमा आदि। इन तत्वो की समानता लगभग दोनो माध्यमो मे है। अन्तर केवल विधा का है। साहित्य शब्द विधा है तो फिल्म दृश्य विधा। साहित्य अपने शुद्धतम रूप मे काव्य है, पहले काव्य ही साहित्य का पर्याय था। बिम्ब ही कविता की भाषा गढते हैं। इसी प्रकार कलाओ की सश्लिष्ट विधा है- फिल्म और बिम्बा फिल्म की भाषा को गढते हैं। अस्तु, बिम्ब साहित्य एव फिल्म दोनो के लिए महत्वपूर्ण तत्व है। फिल्म का प्रमुख तत्व कथ्य है। साहित्यिक कृतियो पर फिल्म बनाने वाले कुशल निर्देशको ने विषय वस्तु को गहराई और सम्पूर्णता से व्यक्त करने के लिए उपमा, रूपक, प्रतीक, रूपक-कथा, सकेत, सादृश्य आदि का सौन्दर्यमयी प्रयोग किया है जिससे विषय वस्तु की अर्थवत्ता कई गुना बढ गई है। इन निर्देशको ने ऐसी कहानियो को कच्चे माल की तरह इस्तेमाल न करके, उन्हे कलात्मक और साहित्यिक आयाम दिया।[60] फिल्मकारो के समक्ष अभिव्यक्ति की जब भी चुनौती खडी हुई या कुछ प्रसगो के दृश्य जब अश्लीलता की सीमा लाघने लगे उस समय प्रतीक, बिम्ब आदि तत्व ही उनकी अभिव्यक्ति के हथियार बने। इतना ही नहीं बल्कि फिल्मो ने ऐसे प्रतीको का प्रयोग करके 'नाट्यशास्त्र' के उन नियमो का भी पालन किया जिन्हे आचार्य भरतमुनि ने रगमच पर वर्णित माना था।[61] उपन्यास तथा फिल्म की समीपता बिम्ब निर्माण मे निहित है। कोई लेखक यदि लेखन-कला को इस स्तर पर ले आता है जिससे वह शब्दो के माध्यम से बिम्ब रचना करता है तो वह भाषा महत्वपूर्ण बन जाती है। इस प्रकार वह किसी वस्तु या घटना को मस्तिष्क के आतरिक पर्दे पर प्रक्षेपित करने मे सक्षम हो पाता है। फिल्म के साथ उसका यही सरोकार है। फिल्मकार के लिए गतिशील मूर्तबिम्ब विषयवस्तु के सम्प्रेषण का आधार होता है। फिल्मकार जैसे ही भाषिक रचना को छोडकर गतिशील बिम्बो का कलारूप स्वीकार करता है परिवर्तन अपरिहार्य हो जाते हैं। अत: यह निश्चित है कि उपन्यास का प्रयोजन और उसका रचनामूलक साध्य तथा फिल्म एक भिन्न सौन्दर्यशास्त्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिल्मकार किसी वास्तविक घटना मे सार्थकता की कुछ एक

---

59 सिनेमा की सवदेना, डॉ विजय अग्रवाल पृष्ठ 49

60 भारतीय नया सिनेमा सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 144

61 सिनेमा की सवदेना, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, पृष्ठ 37

आतरिक सरचना का प्रत्यक्षण करता है। वह इन चाक्षुप खण्डो या ध्वनिक खण्डो का चयन कर लेता है जो इस सार्थकता की अभिव्यक्ति करते हैं। फिर वह इन खण्डो का विन्यास एक ऐसी फिल्म सरचना मे करता है जो वास्तविक घटना की उसके द्वारा उसकी प्रत्यक्षित तात्विक गुणवत्ता को अभिव्यक्त करती है। इसलिए दर्शक किसी घटना के पर्दे पर प्रदर्शित किसी सुनश्चित बिम्ब से घटना की हुबहू पूर्णता को ग्रहण कर लेता है, भले ही वह एक क्रम मे जुडे हुए दृश्यखण्डो या ध्वनिखण्डो मात्र को देख रहा होता है। यह किसी फिल्म के आलेखन का रहस्य भी होता है।[62]

भारतीय कलाफिल्मो ने इन्हीं तत्वो के आधार पर फिल्म के क्लासिकी भाषा की रचना की है। गुरुदत्त ने बिम्ब और प्रतीको का प्रभावशाली प्रयोग किया है। सत्यजीत राय की सफलता का कारण यह था कि वे दृश्यो के विवरण मे बडी गहराई के साथ जाते थे और चुन-चुन कर विम्बो प्रतीको को रखते थे। विमल राय और गुरुदत्त को इस बात की बहुत अच्छी और गहरी समझ थी कि कौन से दृश्य को किस स्थान पर कितनी देर के लिए किस प्रकार प्रस्तुत करना है। यहाँ पर निर्देशक के लिए केवल साहित्यकार की सवेदना की ही जरूरत नहीं होती, बल्कि एक चित्रकार की समझ और छायाकार की आँखो की भी जरूरत होती है।[63] उपन्यासकार अर्नेस्ट हेमिग्वे ने कहानी लेखन के बारे मे जो एक बात कही थी वह फिल्मो के दृश्य सयोजन के बारे मे भी सही जान पडती है। हेमिग्वे का मानना था कि यदि आप कहानी मे एक ड्राइगरूम का वर्णन कर रहे हैं, और आपने उसकी दीवार पर एक लटकती हुई एक बन्दूक का जिक्र किया है, तो यह जरूरी है कि आप कहीं न कहीं उस बन्दूक को चलवाए भी। फिल्मो के लिए तो इस परफेक्सन की ओर भी जरूरत है, क्योकि साहित्य मे तो एक बार मे एक ही दृश्य का वर्णन होता है, जबकि फिल्म मे एक साथ आँखो को न जाने कितने, दृश्यो से जूझना पडता है। इसलिए वहाँ दृश्यो की भूमिका 'सजावट की पेन्टिग्स की भूमिका न होकर' एक प्रभावशाली सवाद की भूमिका होनी चाहिए।[64]

किसी भी कलाकृति के आस्वादन, समझने और उससे आनन्द लेने के लिए उसकी भाषा और उसके व्याकरण को जानना आवश्यक होता है। उस कलाकृति की समीक्षा मे व्यक्तिगत रुचि और प्रतिक्रियाएँ ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं होती हैं। इस रूप मे साहित्य एव फिल्म की अलग-अलग भाषा,

---

62 सिनेमा की सवदेना, सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 142 143

63 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 44

64 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल, पृष्ठ 44

मुहावरो एव व्याकरणो की पडताल आवश्यक है। इसी क आधार पर साहित्य एव फिल्म के अन्तर्सबन्धो का स्वरूप उद्घाटित हो सकेगा।

सिनेमा सभी ललित कलाओ का कोलाज[65] अथवा समिश्र विधा है। इसमे साहित्य, स्थापत्य, फोटोग्राफी, पेटिग आदि सभी कला-विधाएँ एकत्रित होकर अन्य सभी कलाओ की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक तरीके से सदेशो को सप्रेषित करती है। सिनेमा एक ऐसी कला है जो मानवीय अनुभवो को व्यक्त करने के लिए अपने अधिकार मे नितात नया तरीका अपनाती है।[66] कैमरे की भाषा साहित्य की भाषा से भिन्न होती है। कैमरे की भाषा का अधिकाश प्राविधिक स्थितियो पर निर्भर करता है। साहित्य की भाषा का आधार शब्द है जिसमे उदबोधनात्मक शक्ति होती है। शब्द पाठक को उसकी कल्पना की सीमा तक ले जा सकता है शब्द का आधार ध्वनि होता है जो यादृच्छिक रहती है। अर्थ से उसका सम्बन्ध अनुभव सम्पृक्त होता है। फिल्म की भाषा कैमरे के द्वारा चल चित्राकन, ध्वनियत्र तथा ध्वनियो के अकन तथा उनका पुनर्मिश्रण और विभिन्न टुकडो के सकलन की तकनीक पर आधारित होती है। इस प्रकार इस नव्यतम कला रूप मे मानवीय अनुभवो को व्यक्त करने के लिए यात्रिक साधनो का उपयोग किया जाता है जो अनुभवो को साकार करने के माध्यम बनते हैं। फिल्म की भाषा तथा लिखित शब्द की भाषा का मूल अतर उनके अर्मूत और मूर्त रूप का भी है। लिखित शब्द की भाषा स्वभावत· अर्मूत होती है इसलिए उसकी अर्थवत्ता मे लचीलापन होता है तथा वह मानवीय अनुभवो को व्यक्त करने मे बहुविध उपयोगी होती है। फिल्म गतिशील मूर्त विम्बो की कला है। अत उसकी भाषा भी मूर्त गतिशील मूर्त बिम्बो पर आधारित होती है।[67] जबकि साहित्य के बिम्बविधान शब्दो तक सीमित होते हैं।

फिल्म मूलत कैमरे से लिखा गया साहित्य है, न कि कलम से लिखा गया। यदि ऐसा होता तो अच्छा साहित्यकार ही फिल्म निर्देशक होता। जबकि सच्चाई यह नहीं है।[68] दोनो मे मूलभूत अतर है। साहित्यकार एव निर्देशक दोनो की उद्देश्यगत समानता के बावजूद अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न हैं। भाषा भिन्न है। प्रत्येक कलाविधा की अपनी भाषा होती है और अपना मुहावरा होता है। चित्र की भाषा है- रग और रेखाएँ, तो नृत्य की भाषा है—पदचाप और मुद्राएँ। इसके विपरीत साहित्य की भाषा एक

---

65 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल, पृष्ठ 11

66 भारतीय नया सिनेमा, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, पृष्ठ 138

67 भारतीय नया सिनेमा, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, पृष्ठ 138

68 सिनेमा की सवेदना, डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 41

ऐसी लिखित भाषा होती है, जो प्रत्यक्ष होती है।[69] फिल्म की भाषा आँखो से सुनने की भाषा है, यह चुप्प से गुनने की भाषा है, न कि केवल कानो से ग्रहण करने की।[70] फिल्म दृश्य की भाषा है। इतने के बावजूद सिनेमा की भाषा के बारे मे सीधा-सीधा कह सकना असभव है। फिल्म केवल सवादो से ही अभिव्यक्त नहीं होता।

फिल्म मनोरजन के अतिरिक्त और भी कुछ है, ओर वह क्या है? उसकी भाषा, विषयवस्तु तथा रूपविधान से क्या सप्रेषित हो रहा है, इसे जानना समझना हागा। यह तभी सम्भव होगा जब फिल्म के सौन्दर्यशास्त्र को उसकी परख का आधार साहित्य तथा अन्य कला रूपों की तरह स्वीकार किया जायेगा क्योकि कला की कसौटी व्यक्तिगत पसद आर नापसद पर आधारित नही होती है।[71] कोई कलाकृति जब स्वतत्र इयत्ता ग्रहण कर लेती है तो उसकी आलोचना के नये प्रतिमान भी गढने होते हैं। विकास के उच्च सोपान पर कला जटिल हो जाती है। उनकी जटिल सरचना को विश्लेषित करने के लिए जिस व्याकरण की जरूरत होती है वही कृति की श्रेष्ठता को निर्धारित करती है। फिल्म के सदर्भ मे मुख्य बात यह है कि जो बिम्बो मे रचित ओर ध्वनित है, उसमे फिल्मकार ने क्या कहा है। इसलिए किसी फिल्म के अध्ययन के लिए यह जानना आवश्यक है कि फिल्म निर्माण मे फिल्मकार ने विषयवस्तु के सूत्रो की जो रचना की है वे उस कृति को सम्पूर्णता मे प्रस्तुत कर रहे हैं तथा क्या अतत सपादक के द्वारा दृश्यविधान के विवरणो मे स्पष्ट पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। फिल्म को जानने की यह प्रक्रिया ही कृति की कलात्मक समीक्षा है।[72]

उपन्यास के मूल मे कहानी कहने की जरूरत निहित होती है। वस्तु को कहाँ से देखा जाए, किस कोण से, कितनी दूरी से, कितने प्रकाश मे सब जगह अविच्छिन्न रूप से उपस्थित रहने वाले और दिखायी पडने वाले उपन्यासकार को चुनोती का सामना करना पडता है। रचना मे कोई पात्र न होने पर भी एक मानवीय ऑख होती है जैसे सिनेमा मे कैमरा। वह मनुष्य को कल्पनालोक से हटाकर यथार्थ भूमि पर तथा केन्द्रीय स्थिति मे खडा करता है। एक उपन्यासकार तब तक उपन्यास की रचना नहीं कर सकता जब तक वह निरतर विभिन्न अवस्थाओ का निर्धारण नहीं कर लेता जो एक कथावाचक के रूप मे उसकी परिदृष्टि को घेरे होते हैं तथा उसकी दूरी गति - जिसका सम्बन्ध उस

---

69 सिनेमा की सवेदना डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 40

70 सिनेमा की सवेदना डॉ० विजय अग्रवाल पृष्ठ 41

71 भारतीय नया सिनेमा, सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 140

72 भारतीय नया सिनेमा सुरेन्द्र नाथ तिवारी पृष्ठ 138

दृश्य से है, जिसका वर्णन हो रहा है। इसे सिनेमा की शब्दावली मे कह सकते है- कैमरा ऐंगल क्लोजअप, मीडिया शाट या बिना गति के शाट्स। एक और महत्वपूर्ण पहलू है, जो इन दो कलारूपो के सौन्दर्यानुभूति के अतर को स्पष्ट करता है। वह है इन दोनो की वर्णन पद्वति, जो आतरिक रूप से इतनी भिन्न होती है कि एक-दूसरे की समानताओ को रोकती है। वस्तुत उपन्यास की वर्णन पद्वति की सिनेमा मे कोई बराबरी नहीं है।

फिल्म के साथ ही कथा साहित्य मे ऐसे विकासात्मक सोपान आए जब फिल्म ने भी उपन्यास रचना को प्रभावित किया। फ्रास की सिनेमा के न्यू ब्रेव आन्दोलन के फलस्वरूप उपन्यास मे आधुनिकतावादी प्रयोगो का प्रचलन शुरु हुआ। उपन्यासो मे दृश्य विकास की असगति, अचानक विचारो या मनोभावो का आविर्भाव होना, समय के मानदण्डो का आनुपातिक तथा फिल्म की अनुरूपता का होना, पाया जाने लगा जो फिल्म की कटिग, विम्बो की विलीनता तथा उसमे क्षेपक के अनुरूप थीं। उपन्यासकार प्रस्ट, जेम्स, ज्वॉइस, डॉस पासोस तथा वर्जीनिया वुल्फ की कृतियो मे इस प्रकार के प्रयोग हुए है। बाद मे फ्रास के नए उपन्यास आन्दोलन के अगुवा लेखक एलेन राब्ब ग्रिए ने सिनेमा को साहित्य के नाटकीकृत पुनरुत्पादन की भूमिका से बचाए रखकर पाठ, गति, ध्वनि और बिम्ब के सम्बन्ध को पुनर्व्याख्यापित करने का प्रयत्न किया। ग्रिये के अतिरिक्त फ्रासीसी लेखिका मार्गरीट डुरास ने भी अपने गद्य लेखन मे सिनेमा के विवरण देने के तरीके को अपनाया और फिल्मे बनाई।

कई महान् फिल्मकारो ने सिनेमा की भाषा मे उत्कृष्ट साहित्य की रचना की है। परन्तु साहित्य के स्वीकृत स्वरूप मे उनका अनुवाद नहीं हो पाया है। मेरी समझ मे ऐसा होना चाहिए। इससे साहित्य और समृद्ध होगा। यदि सिटी लाइट्स, मॉडर्न टाइम्स, जागते रहो, जुनून जैसी फिल्मे कुशल अनुवादको द्वारा साहित्य मे रूपातरित हो जाए तो वे उन फिल्मो की तरह ही 'क्लासिक्स' का दर्जा पाएँगे।[73]

अतत' साहित्य और फिल्म अपने कलारूप मे स्वायत्त हैं। साहित्य साहित्य ही रहेगा। साहित्य पर आधारित सिनेमा साहित्य की कलात्मक अभिव्यक्ति है। फिल्म के लिए साहित्य पूरक हो सकता है और साहित्य फिल्म से लेखन की कुछ शैली और विधा प्राप्त कर सकती है। दोनो मे कोई विरोध नहीं है। यह वैसे ही है जैसे साहित्य के साथ-साथ नाट्य, सगीत, पेंटिग ओर नृत्य आदि कलाओ का विकास हुआ।

---

73 सिनेमा कुछ नोट्स, सजय सहाय, आजकल जनवरी 96 पृष्ठ 61

अध्याय - छः

रचना का अन्य माध्यम में रूपान्तरण

अध्याय - छ

रचना का अन्य माध्यम में रूपान्तरण

सृजनात्मक साहित्य का अधिकाश भाग लिखित रूप मे प्रस्तुत होता है। लिखते समय रचनाकार पाठक अथवा कविता के सन्दर्भ मे श्रोता का ध्यान रखकर रचना करता है। लिखने मे रचनाकार स्वतत्र होता है और वह कल्पना की ऊँची-से-ऊँची उडान भर कर उसे शब्द दे सकता है, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावो की अभिव्यजना कर सकता है। लिखने मे भाषा अपनी सम्पूर्ण शक्तियो के साथ अभिव्यक्त होती है। लिखित साहित्य मे पाठक को यह सुविधा रहती है कि वह रचना का सागोपाग अध्ययन और पुनः अध्ययन कर सकता है। लिखित रचनाएँ पाठको को प्रतिक्रिया का अवसर देती है। रचना की सार्थकता सम्प्रेषण मे है एव उपयुक्त सहृदय के बिना रचना की सार्थकता भी नहीं है। शास्त्रो मे भी सहृदय अथवा भावक के बारे मे विस्तृत विचार किया गया है। रचना के भावक या पाठक के लिए शिक्षित होने की पूर्वपिक्षा होती है। इस रूप मे रचनाएँ क्लासिक होती हैं। अत साहित्य को हम क्लास मीडिया कह सकते हैं।

यही रचना जब आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म एव रगमच से प्रस्तुत होती है तब वह मास मीडिया अर्थात् जनसचार माध्यम की रचना हो जाती है। इस रचना को किसी जनसचार माध्यम से प्रस्तुति मे उसे उस माध्यम की आवश्यकताओ एव सीमाओ के अनुसार नया रूप प्रदान करना पडता है। भाषा के कुछ काम को रूपातरण की इस प्रक्रिया मे ध्वनि, दृश्य एवम् सकेतो से अभिव्यक्त करना पडता है। यहाँ पर आकर भाषिक सवेदन का अधिकाश चाक्षुष सवेदन मे परिणित हो जाता है।

किसी रचना के अन्य माध्यम मे रूपातरण की परपरा अत्यत प्राचीन है। भारत मे बहुत पहले से लोकनाटको के माध्यमो से रामायण, महाभारत आदि कथाओ की प्रस्तुति होती रही है। कालिदास, हर्ष, वाणभट्ट आदि की सस्कृत रचनाओ का भी रूपातरण होता रहा है। कई औप-न्यासिक कृतियो के भी सफल नाट्य रूपातरण हो चुके हैं। इन्हे किसी भी दृष्टिकोण से साहित्येतर नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार साहित्यिक रचनाओ के रेडियो रूपातरण भी हो चुके हैं। साहित्य जगत मे इनकी भी स्वीकृति है, इस पर कोई हो-हल्ला नहीं होता है। इसका कारण सभवत इन माध्यमो पर सचेत सस्कृत कर्मियो का वर्चस्व रहा है अथवा उन माध्यमो की विशेषता रही है।

प्रश्न तब खडा होता है जब साहित्यिक कृतियो पर फिल्म अथवा धारावाहिक बनता है। कई बार साहित्यिक कृतियो पर बनी फिल्म अथवा धारावाहिक ने उसके मूल कृतिकार को बहुत असतुष्ट किया है। उस फिल्मकार पर आरोप लगा कि उसने मूलकृति की आत्मा की हत्या कर दी और उस

कृति का कथ्य और शिल्प बिल्कुल बदल गया। परन्तु ऐसे भी उदाहरण है जिसमे मूलकृति उतनी अच्छी नहीं थी जितनी अच्छी उस पर फिल्म बनी। ऐतिहासिक अनुभवो से यह स्पष्ट है कि चलताऊ उपन्यास फिल्म निर्माण के लिए उपयुक्त ठहरते हैं और उन पर बनी कई फिल्मे प्राय सफल रही हैं जबकि श्रेष्ठ उपन्यासो पर बनी फिल्मे बहुत कम हैं जिसमे अधिकाश बाक्स आफिस पर पिट गई हैं।

अधिकाश फिल्मकारो का मानना है कि साहित्यिक कहानियो का पर्दे पर रूपातरण एक जटिल काम है।[1] यह इस माध्यम की प्रयोगशीलता की सीमाओ के कारण हो सकता है अथवा सभव है ऐसा न होने के पीछे फिल्मो की प्रेम कहानी का बाजार तन्त्र काम करता हो। साहित्यिक कृतियो पर बहुत सी अच्छी एव सशक्त फिल्मो का निर्माण भी हुआ है। इसलिए ऐसा नहीं कह सकते कि अच्छी रचनाएँ पर्दे पर नहीं उतर सकती हैं।

फिल्म एवं धारावाहिक मूलत· अभिनय की विधाए हैं। कमजोर कहानी भी अभिनय के सामर्थ्य से चल जाती है तथा सशक्त कहानी भी कुशल अभिनय के अभाव मे चुक जाती है। अस्तु, पर्दे के लिए अभिनय महत्वपूर्ण है। फिल्म निर्देशक की कृति है। किसी अच्छी कहानी पर यदि कुशल निर्देशक फिल्म बनाता है तो उस अच्छी रचना पर श्रेष्ठ फिल्म बनती है। यदि निर्देशक कुशल नहीं है तो अच्छी-से अच्छी रचना पर भी बनी फिल्म प्रभावहीन होती है। अत महत्वपूर्ण साहित्य पर ही श्रेष्ठ फिल्मे बनेगी यह सरलीकरण भी गलत है।

साहित्यिक रचनाओ पर भारत मे अपेक्षाकृत कम फिल्मे बनी हैं। जो बनी हैं उनमे कुछ को छोडकर अधिकाश को अच्छी प्रस्तुति नहीं कहा जा सकता है। इससे उसके लेखक भी असन्तुष्ट थे। 'साहब, बीबी और गुलाम' को लेकर उसके लेखक विमल मित्र भी नाराज थे। उनका आरोप था कि उनकी रचना की आत्मा से खिलवाड हो गया।[2] बीच मे कई जगह गानो को रखने के पक्ष मे वे नहीं

Anthony Minghela (Director of the film 'The English Patient" written by Michael Ondaatje) had, of course, heard stories of many Hollywood and British writers who had sought to translate the book to the big sereen but had given up finding it to complex

Artiele Where the Novel stops and the Film begins by Arthur J Pais, Times of India Feb 23 1997

2 श्री श्रीष मित्र, फिल्म समीक्षक, जनसत्ता से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य' योगेन्द्र प्रताप सिह

थे। इस फिल्म के निर्देशक गुरुदत्त का इस आरोप के उत्तर मे कहना था कि कहानी लिखते समय लेखक के पास कहानी के विस्तार एव उसकी अभिव्यक्ति की असीम सभावनाए होती हैं। लेकिन उस कहानी पर फिल्म बनाते समय उन सभी कल्पनाओ को दृश्य देना पडता है। यह निश्चित ही एक चुनौती भरा काम है। इसमे मात्र कल्पना ही नहीं करनी होती है अपितु उसके दृश्याकन के लिए तथा उस दृश्याकन मे गति एव सन्तुलन बनाए रखने के लिए थोडा हेर फेर करना पडता है।[3] ऐसा बहुत कम है कि किसी साहित्यिक कृति को पढने एव उस पर बने फिल्म अथवा धारावाहिक को देखने का अनुभव एक ही हो। किसी साहित्यिक कृति की हूबहू दृश्य प्रस्तुति नीरस भी हो सकती है। । ऐसा 'गोदान' पर बनी फिल्म को देखकर प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

फिल्माकन करते समय कहानी के विस्तार की भी आवश्यकता पडती है। उदाहरण स्वरूप हम आशापूर्णा देवी की 'हजार चौरासी की माँ' पर गोविन्द निहलानी द्वारा बनाए गए फिल्म को ले सकते हैं। हजार चौरासी की माँ मे जहाँ कहानी खत्म होती है उससे आगे जाकर गोविन्द निहलानी ने कहानी को विस्तार दिया। उन्हे लगा कि इस बिन्दु पर कहानी खत्म कर देने से फिल्म प्रभावहीन हो जाएगी और उसके आगे कहानी मे कुछ जोडना उन्होने आवश्यक समझा। इसी प्रकार दूरदर्शन से प्रसारित लोकप्रिय धारावाहिक 'चन्द्रकान्ता' का उदाहरण ले सकते हैं। बाबू देवकीनन्दन खत्री की लिखित मूल 'चन्द्रकान्ता' एक सीधी-सादी रोमानी प्रेमकथा है और बाइसवे बयान के बाद चन्द्रकान्ता का कुँवर वीरेन्द्र सिह से व्याह हो जाता है और कहानी खत्म हो जाती है। किन्तु 'चन्द्रकान्ता' धारावाहिक मे कहानी को और आगे बढा दिया गया है। धारावाहिक के इस कहानी का विस्तार प्रभाव की अपेक्षा व्यावसायिक दबाओ के कारण अधिक है। निर्देशक के समक्ष दृश्य एव उसका प्रभाव रहता है। निर्देशक की उगलियाँ दर्शक की सवेदना पर होती हैं। इसलिए वह बराबर सचेत रहता है। लेकिन सबसे बडी बात यह है कि निर्देशक उस मूल कृति एव कृतिकार के समक्ष अपने व्यक्तित्व का विलयन न होने देने का प्रयत्न करता है जिसके कारण भी वह कृति मूल कृति से भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेती है। कभी-कभी जल्दबाजी और अज्ञानतावश अति उत्साही निर्देशक मूल कथानक को तोड-मरोडकर हास्यास्पद बना देते हैं और फिल्म द्वारा सप्रेषित प्रभाव, मूल से बिल्कुल भिन्न हो जाता है। आज तक पूरे विश्व मे अनेक प्रयासो के बावजूद एक भी फिल्म नहीं बन सकी जो 'अली बाबा और चालीस चोर' का फिल्मीकरण उसके मूल की तरह रोमाचकारी ढग से कर पायी हो या सिदबाद की यात्राओं

---

3 श्री श्रीष मिश्र, फिल्म समीक्षक, जनसत्ता से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य' योगेन्द्र प्रताप सिह

का असली लेखा-जोखा पेश कर पायी हो। पता नहीं, निर्देशको का कौन सा अह उसे डस लेता है कि अपनी प्रभुता स्थापित करने के चक्कर मे 'अरेबियन नाइट्स' सरीखी कथा-मालाओ तक की हत्या कर डालते हैं जिनमे कथ्य परिवर्तन कोई आवश्यक नहीं है, और रोमाचक फिल्मो के लिए वे मुफीद कच्चा माल हैं।[4] पर्दे पर रूपातरित कृति का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि साहित्यकार निर्देशक को अपनी रचना से छेड-छाड की कहाँ तक अनुमति देता है।

फिल्म अथवा धारावाहिक के लिए आधारभूत रचना पटकथा है। फिल्माकन के लिए सर्वप्रथम पटकथा की आवश्यकता पडती है। साहित्य सरल हो अथवा जटिल, सामान्य हो या महान् फिल्मो मे परिवर्तन हेतु उसे पहले जिस रूप मे ढलना पडता है, वह है -पटकथा। पटकथा लिखे-छपे साहित्य को चित्रो मे गढने की भाषा है, और जटिल तकनीक प्रक्रिया है। यह जितनी सशक्त रहेगी, फिल्म उतनी ही प्रभावशाली बनेगी। यह फिल्म के निर्देशक और पटकथा लेखक की परिपक्वता और दृष्टि पर निर्भर करता है कि फिल्म अपने मूल साहित्य का निर्वाह नए व्याकरण मे कर पायी है अथवा नहीं। परिपक्वता सिर्फ निर्देशक और पटकथा लेखक की हैसियत से नहीं, बल्कि मूल साहित्य को समग्रता मे समझने की परिपक्वता, ताकि फिल्म पाठक के मन मे रची-बसी मूल साहित्य की तमाम छवियो का प्रतिनिधित्व कर पाए। यह एक कठिन चुनौती है, और साहित्य की इस चुनौती के आगे बडे-बडे फिल्म निर्देशक धराशायी होते दिखे हैं, चाहे प्रेमचन्द को फिलमाते सत्यजीत राय हो या डोमिनिक लापिए को फिल्माते रोलैण्ड जौफे।[5]

कथा से पटकथा बनाने मे न केवल कथा के विन्यास मे से दृश्य चुनने या बनाने पडते हैं बल्कि उन दृश्यो की परिकल्पना इस तरह करनी पडती है कि जिसमे प्रभावोत्पादक नाटकीयता पैदा की जा सके। धारावाहिक मे एक प्रभावोत्पादक कथा के साथ-साथ ऐसी पटकथा की सरचना जरूरी हो जाती है जो दर्शक से सीधे-सीधे बिना किसी व्यवधान के रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके। धारावाहिक की पटकथा सरचना इस मायने मे किसी कहानी के नाट्यरूपातर के काफी नजदीक बैठती है किन्तु कैमरे की कला होने के कारण वह नाटक की संरचना से भी थोडी अलग और विशिष्ट बन जाती है। यह बहुत कुछ पारंपरिक रससिद्धान्त के साधारणीकरण को अपना आधार बनाकर चलती है जो बहुत कुछ फिल्मों से मिलता-जुलता तत्व है। इसलिए यदि दूरदर्शन के धारावाहिकों की शुरूआत ने

---

4 'सिनेमा-कुछ नोट्स' सजस सहाय, आजकल जनवरी 1996 पृष्ठ 8-9

5 'सिनेमा- कुछ नोट्स', सजस सहाय आजकल जनवरी 1996 पृष्ठ 8-9

बम्बई के फिल्मोद्योग को बडे पैमाने पर आकर्षित किया तो कोई अ ।ग्ज की बात नहीं।[6] धारावाहिक मूलत कथानाट्य होने के कारण एक ही वक्त मे कथा भी है और नाटक भी। किन्तु छोटे पर्दे पर फिल्माए जाने के कारण वह इन दोनो से अलग भी नजर आता है। इसका असली उपजीव्य जनरुचि के अनुकूल लोकप्रिय फार्मूला होता है। उसमे नाटकीयता का तत्व अनिवार्य और पर्याप्त होता है क्योकि नाटकीयता से ही वह सम्प्रेषणीय बनती है। 'राग दरबारी' धारावाहिक की असफलता का एक बडा कारण उसमे नाटकीय तत्वो का अभाव था। राग दरबारी उपन्यास मे नाटकीय स्थितियो की कोई कमी नहीं हैं किन्तु फिल्माए जाने मे वे नाटकीय तत्व हू-ब-हू आकर व्यर्थ हो जाते हैं। ऐसा भी हुआ इसके लिए जरूरी है कि सिर्फ कथा का दृश्यानुसरण न किया जाए, बल्कि प्रस्तुति की जरूरत के मुताबिक दृश्यो की कल्पना की जाए। यहीं कथा से पटकथा महत्वपूर्ण हो जाती है और पटकथा की रचना प्रक्रिया नाटक लिखने की रचना प्रक्रिया जैसी होते हुए भी उमसे काफी अलग और स्वतत्र हो जाती है। इसलिए जिस आसानी से कोई कथाकृति नाट्य रूप मे ढाली जा सकती है, मचित की जा सकती है, उतनी आसानी से उसे धारावाहिक रूप मे नहीं ढाला जा सकता है।[7]

छोटी कहानियो पर भी पूरी लम्बाई की फीचर फिल्म बनाने के अनेक प्रयास होते रहे हैं, पर पटकथा के बिखराव की वजह से अधिकतर मामलो मे ये निरर्थक सिद्ध हुए हैं।[8] रचना के पर्दे पर खास कर फिल्म मे रूपातरण की समस्या आज-कल कुछ और ही है। आज-कल फिल्मो के लिए कहानियाँ लिखते समय, रचना के चयन करते समय यह भी ध्यान रखा जाता है कि अभिनय किसे करना है अर्थात् अभिनेता और अभिनेत्रियाँ कहानी से ज्यादे महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह किसी फिल्म के अत्यत सफलता के आधार पर उसकी दूसरी फिल्म से लाभ की आकाक्षा के दबाव मे होता है। इससे अच्छी रचनाएँ फिल्माकन से बच जाती हैं और फिल्माकन का व्यवसाय माँग-पूर्ति पर आधारित होकर दर्शक को उपभोक्ता के रूप मे खडा करता है।

किसी कृति के पाठक फिल्म अथवा धारावाहिक के दर्शको की तुलना मे कम होते हैं तथा रचनाओ के पाठक उस रूप मे नहीं होते है जैसे कि लोकप्रिय फिल्मो के दर्शक। किसी दो भिन्न उपन्यासो मे किसी घटना एव दृश्य का साम्य उस उपन्यास की कथा के साधारणीकरण मे अवरोध नहीं

---

6 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी, पृष्ठ 72

7 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी पृष्ठ 115

8 'मिनेमा-कुछ नोट्स', सजस सहाय, आजकल जनवरी 1996 पृष्ठ 8 से

उत्पन्न करता जबकि किसी दो फिल्मो मे बिल्कुल एक सी घटनाएँ, दृश्य और उनकी प्रस्तुति उचित नहीं होती। फिल्म के निर्माता एव निर्देशक इसके प्रति सचेत रहते हैं। किसी रचना के पटकथा लेखन से फिल्म बनते समय एक लम्बा कालखण्ड लगता है। इसी बीच यदि किसी अन्य फिल्म मे उसके किसी भाग की प्रस्तुति हो गई तो निर्देशक पटकथा मे परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करता है। इस कारणवश भी किसी रचना के पर्दे पर रूपातरण मे मूल कृति से कुछ परिवर्तन करना पडता है।

इन सभी कारणो से फिल्मकारो एव धारावाहिक निर्माताओ को किसी साहित्यिक कृति का फिल्माकन जटिल कार्य लगता है और वे साहित्यिक कृतियो के फिल्माकन से कतराते है। यदि वे किसी कृति पर फिल्म बनाना चाहते हैं भी तो वे फिल्म अथवा धारावाहिक के लिए उस कथा का उपयुक्तता की दृष्टि से आँकलन करते हैं एव फिल्मो के लिए सटीक लगती पटकथाओ की ही तलाश मे रहते हैं। फिल्म एव धारावाहिक कम्यूनिकेशन का मँहगा माध्यम होने की वजह से निर्माता भी जोखिम उठाने से बचते हैं। धारावाहिको के प्रायोजक मिल भी गए तो ऐसी फिल्म के निर्माताओ का अभाव रहता है।

जहाँ तक छोटे पर्दे का सवाल है वहाँ प्रायोजक सस्कृति का प्रभुत्व होने के कारण धारावाहिको का निर्माण किसी निश्चित लोकप्रिय फार्मूले के तहत होता हैं। जाहिर है इस फार्मूलेबाजी से वहाँ कोई सच्ची रचना सभव नहीं हो पाती। खासकर 'रचना' को परिनिष्ठित साहित्य मे जिस रूप मे जाना जाता है वैसी रचना का वहाँ जन्म नहीं दिया जा सकता। अगर कोई रचना वहाँ प्रस्तुत भी की जाती है तो वह भी लोकप्रियता के मानको के आधार पर यथावश्यक काट-छाँट कर प्रस्तुत की जाती है। यकीनन इससे रचना के सौन्दर्य की क्षति होती है। किन्तु क्या यह क्षति रचना के लिए सिर्फ नकारात्मक ही हो सकती है या किसी वक्त सकारात्मक भी हो सकती है? इसका जवाब भी तभी खोजा जा सकता है जब हम 'सीरियल' और कथा के बनने वाले सबधो को दूरदर्शन की मौजूदा उपभोक्तावादी सस्कृति से 'कन्फ्यूज' करके न देखे। फिल्मो मे भी प्रसिद्ध कथाकृतियो को लिया गया है और कम-से-कम हिन्दी के अनेक नाटक मूलत कथा-कहानी के नाट्य रूपातर मे प्रस्तुत किए जाते हैं। क्या फिल्म या रगमच ली गई कथा को अपने विशिष्ट माध्यम की प्रक्रिया मे पर्याप्त रूप मे नहीं बदलते? क्या हर बार फिल्मो मे रचना की नकारात्मक क्षति ही होती है? क्या नाटको मे हर बार कथा की सकारात्मक क्षति होती है? सत्यजीत रे ने प्रेमचन्द की कहानी 'सद्गति' को टेलीफिल्म के रूप मे बनाया तो क्या यह नकारात्मक क्षति हुई। या 'कभी न छोडे खेत' (जगदीश चन्द) का एम रैना द्वारा किया गया नाट्य रूपातर कोई नकारात्मक क्षति कही जा सकती है? इसके उलट क्या 'राग दरबारी' जैसी कथाकृति पर बनाये गये सीरियल ने कृति को कोई सकारात्मक क्षति पहुँचाई? जाहिर है कि

लिखित कथा साहित्य जब भी मच पर या फिल्म टेलीविजन मे प्रस्तुत किया जायेगा, उसमे नये माध्यमो की सरचनात्मक जरूरतो के हिसाब से कुछ अनिवार्य सशोधन करने ही होगे। इन सशोधनो से लिखित कृति किसी अर्थ मे भी 'निगेट' या 'नष्ट'' नहीं होती। इन प्रस्तुतियो के बाद वह वैसी ही मौजूद रह सकती है जैसी कि पहले थी।[9] टी० वी० या सिनेमा जब किसी कहानी या उपन्यास को अपने माध्यम मे ढालने की कोशिश करते हैं, तो वह कोशिश मूल रचना की जगह लेने की नहीं होती बल्कि अपने माध्यम की शर्तों पर वह एक नई सर्जना होती है। एक तरह से यह ऐसा सर्जनात्मक भाषान्तर है, जिसकी तुलना एक हद तक काव्यानुवाद से की जा सकती है। सत्यजीत राय की 'सद्गति' और मृणाल सेन की 'कफन' पर निर्मित फिल्म' ऐसे ही सर्जनात्मक प्रयास हैं।[10]

इस काम मे जोखिम तो है परन्तु यदि इन कठिन मार्गो को पार कर निर्देशक अपने विषयानुसार (सरल हो अथवा जटिल) मूल साहित्य का निर्वाह सही ढग से कर पाते हैं तो 'साहब बीबी और गुलाम', 'तमस', 'तर्पण' या 'गाइड' जैसे अनेको अद्भुत नतीजे सामने आते हैं। इन फिल्मो मे भी मूलकथा मे कहीं-कहीं फेर-बदल किया गया है, पर मूल की आत्मा को ठेस नहीं पहुँचाई गई है। यह निर्देशकीय अह न होकर स्वरूप परिवर्तन की आवश्यकता ही लगता है। पर यदि यह तमीज न हो, फिर भी निर्देशक साहित्य से मनमाने तरीके से छेडछाड करते हो तो मूर्खतापूर्ण नतीजे ही सामने आएगे।[11] इससे बचने के लिए आवश्यक है कि साहित्यिक रचनाओ को पूरे सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत किया जाए एव केवल पुनरावृत्ति और अनावश्यक भर्ती के अशो को निकाला जाए वह भी लेखक के सहयोग से।[12]

अन्तत हम कह सकते हैं कि विभिन्न सचार माध्यमो मे किसी साहित्यिक रचना की उल्था भी उस मूलकृति का एक प्रकार से पुनर्सृजन है। गडबड तब होता है जब मूल रचना अदूरदर्शी हाथो मे पड जाती है। लेखक अपने प्रवाह मे लिखता है। यदि वह उपन्यास नहीं लिख रहा है तो भी वह अधिक-से-अधिक उसे वह पर्दे के लिए नाट्य शैली या सवाद शैली मे लिख सकता है। वह कैमरे की भाषा से अनभिज्ञ रहता है। उसके बाद प्रस्तुति की चिन्ता निर्देशक की हो जाती है। यदि लेखक और

---

9 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 114

10 नामवर सिंह द्वारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 46 वें अधिवेशन में बम्बई में किए गए भाषण से साभार सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 87

11 'सिनेमा-कुछ नोट्स' सजय सहाय आजकल, जनवरी 96 पृष्ठ 9

12 सरोकार, गिरिराज किशोर पृष्ठ 72

निर्देशक के दृष्टिकोणो मे अन्तर है, तो मूल कृति एव उमकी माध्यम प्रस्तुति मे निश्चित ही एक अन्तराल उपस्थित होता है। माध्यम से प्रस्तुत रचना मूलत निर्देशक की रचना हो जाती है। निर्देशक भी साहित्यकार की तरह सर्जक होता है साहित्यकार द्वारा लिखित रचना को जब तक वह पूरी तरह से धारण नहीं करेगा तब तक वह उसे कैमरे की भाषा मे अनूदित नही कर सकेगा। एक सृजनशील निर्देशक सोचता है कि किस छवि एव दृश्य को कैसे प्रस्तुत करना है। साहित्यकार एव निर्देशक की दृष्टियो का यदि तादात्म्य हो जाए तो निश्चित ही श्रेष्ठकृति निर्मित होगी [13] और उस मूल कृति की आत्मा की हत्या का उस पर आरोप नहीं लगेगा। अत यह इस पर निर्भर करता है कि किस थीम को कैसा लेखक मिलता है और किस कृति को कैसा निर्देशक।

---

13 नरेन्द्र कोहली से लिया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार दृष्टव्य 'सचार माध्यम बनाम साहित्य' योगेन्द्र प्रताप सिंह

अध्याय - सात

कविता एवं सम्प्रेषण साहित्य एवं माध्यम

अध्याय - सात

कविता एवं सम्प्रेषण के माध्यम

कविता अनुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति है जो व्यक्ति का आत्मविस्तार करती है और सर्जनात्मक तथा सवेदनीय होती है। कविता के शब्द एव भाव वैयक्तिक होते हैं किन्तु सम्प्रेषित होकर स्वान्त· सुखाय होने के बावजूद वे सार्वजनीन ओर शाश्वत हो जाते है, यदि उसमे इसकी सभावना हो। सप्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि कविता पाठक या श्रोता के लिए ग्राह्य हो एव उसे सहृदय तक पहुँचने के लिए उचित साधन या माध्यम मिले। बदलते विकासात्मक परिप्रेक्ष्य मे कविता के सम्प्रेषण के विविध माध्यम मिले हैं। पहले कविता केवल सुनी और पढी जाती थी अब कविता आकाशवाणी एँव दूरदर्शन से सुनी-देखी जा सकती है। इतना ही नहीं आज इन्टरनेट पर भी काव्यगोष्ठी सभव है, जहाँ कविता पढने का कुछ अलग ही अनुभव है। विभिन्न सचार साधनों एव माध्यमो के साथ कविता का रिश्ता किस तरह रूपायित हुआ हैं एव इसने कविता को किस तरह प्रभावित किया है प्रस्तुत लेख मे इसका विवेचन अभिप्रेत है।

विभिन्न माध्यमो से कविता का सरोकार

श्रुति परपरा मे कविता महत्वपूर्ण थी और काव्य साहित्य का पर्याय था। छन्दोबद्ध रचना स्मरण के उपयुक्त होती है इसलिए सभी प्राचीन वाङ्मय छन्द मे ही रचे जाते थे। साहित्य (काव्य) के लिए छन्द अनिवार्य था। छन्दो मे वाङ्मय की ज्ञानराशि के साथ रचने का भी अनुभव निहित रहता था। वेदो की ऋचाएँ तत्कालीन समाज की काव्यमय अभिव्यक्तियाँ हैं, जिसमे ज्ञान एव कविता दोनो मत्रबिद्ध हैं। उपनिषदो को दार्शनिक गीतो का सग्रह कहते भी हैं। हिन्दी मे परपरा से प्राप्त एव अर्जित छन्दो का विपुल भडार है।

मुद्रण कला के विकास से इसमे एक परिवर्तन घटित हुआ। इसने काव्य रचना मे प्रयोगशीलता मे विविध आयामो को उद्घाटित किया। जहाँ वाचिक परपरा मे कविता के लिए छन्द अपरिहार्य था, वहीं मुद्रण के प्रादुर्भाव से कविता के लिए छन्द की अपरिहार्यता समाप्त हो गई अथवा यह कहे कि छन्द का पारपरिक विधान बदल गया और छन्द के रजत पाश से मुक्ति की चर्चा शुरु हो गई। भाषा पर नए सिरे से विचार होने लगा। फलत· शब्द अपने पूर्ण शक्ति के साथ काव्य मे प्रकट हुआ। इसलिए

अज्ञेय ने कहा कि "कविभाषा नहीं लिखता है शब्द लिखता है।"[1] इस स्थिति मे कविता एव छन्द, दोनो ने एक दूसरे को प्रभावित किया। 'वाचिक से पठित' (छपी हुई) कविता तक आने मे काव्य का स्वरूप बदला, इसका अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि कविता को नया छन्दशास्त्र मिल गया या मिला नहीं तो मिलने की सम्भावना भी हो गई और अनिवार्यता भी। उससे अधिक महत्व की बात है कि नये छन्द ने उस वस्तु को भी प्रभावित किया जो उस छन्द मे निवद्ध थी वस्तु और रूप के अभिन्न सम्बन्ध का पूरा आशय यही है कि दोनो पक्ष दोनो को बदलते और अपने अनुकूल ढालते है।" (अज्ञेय, भवन्ती से)[2] यह कहना अनुचित न होगा कि मुद्रण के अभाव मे कविता मितकथन एव उस भाषिक सरचना से वचित रह जाती जिसमे निराला, अज्ञेय, शमशेर आदि कवियो ने उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ की हैं।

कविता एवं नाटक

नाटक एक सशक्त माध्यम है। नाटक अथवा रगमच को कविता की ऊँचाई तक पहुँच जाने के कारण साहित्यकारो द्वारा इसे 'दृश्यकाव्य' कहा गया। नाटको मे कविता अभिनय, कहानी आदि की तरह अनुषग के रूप मे ही रहती है। किन्तु कुछ नाटको ने साहित्य जगत् को श्रेष्ठ कविताएँ भी दी हैं। दुनिया के महान् कवि शेक्सपियर ने अधिकाश अमर कविताएँ नाटको के माध्यम से लिखी हैं। कविता से प्रेरणा लेकर कतिपय गीति नाट्य भी लिखे गए हैं जिनमे कवित्व, नाटकीयता एव प्रतीकात्मकता का सुन्दर समन्वय मिलता है। फिर भी कुछ रचनाओ को छोडकर अधिकाश नाटको मे कविता घटक के रूप में ही उपस्थित रहती है और इसमे कविता स्वतन्त्र इयत्ता नहीं ग्रहण कर पाती है।

कविता एवं पत्रकारिता

कविता की विकास यात्रा मे पत्र-पत्रिकाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कविता एव उसकी आलोचना पत्र-पत्रिकाओ के लिए आवश्यक सामग्री रही है। प्राय· काव्य आन्दोलनो का सूत्रपात पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित काव्य चर्चा एव समीक्षा के आधार पर ही हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य एव पद्य दोनो के लिए हिन्दी भाषा के प्रयोग की चुनौती का सामना 'सरस्वती' (मासिक) के माध्यम से ही किया। इन्होने जून 1900 ई० की 'सरस्वती' मे प्रकाशित 'हे कविते' शीर्षक वाली अपनी कविता

---

1 'अज्ञेय' सम्पादित विद्यानिवास मिश्र के परिशिष्ट 'ग' से (पृष्ठ 139)

2 अज्ञेय, सर्म्पादित विद्यानिवास मिश्र के परिशिष्ट 'ग' पृष्ठ 143 से उद्धृत

मे जनरुचि का प्रतिनिधित्व करते हुए सौरम्य एव वैविध्य के अभाव तथा ब्रजभाषा के चिर-प्रयोग पर अपना क्षोभ प्रकट किया था। सन् 1903 ई० मे 'सरस्वती' का सम्पादक हो जाने पर उन्होने नायिका भेद को छोडकर विविध विषयो पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छन्दो का व्यवहार करने, सभी काव्यरूपो को अपनाने का रचनात्मक आदोलन चलाया तथा गद्य और पद्य भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया।[3] आचार्य द्विवेदी ने कवि एव कर्त्तव्य निबन्ध मे लिखा था-चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, विन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है। परिणामत जीवन और जगत् के सभी दृश्य और पदार्थ कविता के विषय बनने लगे।[4] पत्र - पत्रिकाओ के द्वारा उनके इस सदुद्योग से कविता मे विषय की दृष्टि से अपार वैविध्य एव नवीनता आई। 'कविता क्या है? (सरस्वती 1908 ई) और 'साहित्य' (सरस्वती 1914) जैसे कविता के आधार भूत प्रश्ना पर चर्चा सर्वप्रथम पत्रिकाओ मे ही हुई।

साहित्य के इतिहास मे युगान्तर उपस्थित करने वाली 'जूही की कली' उस कवि की रचना है, जिसने 'सरस्वती' और 'मर्यादा' के फाइलो से हिन्दी सीखी, उन पत्रिकाओ के एक-एक वाक्य को सस्कृत, बगला और अग्रेजी व्याकरण के सहारे समझने का प्रयास किया।[5] हिन्दी की अनेको श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ सर्वप्रथम पत्र-पत्रिकाओ मे ही प्रकाशित हुई अथवा आकाशवाणी से प्रसारित हुई। मुक्ति बोध की प्रमुख रचना 'अँधेरे मे' का पहला प्रकाशन 'कल्पना' मे 1964 ई० मे 'आशका के द्वीप अँधेरे मे'' नाम से हुआ ।[6]प्रयोगवाद से नई कविता मे जो रचनात्मक रूपातरण क्रमश हुआ उसे सभव करने मे अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'प्रतीक' का विशिष्ट योगदान रहा है।[7] 1950 मे प्रतीक के लिये ही इन्होने दिल्ली मे रेडियो की नौकरी स्वीकार की और दो वर्षों तक इन्होने अपने बूते पर पत्र को चलाया।[8] द्विवेदी युग और किसी सीमा तक छायावाद का रूप जैसे 'सरस्वती' मे उभरा था कुछ वैसे

---

3 दृष्टव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र ,पृष्ठ 488

4 हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ 492

5 दृष्टव्य, हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, सम्पादित धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 651

6 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 237

7 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास ,राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 245

8 दृष्टव्य, अज्ञेय , विद्यानिवास मिश्र सम्पादित, पृष्ठ 16

ही छायावादोत्तर कृतित्व का प्रतीक मे। सप्तक कवियो का अधिकतर महत्वपूर्ण प्रकाशन पहले प्रतीक मे हुआ।[9]

नयी कविता आन्दोलन मे 'नयी कविता', 'आलोचना', 'कल्पना', 'माध्यम', 'क-ख-ग', 'ज्ञानोदय', 'आरभ', 'निकष', 'नये पत्ते', 'पूर्वग्रह' आदि महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाओ का अनन्य योगदान रहा है। 'नई कविता' पत्रिका ने समकालीन कविता की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए 'कविता के नए प्रतिमान' का प्रश्न उठाया। नयी कविता की समीक्षा मे काव्य शास्त्रीय रस सिद्धान्त को असमर्थ पाकर कुछ रचनाकारो ने नये प्रतिमानो की खोज का प्रयास किया तो नगेन्द्र जैसे कुछ आलोचको ने रस सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या की। इस काव्य आन्दोलन मे न सिर्फ साहित्यिक पत्रिकाओ ने भाग लिया बल्कि 'धर्मयुग' एव 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी सामाजिक राजनैतिक पत्रिकाओ ने भी सहभाग लिया। रस के रूढ और शास्त्रीय अर्थ का परित्याग करके व्यापक अर्थ मे उसे "मानव व्यक्तित्व की सार्थकता की प्रतिति और सिद्धि" के रूप म प्रतिष्ठित करने वाले रस-सिद्धात के नए प्रचारक डॉ० नगेन्द्र का एक निबन्ध "छायावादोत्तर हिन्दी कविता मूल्याकन की समस्या" 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 10 मार्च 1968 वाले अक मे छपा। 'तीसरा सप्तक' के कवि केदारनाथ सिह का एक निबन्ध '60 के बाद की हिन्दी कविता' धर्मयुग के 5 अगस्त 1965 के अक मे प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार काव्य सग्रहो एव कविताओ की साहित्यिक समीक्षाएँ प्रकाशित कर सामाजिक, राजनैतिक पत्रिकाओ ने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी साहित्य से दूर नही हैं।

इस काम मे प्रिन्ट मीडिया के अतिरिक्त आकाशवाणी की भी भूमिका कम नहीं रही है। 'नयी कविता' का नामकरण अज्ञेय द्वारा ही अपनी एक रेडियो वार्त्ता मे दिया गया, जो बाद मे 'नये पत्ते' के जनवरी-फरवरी 1953 अक मे 'नयी कविता' शीर्षक से प्रकाशित हुई।[10] हिन्दी के अधिकाश कवि उस समय आकाशवाणी से जुडे हुए थे।

कालान्तर मे पत्रकारिता मे विशेषीकृत पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ जैसे राजनैतिक पत्रकारिता, विकास पत्रकारिता, विधि पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता आदि। इसकी वजह से एव पत्रकारिता जगत पर बाजार तन्त्र के हावी हो जाने से साहित्यिक पत्रकारिता पूर्णत

---

9 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 246

10 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 276

विशेषीकृत हो गई, साहित्य कुछ परिशिष्टो तक सीमित हो गया। फलत पत्र पत्रिकाओ मे कविता को जहाँ महत्वपूर्ण स्थान मिलता था, उसका अधिकाश स्थान पत्रकारिता की अन्य विधाओ यथा फीचर रिपोर्टिंग, फोटोग्राफी आदि ने ले लिया। पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित रचनाओ मे समसामयिक कविता की आलोचना का स्थान कम हो गया। इन कारणो से अधिकाश साहित्यकारो ने सीमित ससाधन एव पाठक वर्ग के बीच पत्रकारिता का एक अलग रास्ता निकाला जिसको लघुपत्रिका के रूप मे हम देखते है। इसमे सिवान (बिहार) से प्रकाशित 'अद्यतन' जैसे कुछ नियत कालिक केवल कविता के लिए ही निकल रहे है। साहित्य समृद्धि की दृष्टि से इनका अमूल्य योगदान भुलाया नहीं जा सकता। समसामयिक पत्रकारिता मे "सम्पादक के नाम पत्र" स्तभ मे कुछ कविताओ के प्रकाशन की प्रवृत्ति भी रेखाकित करने योग्य है।

विभिन्न माध्यमो से काव्य पाठ

कविता "स्वान्त सुखाय" लिखी गई रचना है, ऐसा प्राय सभी मानते है। किन्तु कवि एव सहृदय के उभयनिष्ठ अनुभूतियो के कारण कविता सहृदय तक सप्रेपित होकर उसे भी आनन्द प्रदान करती है। काव्य पाठ मात्र से काव्य सम्प्रेपित नहीं हो जाता है। कविता पाठ के लिए उपयुक्त वातावरण चाहिए जैसा कि हर कला में सम्प्रेषण के साथ होता है। काव्य पाठ के भीतर कई शक्तियाँ एक साथ सक्रिय होती हैं। कई क्रियाएँ एक साथ चलती है। रचना के साथ पाठ करने वाले के मार्मिक सबन्ध का बन जाना, फिर उसके साथ कहने वाले के सुर का लग जाना और सबोधित भावक के मन का तैयार होना ये काव्य निवेदन की पूर्व शर्तें हैं। इसलिए उपहास की वस्तु नही हो सकती। जिस तरह काव्य कर्म कुछ न्यूनतम साधनो की दरकार रखता है उसी तरह काव्य निवेदन को भी आवश्यक साधन चाहिए।[11] काव्य पाठ मे कवि भावक की प्रतिक्रियाए ग्रहण करते हुए सम्पूर्ण मानसिक एव तदनुरूप आवश्यक मुद्रा अर्थात् कायिक शक्ति के साथ काव्य निवेदन करता है। सभवत इसी को रेखाकित करते हुए रुपसन ने कहा कि कविता पाठ के लिए मास पेशियो की ऊर्जा सबसे महत्वपूर्ण है।[12] प्रत्यक्ष काव्य पाठ की बजाय कवि एव भावक के बीच किसी सम्प्रेषण के माध्यम आ जाने से कवि एव भावक दोनो की मन स्थिति बदल जाती है। इस अन्य तीसरे माध्यम की उपस्थिति से कविता का प्रभाव बदल जाता है। छोटी काव्य गोष्टियो एव कवि सम्मेलनो मे कवि को भावक की प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ

---

11 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 121

12 कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिह, पृष्ठ 129

मिलती रहती हैं और वह उस समय के परिवेश के मूड का ध्यान मे रखकर काव्य निवेदन करता है। दूरदर्शन एव आकाशवाणी से कविता पढते समय श्रोता उसके समक्ष नही होते हैं, उसकी कविता पर उसे प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ नहीं मिलती हैं। मीडिया विशेषज्ञ सुधीश पचौरी इसे आह और वाह से मुक्त का काव्य पाठ कहते हैं। 'हम जो लोग छोटी-छोटी काव्यगोष्ठिया के आदी हैं, जब वैसी ही कविता को मच से सुनते हैं या टीवी से प्रसारित होते देखते हैं, तब भी काव्यपाठ की प्रक्रिया चलती रहती है। अधिक सजग कवि उसका ध्यान रखते हैं और जो कविता के पाठ का मर्म समझते है में वे हर बार कविता का भाव-विस्तार करते हैं। कविता लिखते वक्त जो होती है, ठीक वैसी फिर कभी नहीं रहती। वह कविता विकास करती रहती है। वह जड यदि नही बनी है तो चेतन की तरह सक्रिय और परिवर्तित रहती है। बुरी कविता मे यह सब नहीं घटेगा। वह विकसित नहीं होती। यानि जो चेतन को जड बना दे वह कविता से रिक्त पद्य भर होती है।[13] इस प्रकार काव्य पाठ से कविता विकसनशील रहती है।

कवि सम्मेलनो मे साहित्य का व्यावसायिक पक्ष उभरता है। कुछ ऐसी ही स्थिति फिल्म दूरदर्शन का भी है। इनका सम्बन्ध मनोरजन के साथ जुड जाने से इनमे पसन्द की जाने वाली कविताएँ उच्च साहित्यिक स्तर की नहीं होती हैं। उदात्त भावना को समूह आसानी से ग्रहण नही करता। समूह को तो चाहिए तत्काल उसके मन को छू लेने वाली भावना। लय-छन्द के साथ-साथ इस तत्काल मन को छू लेने वाली भावना को और भी कुछ अधिक साधन चाहिए। इन साधनो मे महत्ता मिलती है सुरीले कठ को, मच पर सफल अभिनय को तथा जनता को उकसाने वाले अथवा हँसाने वाले विषयो को।[14] इस प्रकार की कविताओ मे कवि वाह-वाही की अपेक्षा रखता है और श्रोता कवि से कविता मे मुग्धकारी मोडो की अपेक्षा रखते हैं। वाह-वाही की अधी गली मे कवि के भटकने एवम् सर्जनात्मकता से चुकने के खतरे बढ जाते हैं और इस स्थिति मे वे सतही काव्यरुचि को प्रदर्शित करने लगते हैं। इसकी आलोचना करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा कि ''हर बात में 'अहा हा! कैसा मनोहर है! कैसा आह्लादजनक है' जैसे भावोद्गार भद्देपन से खाली नहीं, और काव्य शिष्टता के विरुद्ध हैं।''

वह कविता जो भाषा की उत्कृष्टतम उपलब्धि है सुधी पाठक की अपेक्षा रखती है। इस दृष्टि से क्लासिकल रचना हो जाती है। किन्तु सचार माध्यम की प्रकृति जन माध्यम की है। इस परिस्थिति मे

---

13 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 121

14 साहित्य की मान्यताए, भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 84

क्लास की रचना को माम मे सप्रेषित होने की समम्या है। उच्च काव्य बोध एव केवल मनोरजन की दृष्टि से लिखी कविताओ का एक ही मच से काव्य पाठ उच्च काव्य बोध की रचना को हतोत्साहित करता है। "शुरू-शुरू मे दूरदर्शन मे ऐसे कवि सम्मेलन भी आए है कि एक साथ दोनो तरह की कविता पढी गई है। इससे समस्या पैदा हुई है। हुल्लड मुरादाबादी, स्व० काका हाथरसी के साथ स्व० श्रीकान्त वर्मा, स्व० रघुवीर सहाय या नागार्जुन काव्यपाठ करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे हम चाट की दुकान और मरीजो की ओपीडी के दर्शन बारी-बारी से कर रहे हो। एक क्षण हुल्लड, कुल्हड प्रभृति चुटकुले सुनाएगें, दूसरी ओर पुस्तकीय कवि 'गभीर' बनकर कुछ ऐसा पढेगे जो जल्दी समझ न आएगा।[15] इसलिए पठनीय परपरा की गभीर रचनाओ के लिए छोटी शिष्ट काव्यगोष्ठियाँ ही उपयुक्त होती है अथवा एकल काव्यपाठ वाली गोष्ठी उपयुक्त होती है।

आकाशवाणी साहित्य की दृष्टि से गभीर माध्यम है। आकाशवाणी ने कविता के सभी रूपो को सपोषित किया है। आकाशवाणी पर सभी प्रकार के काव्यरुचिया के काव्य पाठ सुनने को मिल जाते है। इस कारण से आकाशवाणी पर जनरुचि को विकृत करने का आरोप नहीं लगता है। कोई विरला ही कवि होगा जिसने आकाशवाणी से काव्यपाठ न किया हो। 'यों तो किसी भी माध्यम के लिए की जाने वाली रचना मे शिथिलता का दोष नहीं होना चाहिए किन्तु रेडियो के लिए लिखी गई रचनाओ मे प्रवाह का होना बडा जरूरी है। यहाँ तात्पर्य केवल भाषा के प्रवाह से नहीं है वरन् उसके माध्यम से सम्प्रेषित किए जाने वाले विचारो और बिम्बो के प्रवाह से भी है। हिन्दी मे आज भी यह कमी बनी हुई है। अकसर एक ही बिम्ब अथवा विचार उपस्थित कर लेने के बाद कविता वहाँ से आगे नहीं बढती, केवल शब्दो की सख्या और उसका कलेवर बढता है। किन्तु रेडियो के लिए लिखते हुए इस प्रकार के विचार प्रवाह को बनाए रखना न केवल अपनी रचना की सार्थकता सिद्ध करना होता है, वरन् इस नए प्रसार साधन की उपयोगिता को भी बढाना होता है।[16]

दूरदर्शन पर काव्य रुचि ही क्या अपसास्कृतिक दूषण के भी गभीर आरोप लगते है। यह कुछ हद तक सही भी है। दृश्य माध्यमो ने साहित्य के प्रसार मे सहयोग अवश्य दिया है परन्तु साहित्य के साथ न्याय नहीं किया है। जब दूरदर्शन कविता पर सदय होता है तो उसकी नजर मे वह कविता आती है जो सहज ही उपभोज्य हो जाए यानि जो हिट हो सके। लोगो की वाहवाही जिसे मिल सके, जो

15 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 118

16 सर्जन एव सम्प्रेषण, सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृष्ठ 97

कवि मच लूटकर ले जाने मे माहिर हो जाते है, वे ही दूरदर्शन पर जरूरी मान लिए जाते हैं। इससे जाहिर होता है कि दूरदर्शन ने एक माध्यम के रूप मे कविता से कोई सबध नहीं बनाया बल्कि मच से सबध बनाया। मच लाल किले और चौके चोराहे से उठकर दूरदर्शन मे आ गया। माध्यम की ऐसी निष्क्रियता ने एक ऐसी कविता और कवि व्यक्तित्व को पापुलर बनाया जो मूलत पद्यकार और तुकबदीकार था, जहॉ काव्य नहीं था, जहाँ समाज की चिन्ताएँ नहीं थीं।[17] सुधीश पचौरी जी की यह टिप्पणी निश्चित ही सत्य है क्योकि दूरदर्शन मात्र स्वाधीनता दिवस, गणतत्र दिवस, होली, नये वर्ष की पूर्व सन्ध्या आदि अवसरो को ही काव्य गोष्ठी के लिए उपयुक्त समझता है और सास्कृतिक-साहित्यिक उत्तरदायित्व से मुक्त होकर इसी प्रकार के कवि सम्मेलनो एव ऐसे ही काव्य रूपो को अरसे से प्रसारित करता रहा है।

दूरदर्शन ने कविता से रचनात्मक सम्बन्ध न बनाकर स्टूडियो मे श्रोताओ को बुलाकर कवि सम्मेलनो के सतही काव्य रुचि को स्थान दिया है। दूरदर्शन ने कविता के केवल उसी रूप को अगीकार किया है जो प्राय मनोरजनधर्मी रहा है। दूरदर्शन के इस तर्क को कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता कि पठनीय कविताएँ दूरदर्शन से प्रसारण योग्य नही हैं, क्याकि इस कोटि की कविताएँ कई बार दूरदर्शन से प्रसारित हुई हैं जिनको साहित्य की दृष्टि से भी पूर्णत सफल कहा जा सकता है। आज के रचनाकार माध्यमो की सीमाओ सभावनाओ के प्रति सजग हैं ओर उसके प्रयोगशील उपयोग के प्रति सचेष्ट है, ऐसा कई रचनाकारो ने अपने रचनाधर्मी दायित्व के निर्वहन से सिद्ध कर दिया है। आवश्यकता है दृश्य माध्यम के स्टूडियो मे मच को स्थानापन्न न करके कैमरे से कविता के सम्प्रेषण की सीमाओ एव सभावनाओ के सूत्र को तलाशने की।

एक सम्पूर्ण कविता की सम्भावना

जहाँ तक डिजिटल माध्यम की बात है, कलकत्ते की एक लडकी द्वारा इन्टरनेट पर कविता प्रसारित करने का एक उदाहरण हम ले सकते हैं। इस लडकी के मन मे यह भावना जागी की वह अपनी भाषा की सुदर कविताओ का एक सग्रह अपने चैटरूम के द्वारा विश्वभर के हिन्दी प्रेमियो को उपलब्ध कराए। उसने हिन्दी की कई कविताएँ चुनी और जब उन्हे दुनियाँ के कई कम्प्यूटरो पर पढा गया तो धन्यवाद और बधाई का ताता लग गया-'आहा! हम यहाँ विदेश मे बैठकर अपनी भाषा की

---

17 मीडिया और साहित्य, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 121

सर्जना का स्वाद ले रहे ह। धन्यवाद।'[18] यह इस माध्यम के लिए एक नया प्रयोग है। हालाकि हिन्दी जगत् दूरदर्शन के अप सास्कृतिक कलापो के कारण इन्टरनेट के प्रति भी सशकित है। इसके पीछे इस माध्यम का पहले दुरुपयोग होना मूल कारण है। इसके बावजूद स्क्रीन पर कविता पढने एव सुनने का एक अद्वितीय अनुभव है। मल्टीमीडिया के प्रयोग से कम्प्यूटर द्वारा कविताएँ एक साथ पढी एव सुनी जा सकती है। इसके लिए ऐसे साफ्टवेयरो के निर्माण की सभावना है। इसके साथ ही इस माध्यम के प्रति हिन्दी जगत् के इस आरोप का उत्तर भी दिया जा सकता है कि ये भागीदारिता का अवसर नहीं देते है। क्योकि एक पुस्तक की तरह स्क्रीन पर कविता के साथ यहाँ एक मार्जिन भी उपलब्ध है। इन सभवानाओ के साथ भापा की उच्चतम शक्ति-कविता की उस गहराई को स्क्रीन पर उतारने की आवश्यकता है। आगे समय बताएगा कि यह कितना सर्जनात्मक है। एक समर्थ रचनाकार इस मीडिया मे रचना की जीवनी शक्ति को उकेर सकता है। फिर सम्पूर्ण कविता की इस सम्भावना मे एक सभावित प्रश्न भी निहित है कि क्या इलेक्ट्रानिक माध्यमो खासकर दूरदर्शन के कारण कविता की जो नकारात्मक क्षति हुई उसकी पूर्ति इस डिजीटल माध्यम से सभव है? यह आगे का समय बताएगा।

कविता के शिल्प एव वस्तु पर माध्यमों का प्रभाव

कविता के शिल्प ने माध्यमो के विविध प्रभावो को ग्रहण किया है। कव्यालोचन के अनेक प्रतिमान विभिन्न सम्प्रेषण साधनो एव माध्यमों की प्रेरणा से निर्मित हुए हैं। चित्रकला से प्रेरणा लेकर छायावादी एव छायावादोत्तर काव्य मे चित्र भापा एव बिम्ब की प्रतिष्ठा हुई। चित्र-भाषा एव बिम्ब का मूलाधार भी चित्र कला है। पत ने पल्लव की भूमिका मे लिखा कि ''कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पडती है।'' निराला ने भी प्रकारान्तर से इसका समर्थन करते हुए लिखा कि ''हिन्दी के नवीन पद्य-साहित्य मे विराट-चित्रो के खींचने की तरफ कवियो का उतना ध्यान नहीं जितना छोटे-छोटे सुन्दर चित्रो की ओर है।'' इस प्रकार छायावादी युग मे कवियो ने चित्र भापा के द्वारा कविता मे लघु-विराट चित्रो की सृष्टि का प्रयास किया तो आलोचको की ओर से चित्रात्मकता के आधार पर कविता का मूल्याकन भी हुआ।[19] कालान्तर मे प्रगतिवाद काव्य की सपाट बयानी के विरुद्ध कविता मे काव्य बिम्बो की प्रतिष्ठा हुई और कवियो ने घोषणा की कि ''कविता मे मैं सबसे अधिक बयान देता हूँ, बिब विधान पर। बिब-विधान का सबन्ध जितना काव्य की विपय-वस्तु से होता है, उतना ही

---

18 'वागर्थ', सितम्बर, 1997, पृष्ठ 8

19 कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिह, पृष्ठ 115

उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को सक्षिप्त और दीप्त।'' (केदार नाथ सिह) इस प्रकार नए-नए काव्य बिम्बो के निर्माण को ही कविता का प्रतिमान भी मान लिया गया।

लम्बी कविताओ की आलोचना मे नाटकीयता की खोज हुई। लम्बी कविताओ की काव्यगत रचना नाटकीयता के प्रभावो को अपने मे समेटी हुई थी। मुक्ति बोध के 'अधेरे मे' एव विजयदेव नारायण साही के 'अलविदा' के रचना शिल्प के विवेचन मे हम पाते है कि कविताएँ नाटकीय एकालाप ही हैं, किन्तु इनमे फैंटेसी के सहारे एक ऐसी प्रभावशाली पटभूमि तैयार की गई है जिनमे एकालाप के बावजूद इन दोनो कविताओ मे वाचक के अतिरिक्त एक और व्यक्ति है जो छाया रूप मे उस एकालाप का साझीदार बना रहता है। ये कविताए नाटक के दर्शक के रूप मे पाठक को अपने से जोडती हैं।

मुक्तिबोध के 'अँधेरे मे' कविता एक स्वप्नचित्र की तरह है जिसे फेटेसी कहते है। इन ''स्वप्नचित्रो का रूपबध किसी फिल्म की पटकथा के समान है। जगह-जगह 'कट' और 'क्लोज-अप' इस्तेमाल किया गया है। ध्वनि और रूप दोनो का अन्तर्वेशी नियोजन है।''[20] इस प्रकार इन नयी कविताओ ने शिल्प के स्तर पर माध्यमो से सूक्ष्म प्रभाव ग्रहण किए हैं जो रचना मे घुल कर उसकी जीवनी शक्ति बन जाते हैं। पत्रकारिता को साहित्य के सन्दर्भ मे देखने की पहल रघुवीर सहाय ने की। इन्होने राजनीति अन्तर्विरोध को कविता के टकसाल मे ढालने की कोशिश की। राम स्वरूप चतुर्वेदी ने इनके बारे मे कहा, ''जीवन भर मीडिया मे रहे, रेडियो मे नौकरी की, अखबार नवीसी दैनिक अखबार मे की, साप्ताहिक अखबार मे की, उनकी भाषा मे अखबारीपन था। पर अखबार की भाषा से मीडिया नहीं रचा। उस व्यक्ति ने अखबार से कविता रची और एक शक्ति दिखा दी कि रचना मे क्या जीवनी शक्ति है।

सचार माध्यमो ने कविता के अन्तर्वस्तु को भी प्रभावित किया है। इलेक्ट्रानिक माध्यमो पर यह आरोप लगा कि इसने पाठक की भागीदारिता को समाप्त किया है। कविता और साहित्य मे जहाँ अनुभूति महत्वपूर्ण होती थी, माध्यमो के प्रभाव मे उसका स्थान तात्कालिकता और सनसनी ने ले लिया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसको रेखाकित करते हुए कहा कि ''कविता मे यदि देखे तो अनुभूति की बजाय सनसनी प्रमुख हो गई है। अनुभूति की सघनता की बजाय प्रौद्योगिकी से उत्पन्न आवेश और

---

20 कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिह, पृष्ठ 149

आवेश से मुखरित सनसनी कविता मे मुखरित होती दिखाई दती है। ओर इसके कई साक्ष्य देखे जा सकते हैं। नए कवियो मे एक महत्वपूर्ण नाम धूमिल का है जो कवियो मे समादृत रहे। उनके मुख्य कविता सग्रह के मुखबन्ध मे ही एक पक्ति उन्होने लिखी कि 'एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है।' कविता से या अनुभूति से बयान को अधिक महत्व देना एक प्रकार से इसी प्रौद्योगिकी से उत्पन्न सनसनी का लक्षण है। वह नारे को, बयान को या वक्तृता को अधिक महत्व देते हैं। चौथे सप्तक की भूमिका मे अज्ञेय ने यही शिकायत की हे कि नयी पीढी के कवि मे जो दोष है वह यह कि उसकी कविता बहुत बोलती है, बयान कुछ अधिक है। सनसनी और बयान का यह तत्व कविता मे हमे अनुभूति पर हावी होता दिखायी देता है। बयान ओर सनसनी का कविता के परिप्रेक्ष्य मे विवेचन यह एक भिन्न प्रश्न हो सकता है किन्तु इसी के साथ दूसरा ।क्ष यह है कि रचनाकारो का इन सचार माध्यमो के कारण वृहत्तर वैश्विक सत्य से साक्षात्कार हुआ है। इससे रचनाकारो की दृष्टि वैश्विक एव मानवीय हुई हे तथा उसका सवेदनात्मक विस्तार हुआ है। सवेदनात्मक जटिलता के कारण काव्य सृजन प्रभावित हुआ है और इसलिए यह अकारण नहीं कि शुद्ध साहित्यिक कविताएँ दुरूह सम्प्रेषण से जनसामान्य से कटकर विशेषीकृत हो गईं। इस स्थिति मे जब कविता से लय खो गया तो इन माध्यमो मे कविता के सर्वसुलभ रूप मे वह स्थान कैसे सभव है जहाँ हिसा भी सगीतमय हो।

ये माध्यम कविताओं को सम्प्रेषण का अवसर देते है। यदि कविता के समयानुकूल विविध प्रतिमानो यथा रस, छन्द, अलकार, काव्यभाषा, चित्रभाषा, बिम्ब, प्रतीक, नाटकीयता, प्रगीतात्मकता, विसगति, विडम्बना, फैन्टेसी आदि एव विविध काव्यान्दोलनो से निरपेक्ष होकर विचार करे तो कविता के लिए सृजनात्मकता एव सवेदनीयता की जो अनिवार्य शर्त है वह माध्यमो से प्रसारित इन कविताओ मे रहती ही हैं। किन्तु माध्यम एव कविता के लिए आवश्यक है कि ये एक दूसरे से रचनात्मक सबन्ध बनाते और जिससे जनता से काव्य बोध परिष्कार सम्भव हो सके। माध्यम सूचनात्मक हैं। उनके ऊपर ज्ञान प्रसारण के उद्देश्य का दबाव है। किन्तु कविता की भी उपयोगिता है—मानस चिकित्सा के उपयोगिता की। आज जहाँ व्यक्ति सूचनात्मक तत्र मे फँसकर एक तनाव का अनुभव कर रहा है, वहाँ से मानसिक चिति के सतुलन एव शाति की आवश्यकता है, उसके मन के रजन की आवश्यकता है इसलिए साहित्य और खासकर प्रगीतात्मक कविताएँ इस कार्य को बखूबी कर सकती हैं। विस्तीर्ण सूचनात्मक संसार से ज्ञान एव कर्म की असीम सभावना के द्वार खुले हैं। इससे मनुष्य की महत्वाकाक्षाओ का विस्तार हुआ है। फलतः एक सवेदनात्मक हडबडी का वातावरण बना है। इसलिए यह अकारण नहीं है कि आज सगीत (फास्ट म्यूजिक) पसद किया जा रहा है जो प्रगीतात्मक कम सगीतमय ज्यादा है।

अध्याय - आठ

साहित्य एवं माध्यम : सृजन एवं सम्प्रेषण

अध्याय - आठ

साहित्य एव माध्यम सृजन एव सम्प्रेषण

सृजन बिना सम्प्रेषण के अधूरा है। वस्तुत सम्प्रेषण की समस्या ही रचनाकार के लिए सृजनात्मक विवेक उत्पन्न करती है। रचनाकार जब अनुभूत सत्य को दूसरे तक पहुँचाने की चेष्टा करता है तब वह अपने सर्जनात्मक विवेक को उत्तेजित करता है। फलत कला या साहित्य का स्वरूप निर्मित होता है। इस कला या रचना को दूसरे तक पहुँचाने के लिए माध्यम चाहिए। अत साहित्य के लिए माध्यम अनिवार्य हो जाता है। साहित्य का माध्यम निरपेक्ष होना आत्मघाती है क्योकि सम्प्रेषण और प्रसार के बिना साहित्य आखिर किसके लिये ? फिर रचना के सम्प्रेषण के लिये माध्यम की उपयुक्तता पर विचार आवश्यक हो जाता है। पुन माध्यम के सदर्भ मे यह प्रश्न उठता है कि माध्यम रचना को किस हद तक सम्प्रेषित कर रहा है। इस तरह रचनाकार का माध्यम से द्वन्दात्मक सघर्ष शुरू होता है और माध्यम की सीमाओ एव सभावनाओ को अन्वेषित कर उसका उपयोग वह अपने रचना के सदर्भ म करता है। यह वैसे ही है जैसे एक नाटय लेखक रगमच की प्रकृति को ध्यान मे रखकर लेखन करता है। इस प्रकार से माध्यम के सापेक्ष नवीन विधा का प्रादुर्भाव होता है।

प्रश्न यह है कि यदि रगमच को ध्यान मे रखकर लिखने वाला लेखक साहित्यकार है तो इलेक्ट्रानिक मीडिया आदि अन्य माध्यमो का ध्यान म रखकर लिखने वाला साहित्यकार क्यो नहीं ? यह इसलिए कि जिस रचनात्मकता से एक साहित्यकार टकराता है उस तरह आधुनिक इलेक्ट्रानिक मीडिया या फिल्म का लेखक नहीं टकराता है। मात्र मनोरजन के लिए सस्ते उपन्यास लिखने वाला उपन्यासकार भी इसी प्रकार सच्चे अर्थों मे साहित्यकार नहीं कहा जा सकता है क्योकि उसका लेखन रचनात्मक नहीं होता बल्कि वे पाठक की इन्द्रियो का उत्तेजन मात्र करके निम्नकोटि का मनोरजन करने वाले होते हैं। फिल्म एव इलेक्ट्रानिक मीडिया की अधिकाश अभिव्यक्ति चाहे वह लेखन के स्तर पर हो अथवा सप्रेषण या प्रसारण के स्तर पर हो उसके लेखक या निर्देशक प्राय रचनात्मकता से नहीं टकराते वरन् वे ग्लैमर एव प्रचार के दबाव मे होते हैं।

फिर यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है कि यह रचनात्मकता क्या है और रचना मे किस रूप मे उपस्थित रहती है ? इसे पूर्णत शब्दो मे अभिव्यक्त करना दु साध्य है। रचनात्मकता जब जी चाहे जिस किसी रचना मे मनमाने ढग से पैदा नहीं की जा सकती। कुछ क्षण या एक समय विशेष ऐसा होता है जिसमे रचनाकार की रचना मे वह बिना बुलाए मेहमान की तरह स्वय आ सकती है या पहुप वास की तरह अपने पूरे जलाल के साथ स्वय प्रकट हो जाती है। शब्द की ताकत की सीमा का एहसास उस वक्त भी होता है जब हम रचनात्मकता को समझने या समझाने के लिए शब्दो का चयन करने लगते हैं। पूरी कोशिश करने पर यूँ लगता है जैसे बहुत कुछ अनकहा रह गया है या पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं हो पाया है। यही किसी श्रेष्ठ या अपने समय की पढने की परम्परा या आलोचना को चुनौती देने वाली रचना के साथ भी होता है। रचना मे बहुत कुछ अनभिव्यक्त या अनकहा रह जाता है वास्तव मे वह अनकहा ही रचना का प्राण तत्व होता है। उस प्राण तत्व को बिना कहे ही जो शक्ति रचना के पाठको के मन–मस्तिष्क और आत्मा तक पहुँचा देती है मुझे लगता है शायद वही शक्ति रचनात्मकता की शक्ति होती है। यह शक्ति पत्रकारिता के स्तर पर लिखे गए लेखन मे नहीं हो सकती क्याकि पत्रकार को तो जरूरत के मुताबिक तुरन्त लेख या टिप्पणी तैयार करनी होती है। वह साहित्यकार की तरह रचनात्मक क्षणो की प्रतिक्षा नहीं कर सकता। साहित्यकार के पास यह सहूलियत होती है कि जब उसको अन्तर से प्रेरणा मिले या रचनात्मक क्षणो का दबाव महसूस हो तब लिखे। अगर कोई साहित्यिक प्रेरणा या दबाव की प्रतीक्षा किए बिना साहित्य का सृजन करता है तो उसका साहित्य भी रचनात्मकता विहीन या अखबारी साहित्य ही होता है। सच कहा जाए तो वह साहित्य होता ही नहीं है। व्यावसायिक किताबो का निर्माण करने वाले लेखको के लेखन मे सबसे बडी कमी यही रहती है कि उसमे रचनात्मकता नहीं होती है। हॉ कभी–कभी पत्रकार के हाथ से लिखे जाने वाले लेख भी रचनात्मकता से परिपूर्ण होते हैं। ऐसे लेख पाठकों के हृदय पर अच्छी साहित्यिक रचनाओ जैसा ही प्रभाव छोडते हैं। अज्ञेय और रघुवीर सहाय के कई लेख इसके लिए उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किए जा सकते हैं।'[1] मीडिया के फीचर लेखन मे भी रचनात्मकता के यत्र–तत्र दर्शन होते हैं। मीडिया के लोग जिस दिन रचनात्मकता की इस शक्ति का ऐहसास कर लेंगे

---

1 जनसचार–सपादित राधेश्याम शर्मा का लेख पत्रकारिता और साहित्य – राकेश वत्स पृष्ठ–207।

मीडिया की शक्ति उसी दिन बहुगुणित हो जायेगी।

आधुनिक माध्यमो के वे लेखक या निर्देशक जो अपने को ग्लैमर से दूर रखकर मीडिया की आतरिक शक्तियो से टकराते हुए सृजनात्मक रहने की चेष्टा करते हैं निश्चित ही उनकी कृतियॉ श्रेष्ठ होती हैं। अगर उन्हे साहित्यकार कहे तो अप्रासगिक नहीं है क्योकि व उससे कम भी नहीं हैं। पहले भी केवल कवि ही साहित्यकार था और काव्य साहित्य का पर्याय था। किन्तु जैसे–जैसे नाटक एव पत्रकारिता का विकास हुआ उसके घात–प्रतिघात से निर्मित होती विधाए भी साहित्य की कोटि मे परिगणित होने लगीं। आधुनिक सदर्भ मे माध्यमो की कुछ सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के कारण सहित्य की परिधि मे सचार माध्यमो से सम्बन्धित साहित्य को भी लिया जा सकता है। इसमे बडी बाधा के रूप मे सृजनात्मक साहित्य की एक और विवशता यह है कि वह सच्चाई को व्यवस्थित और विन्यस्त तो करता है लेकिन उसे सरलीकृत करने को तैयार नहीं है। हम विराट सरलीकरण के युग मे रह रहे हैं फिर वे सरलीकरण विचारधारा के हो अथवा व्यवसाय के या सम्प्रेषण के। सृजनात्मक साहित्य इस विश्वास मे बद्धमूल है कि सचाई का सरलीकरण नहीं किया जा सकता। मासमीडिया पत्रकारिता आदि ऐसा ही सरलीकरण कर रहे हैं और सारे ससार पर छाते जा रहे हैं। सरलीकरण के विरूद्ध हठ किए साहित्य और अन्य कलाएँ ऐसे समय मे अलग–थलग पड जाए तो इसमे अचरज की बात नहीं है। [2]

मीडियाकर्मी के लिए रचनात्मक होने मे दूसरी बडी बाधा मीडिया पर पडने वाला सूचनात्मक दबाव है। मीडिया जीवन के स्थूल यथार्थ को अभिव्यक्त करना चाहता है घटनाओ एव उससे सबन्धित तथ्यो आदि को व्यक्त करना अपना उत्तरदायित्व समझता है। यह आवश्यक भी है क्योकि तथ्यात्मक ज्ञान के बिना जीवन सभव भी नहीं है। फिर प्रश्न उठता है कि मनुष्य को आखिर कितनी सूचना चाहिए ? सूचना, घटना, तथ्य आदि कभी साहित्य नहीं हो सकते। हॉ, साहित्य के लिए कच्चेमाल होने की सभावना अवश्य रख सकते हैं। इसे साहित्य नहीं कहा जा सकता है जैसे कि इतिहास को कभी भी साहित्य की उपाधि से विभूषित नहीं कर सकते। साहित्य और इतिहास मे हमेशा फर्क रहेगा, यह हो सकता है कि साहित्य मे ऐतिहासिक अनुभव को स्थान मिल जाए। सूचनात्मक होना किसी माध्यम का एक पक्ष है, जबकि

2. कुछ पूर्वग्रह अशोक बाजपेयी पृष्ठ 145

सूचनात्मक ससार के अन्तर्विरोध सवेदना आदि के माध्यम से जीवन की सूक्ष्म अभिव्यजना करना इसका दूसरा तथा अत्यत महत्वपूर्ण पक्ष है। हमारे शास्त्रो मे भी सूचना को उतना महत्वपूर्ण नहीं माना गया जितना साहित्य सगीत या कला को—

'साहित्य सगीत कला विहीन
साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीन ।''

आज मीडिया साहित्यकारो एव समाजशास्त्रियो के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है क्योकि मीडिया का प्रभाव अत्यत व्यापक एव तीव्र है। प्रिन्ट मीडिया के समय ऐसी समस्या नहीं थी। आज इलेक्ट्रानिक मीडिया के विकासात्मक दबाव मे प्रिट मीडिया भी अगभीर हो रही है उस पर अगुलियॉ उठ रही हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया के सापेक्ष प्रिंटमीडिया का विकास धीरे-धीरे हुआ। साहित्यकार एव समाजशास्त्री प्रिट मीडिया के विकास एव उपयोग के प्रति सचेत थे और उन्होने उसका माध्यम के रूप मे बेहतर प्रयोग किया। किन्तु आज सम्पूर्ण सचार प्रविधि जितनी तेजी से विकसित हो रही है उतनी तेजी से हम उसके उपयुक्त प्रयोग के बारे में गभीरता से सोच नहीं पा रहे हैं। दूसरे शब्दो मे जितनी तीव्रता से हार्डवेयर का विकास हो रहा है उतनी तीव्रता से माध्यम के लिए साफ्टवेयर अर्थात् श्रेष्ठ कार्यक्रमो का निर्माण नहीं हो पा रहा है। मीडियाकर्मी शीघ्रता मे कार्यक्रम का निर्माण चाहता है। इस क्षिप्रता मे उसके रचनात्मकता से चुकने का पर्याप्त खतरा है क्योकि मीडियाकर्मी के लिए यह उसकी व्यावसायिक आवश्यकता है। अत उसके लिए यह विवशता भी है। श्रेष्ठ रचना मन की प्रशात अवस्था मे निर्मित होती है, अत इस स्थिति मे श्रेष्ठ रचनाओ की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। दूसरे मीडिया सर्जनात्मक हाथों मे नहीं है। साहित्यकारो रचनाकारों का एक बहुत ही छोटा भाग मीडिया से जुडा है। तीसरे, सचार प्रविधि के विकास मे सत्ता का पूर्ण सहयोग है जबकि सृजनकर्मी उसके आखो से ओझल हैं फिर सत्ता क्यो चाहेगी कि लोगो के ज्ञान-चक्षु खुले इससे उसके निरकुश बने रहने मे खतरा है। स्वाभाविक ही है कि इस असतुलित विकास मे रचनाकर्मी मीडिया से होड़ लेने मे अक्षम हो।

विगत मे रचनाकार के लिए सप्रेषण उस रूप मे समस्या नहीं थी जिस रूप मे आज हैं पहले सम्प्रेषण के सीमित माध्यम थे। अब रचनाकार के लिए सम्प्रेषण की असीमित सभावनाए—हैं और सप्रेषण

से भी आगे प्रसारण के विविध माध्यम और चैनल उसके समक्ष है। आज रचनकार के पास पर्याप्त सभावनाए हैं। वह माध्यम सापेक्ष नई–नई विधाओ मे रचना कर सकता है। अत रचनाकार के लिए सम्प्रति सम्प्रेषण एक समस्या है जिनसे टकराए बिना वह नहीं रह सकता। शायद हर समय लेखको ने इस दबाव को महसूस किया हो। किन्तु आज के युग मे यह दबाव महज सृजनात्मक स्तर पर ही नहीं मनुष्य के व्यापक सामाजिक परिवेश मे दखल देने लगा है। पहले लेखक इस दबाव से सीधे–सीधे निपटता था अपनी रचना मे सुलझाता था– सम्प्रेषणीय एक समस्या नहीं थी वह आत्मसघर्ष का ही एक अग था जिसे सृजनकर्म से अलग करके नहीं देखा जाता था।[3] उस समय आज की तरह के सचार माध्यम नहीं थे फिर भी कबीर सूर, तुलसी आदि कवियो के वचन जनसख्या के एक बहुत बडे भाग तक पहुँचते थे और प्रभावित करते थे। आज समस्या है। आज मौखिक माध्यम से तेज माध्यम साहित्यकार के समक्ष चुनौती रूप मे है। 'उसके सामने भाषा के जो दूसरे साधन हैं उनमे ऐसी क्षमता आ गई है कि इसके पहले कि भाषा पहुँचे अखबार पहुँच चुका होता है। इसके पहले कि सृजनात्मक शब्द आपके दिमाग मे आए, एक दृश्य–श्रव्य शब्द आपके उपर असर कर चुका होता है। इसलिए सृजनात्मक शब्द की गति से अधिक तीव्र गति वाली एक पूरी सस्कृति विकसित हो रही है'[4] इस परिस्थिति मे वह इन माध्यमो से विलग होकर रह नहीं सकता इस चुनौती को उसे स्वीकार करनी होगी।

सृजनात्मक साहित्य मौलिक होता है 'इसे रचनाकार और रचना दोनो का निजी वैशिष्ट्य कहा जा सकता है जिस रचना मे यह सृजनात्मकता यह मौलिकता यह निजी वैशिष्ट्य जितना ही अधिक होगा, वह रचना उतनी ही श्रेष्ठ होगी।[5] मीडिया की आतरिक शक्तियों से टकराकर सृजनात्मकता को सुरक्षित बचा लेने वाला रचनाकार यदि उस माध्यम विशेष के लिए कोई श्रेष्ठ रचना निर्मित की है तो कृति भी मौलिक है और उसका मूल्याकन लिखित साहित्य के प्रतिमानो के आधार पर नहीं किया जा सकता है। यदि कविता की समीक्षा के प्रतिमानो के आधार पर नाटक या कथा–साहित्य की समीक्षा नहीं की जा सकती तो लिपिबद्ध साहित्य के अनुसार आकाशवाणी टेलीविजन या स्क्रीन पर उतरे साहित्य

---

3 शब्द और स्मृति निर्मल वर्मा पृष्ठ 38
4 साहित्य और सामाजिक मूल्य डॉ हरदयाल पृष्ठ 46
5 कुछ पूर्वग्रह अशोक बाजपेयी पृष्ठ 109

की समीक्षा कैसे सभव है ?

किसी माध्यम में रूपातरित रचना का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य मे विवेचन होता है। उसके साथ ही उस माध्यम के लिए निर्मित मौलिक रचना का भी साहित्यक परिपेध्य मे विवेचना होना चाहिए। दूसरे शब्दो, मे किसी साहित्यिक कृति पर आधारित धारावाहिक या फिल्म आदि की समीक्षा हम साहित्यिक मानबिन्दुओ के आधार पर करते हैं किन्तु मूल रूप मे उस माध्यम विशेष के लिए स्वतत्र रूप से लिखे गये रचना का मूल्याकन हम उस तरह मे नहीं करते हैं। वस्तुत फिल्म आकाशवाणी और टीवी आदि के कृतियो के मूल्याकन या समीक्षा की भाषा या प्रतिमान का निर्माण अभी तक नहीं हो सका है जिसका उत्तरदायित्व मूलत साहित्य समीक्षको पर है। इसे शुद्ध साहित्य कर्म के रूप मे न भी लिया जाय तो भी सचार साहित्य के रूप मे लिया जाना चाहिए। उसे हेय मानना सम्प्रेषण एव प्रसारण के महत्वपूर्ण माध्यम को गैर–जिम्मेदार लोगो के हाथो मे सौंपना होगा। साहित्य समाज के आगे चलने वाली जलती हुई मशाल है अत माध्यम को भी अपने परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत साहित्य ससार की समीक्षा को गभीरता से लेनी चाहिए।

साहित्य की उत्कृष्टता के पीछे उसकी आलोचनात्मक शक्ति है। साहित्य अपनी इस शक्ति से प्रखर हुआ है। किसी भी सृजनात्मक लेखन के लिए समालोचना आवश्यक है। साहित्य मे आलोचना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। मीडिया के साथ सकट यह है कि उसके गभीर आलोचक नहीं है। उसके कार्यक्रमो की स्वस्थ आलोचना नहीं मिलती। उसके बारे मे प्रिन्ट मीडिया मे जो कुछ भी प्रकाशित होता है वह या तो मात्र सूचनात्मक या प्रचारात्मक होता है या प्रशसात्मक। इलेक्ट्रानिक मीडिया अथवा फिल्म की समीक्षा मे पृष्ठों का अधिकाश भाग तस्वीरो से भरा होता है। मीडिया बहुत हद तक सृजनात्मक होने पर भी साहित्य की अन्य विधाओ की ऊँचाई तब तक नहीं प्राप्त कर सकता जब तक कि वह अपनी आलोचनात्मक विधा का निर्माण न कर ले। समय रहते माध्यमो ने आत्मपरीक्षण नहीं किया तो उनकी सृजनात्मक शक्ति के कुठित होने की पूर्णसभावना है और इस स्थिति में वे सास्कृतिक अपदूषण के औजार मात्र बने रहेगे।

सम्प्रेषण माध्यम बदल जाने मात्र से कोई कृति असाहित्यिक नहीं हो जाती बल्कि "किसी भी कलाकृति का महत्व उसकी सम्प्रेषणीयता पर नहीं बल्कि उसमे अन्तर्निहित उद्देश्य और उस उद्देश्य को

रूपापित करने की जिम्मादारी द्वारा निर्धारित हाता है। [6] किसी कृति या रचना का मूल्याकन लोकप्रियता एव सप्रेषण माध्यम क आधार पर नहीं हाना चाहिए बल्कि उसमे अन्तर्निहित प्रेरणा के आधार पर होना चाहिए। यह इन माध्यमा का ही दबाव है कि किसी भी रचना या कृति को उसके प्रभाव–बिन्दु से ऑका जाता है। यहीं से लोकप्रियता का मानदण्ड जन्म लता है। साहित्य या सस्कृति के मूल्याकन के अब के औजारो मे यह एकदम नया तत्व जुडा है। यही तत्व इन सचार माध्यमा की सस्कृति–सामग्री का निर्णायक है। यहॉ वही पैदा किया जाएगा जो लोकप्रिय हो बाक्स पर हिट या टी वी पर दर्शको को अधिकाधिक बाधे रख सके। [7]

साहित्य माध्यम के लिए कच्चामाल हे इस आधार पर साहित्य एव माध्यम का सम्बन्ध निर्धारित नही किया जा सकता। किसी एक साहित्यिक रचना की किसी दृश्य–श्रव्य माध्यम मे प्रस्तुति उस रचना का उस माध्यम म रूपातरण है। जब तक साहित्य स्वय उस माध्यम की रचना प्रक्रिया का हिस्सा नही बनता तब तक रचना की सार्थक प्रस्तुति सभव नहीं है। इसी प्रकार अक्षरस कहानी का अनुकरण भी स्वतत्र एव मोलिक रचना का निर्माण नही है। साहित्यिक कृति एव माध्यम के बीच एक द्वन्दात्मक सबध हो सकता है जहॉ दोनो एक दूसरे के लिए कच्चे माल के रूप मे नहीं बल्कि अन्तर्निहित सभावना का साक्षात्कार करते हुए अपनी स्वतत्र इयत्ता स्थापित कर सकते हैं जहॉ एक विधा का मर्म दूसरी विधा के प्रतीको द्वारा आलोकित हो सकता है [8] किन्तु इन दोनो क बीच प्राविधिक तत्व आदि गैर–रचनात्मक बिचौलियो की जितनी ही उपस्थिति होगी उतना ही सास्कृतिक क्षरण होगा। [9]

मीडिया के प्रमुख उद्देश्यो मे सूचना एव मनोरजन है। सूचना ने साहित्य को किस तरह प्रभावित किया है इसकी पूर्व मे चर्चा हो चुकी है रही बात मनोरजन की तो मनोरजन मनुष्य की जैविक आवश्यकता है। 'वैसे मनोरजन के बहुत थोडे स्वरूप ही ऐसे हैं जिनका उद्देश्य मनोरजन मात्र हो और जिनमे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, प्रकट अथवा अन्तर्निहित रूप से दूसरे उद्देश्य धुले–मिले न हो। नानी की कहानियो और कठपुतलियो के नाच तक मे एक सबक होता था। आज की कथा मे सशक्त सामाजिक

---

6 शब्द और स्मृति निर्मल वर्मा पृष्ठ 86
7 मीडियो और साहित्य सुधीश पचौरी पृष्ठ 19
8 दृष्टव्य शब्द और स्मृति, निर्मल वर्मा पृष्ठ 89
9 दृष्टव्य माध्यम और साहित्य सुधीश पचौरी पृष्ठ 73

आलोचना सभव है सिनेमा रेडियो और टेलीवीजन के मनोरजन के उद्देश्य से प्रस्तुत किये गए कार्यक्रम अनेक ऐसे सन्देशो का वहन कर सकते हैं जिनकी कल्पना सभवत उनके प्रस्तुतकर्त्ताओ को भी न हो। मानस की गहराई मे अनेक प्रभावो का विश्लेषण अब होने लगा है। इस नयी समझ का उपयोग अधिकाशत व्यावसायिक हितो की दृष्टि से किया गया है।[10] किन्तु माध्यमो द्वारा मनारजन की इस आतरिक शक्ति का प्रयोग उतना समाज की दृष्टि एव सुरूचि सम्पन्नता की वृद्धि करने मे नहीं हुआ है। जन सचार माध्यम जनरूचि बनाने–बिगाडने की महती भूमिका मे है। प्रमुखत इलेक्ट्रानिक मीडिया का अपने उद्देश्य से विचलन हो गया है और वे सस्ते मनोरजन का ढाँचा मात्र बनकर रह गए है। नाटक काव्य अथवा कथा साहित्य का मनोरजन एक प्रमुख गुण होता है। साहित्य का यह स्वरूप मनोरजन के माध्यम से समाज की सुरूचि सम्पन्नता बढाने मे सहायक है। अत सचार माध्यम मे इन सभावनाओ का सार्थक प्रयोग किया जा सकता है किन्तु मात्र मनोरजन के नाम पर रचना की जीवनी शक्ति से खिलवाड करने की छूट कदापि नहीं दी जा सकती है।

साहित्य और माध्यम के परिप्रेक्ष्य मे इनके सम्बन्धो की चर्चाएँ प्राय एक बुनियादी अन्तर्विरोध को स्वीकार करके शुरू की जाती है कि साहित्य एक अलग क्रिया है और माध्यम एकदम अलग। साहित्य और माध्यम का उक्त द्वैत यह भूलकर ही निर्मित किया जाता है कि साहित्य माध्यम नहीं होता है और कि माध्यम बाहर से आता है बाहरी चीज है। कहने की जरूरत नहीं कि हमारे हिन्दी समीक्षा शास्त्र और तज्जन्य साहित्य बोध की एक बुनियादी बाधा यही समझ है कि साहित्य माध्यम से भिन्न कोई गैर माध्–यमित' (नान–मीडिएट) प्रक्रिया है जो न केवल माध्यम–प्रक्रिया से निरपेक्ष है बल्कि उसके प्रभाव से भी मुक्त, स्वनिर्भर धुली–पुछी अकलुषित, निष्कलक प्रक्रिया है ऐसा है नहीं। माध्यम रहित साहित्य एक असभव स्थिति है।'[11] किन्तु पूर्वोक्त विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि वर्तमान मे माध्यमो की साहित्य सापेक्ष गतिविधियो से सतुष्ट हुआ जा सकता है। विवेचना का सदर्भ स्थिति एव सभावना दोनो पर आधारित है। अत इसकी विवेचना को पूर्णता मे लेना ही उपयुक्त है। अभी तक हमने अखबार पत्रिका एव पुस्तको की आखो से ही साहित्य को जाना है। माइक्रोफोन कैमरा स्क्रीन एव माउस

10 परम्परा इतिहास बोध और सस्कृति श्यामा चरण दूबे पृष्ठ 106
11 मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी पृ 21

(कम्प्यूटर) की ऑखो से देखने पर साहित्य का स्वरूप क्या होगा। अभी यह विशद विवेचना की सभावना से भरा हुआ है।

सचार–साहित्य की चर्चा का यह अर्थ कदापि भी इस तरह नहीं लिया जाना चाहिए कि यह लिखित साहित्य की महत्ता को कम करने का और मीडिया को महिमा मडित करने का प्रयास है। प्राविधिक विकास चाहे जितना हो जाए अथवा मनुष्य चाहे जितना व्यावसायिक हो जाए मुद्रित शब्द का महत्व कभी नहीं घटेगा। साक्षरो के बीच लिखित साहित्य ही सर्वदा महत्वपूर्ण होगा भले ही निरक्षरो के बीच दृश्यो एव छवियो वाली सम्प्रेषण साधन रूपी माध्यमो की महिमा हो। भारत ही नहीं दूरदर्शन जैसे सचार माध्यमो के आगमन और प्रसार ने पश्चिमी देशो के विचारको को एक बार झकझोर कर रख दिया और उनमे से कुछ इस बात की घोषणा करने के लिए विवश हो गए कि प्राविधिक समाज मे साहित्य ही नहीं, शब्दमात्र समाप्त हो जाएगा। यह भविष्यवाणी वहॉ सत्य सिद्ध नहीं हुई। अमरीका, इग्लैण्ड, फ्रास जर्मनी, रूस जैसे प्राविधिकी की दृष्टि से विकसित देशो मे न तो साहित्य समाप्त हुआ और न ही लिखित–मुद्रित शब्द यानी पुस्तक। यह अवश्य हुआ कि प्राविधिकी के विकास ने साहित्य के स्वरूप और प्रकृति को प्रभावित करके उसमे बहुत परिवर्तन उपस्थित कर दिया[12] प्राविधिकी के विकास और औद्योगिकीकरण ने कस्बो को नगर और नगरो को महानगर बनाया है नगरीकरण की इस प्रक्रिया ने एक ओर व्यक्ति की पहचान को क्षरित किया है दूसरी ओर व्यक्ति मे अपनी पहचान बनाए रखने की छटपटाहट भर दी है। साहित्य और जीवन मे चलने वाले नित्य नए फैशन व्यक्ति को निजी अनुभव तक सीमित रह जाना, अकेलापन, कुण्ठा विवशता उब इत्यादि के अनुभव–प्राविधिक के सूक्ष्म प्रभाव हैं जिन्हे आज बराबर अनुभव किया जाता है।'[13] इसी प्रभाव के चपेट मे आज माध्यम भी है लेकिन साहित्य ही है जो समाज मे पनपे इन अन्तर्विरोधो को उजागर कर समाज के समक्ष जलती हुई मशाल दिखा सकेगा। दृश्य शब्द को स्थापनापन्न नहीं कर सकता दृश्य के बवडर मे भी शब्दब्रह्म के आलोक की महत्ता सर्वदा अक्षुण्ण रहेगी।

---

12 साहित्य और सामाजिक मूल्य–डॉ हरदयाल पृ 51

13 साहित्य और सामाजिक मूल्य–डॉ हरदयाल पृष्ठ 54

परिशिष्ट

(क) सन्दर्भ सूची

(ख) इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एवं साहित्य

सदर्भ सूची

(1) समाचार सपादन और पृष्ठ सज्जा डॉ रमेश कुमार जेन रास्करण 1996

(2) हिन्दी पत्रकारिता कृष्ण विहारी मिश्र प्रथम सस्करण 1994

(3) जनसचार सपादक राधेश्याम शर्मा सपादक–दैनिक टिव्यून चण्डीगढ हरियाणा सहित्य अकादमी चण्डीगढ प्रथम सस्करण 1988

(4) जनमाध्यम ओर पत्रकारिता दो खण्ड श्री राम दीक्षित सहयोगी साहित्य सस्थान कानपुर

(5) लोक सम्पर्क लेखक राजेन्द्र एम ए जेन्डी सयुक्त निदेशक लोक सम्पर्क विभाग हरियाणा प्रथम सस्करण 1972 अक्टूवर

(6) स्वतत्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता डॉ अर्जुन तिवारी प्रथम सस्करण 1982

(7) हिन्दी पत्रकारिता (शोध प्रबन्ध) डॉ कृष्ण बिहारी मिश्र भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1968, द्वितीय सस्करण 1985

(8) हिन्दी पत्रकारिता राष्ट्रीय नव उद्‌वोधन डॉ भापाल शर्मा रार पब्लिशिग हाउस, दिल्ली प्रथम सस्करण 1978

(9) समाचार पत्रो का इतिहास अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस, प्रथम सस्करण सवत 2010

(10) पराडकर जी ओर पत्रकारिता लक्ष्मीशकर व्यास भारतीय ज्ञान पीठ काशी प्रथम सस्करण 1960

(11) सवाद और सवाददाता राजेन्द्र हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ द्वितीय सस्करण 1986

(12) आस्था का ऑगन आलोक मेहता सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1998

(13) पत्रकारिता सन्दर्भ ज्ञानकोष याकूब अली खॉ राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रथम सस्करण 1984

(14) खोजी पत्रकारिता डॉ हरिमोहन एव हरिशकर जोशी तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1995

(15) जनसचार की विधा साक्षात्कार डॉ विष्णु पकल माया प्रकाशन जयपुर

(16) मीडिया के पचास वर्ष सपादक प्रेमचन्द पातजलि राधा पब्लिकेशन्स दरियागज नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1997

(17) समाचार एव प्रारूप लेखन डॉ राम प्रकाश एव डॉ दिनेश कुमार गुप्त राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा लि नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1993

(18) पत्रकारिता के सिद्धान्त डॉ गुरूशरण लाल भारत बुक सेटर 17 अशोकमार्ग लखनऊ प्रथम सस्करण 1997

(19) पराडकर जी और हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियॉ सम्पादन अच्युतानन्द मिश्र एव बच्चन सिह सहकारी समिति लिमिटेड वाराणसी प्रथम सस्करण 1986

(20) राष्ट्रीय सकट मे मीडिया की भूमिका अनुवादक एव सम्पादक वीर बाला अग्रवाल और वी एस गुप्त रावत पब्लिकेशन्स 3 न 20 जवाहरनगर जयपुर प्रथम सस्करण 1996

(21) आधुनिक पत्रकारिता डॉ अर्जुन तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम सस्करण 1990

(22) कराघरे मे डॉ रामशरण जोशी साटश प्रकाशन प्रा लि 14 स्कूलकेन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1995

(23) हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका जगदीश्वर चतुर्वेदी अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा लि)
29 अ पाकेट डी, दीप इन्क्लेव, अशोक बिहार 3 दिल्ली

(24) पत्रकार दृष्टक और पत्रकारिता डॉ रमेश जैन अध्यक्ष पत्रकारिता एव जनसचार विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय कोटा राजस्थान प्रकाशन त्रिपोलिया बाजार जयपुर, प्रथम सस्करण 1995

(25) समकालीन पत्रकारिता मूल्याकन और मुद्दे सपादक राजकिशोर वाणी प्रकाशन 21–अ दरियागज नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1994

(26) हिन्दी पत्रकारिता के विविध स्वरूप रमेश जैन राजस्थान प्रकाशन जयपुर प्रथम सस्करण 1995

(27) बहुजन सम्प्रेषण क माध्यम (मारा मीडिया की कथा) जगदीश चन्द्रमाथुर आई सी एस, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना प्रथम सस्करण 1975

(28) शब्द की साख (भारत मे रेडिया प्रसारण) केशव चन्द्र वर्मा लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1990

(29) पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी साहित्य सगम इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1987

(30) समय और सिनेमा विनोद भादद्वाज प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1994

(31) सिनेमा की समझ विनोद भारद्वाज

(32) नया सिनेमा (कला फिल्मे) श्री विनोद भारद्वाज उपरोक्त

(33) भारतीय नया सिनेमा सुरेन्द्र नाथ तिवारी अनामिका पब्लिसर एव डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली प्रथम सस्करण 1996

(34) रग मच और नाटक की भूमिका डॉ लक्ष्मी नारायण लाल नेशनल पब्लिशिग हाउस नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1965

(35) भारतीय रगमच आद्य रगाचार्य अनुवादक शुभा वर्मा नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली सस्करण 1994

(36) सिनेमा की सवदना विजय अग्रवाल प्रतिभा प्रतिष्ठान 1685 दखनीराम स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग नइ दिल्ली 2, प्रथम सस्करण 1995

(37) रगदर्शन, नेमिचन्द्र जैन अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2/36 असारी रोडा दरियागज, नई दिल्ली सस्करण 1967

(38) नाटक और रगमच राजकुमार हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी प्रथम ससकरण 1961

(39) नाटयशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक हजारी प्रसाद द्विवेदी एव पृथ्वी नाथ द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड प्रथम सस्करण 1963

(40) हिन्दी रगमच विविध आयाम डॉ रेखा गुप्ता बोहरा प्रकाशन, चौडा रास्ता जयपुर प्रथम सस्करण 1996

(41) आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता डॉ प्रेमलता लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1993

(42) सस्कृत और हिन्दी नाटक रचना और रग कर्म जयकुमार जलज राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1985

(43) दृश्य अदृश्य नेमिचन्द्र जैन वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सस्करण 1994

(44) अवधारणाओ का सकट पूरन चन्द्र जोशी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1995

(45) कविता, नाटक और अन्य कला डॉ विपिन अग्रवाल साहित्य भवन प्राइवेट लि प्रथम सस्करण 1995, पूर्व अध्यक्ष भौतिक इ वि वि

(46) शब्द और स्मृति निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली तृतीय सस्करण 1995

(47) लिखने का कारण रघुवीर सहाय राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली प्रथम सस्करण 1978

(48) साहित्य का परिवेश सम्पादक– सच्चिदानन्द वात्स्यायन नेशनल पब्लिशिग हाउस, नयी दिल्ली प्रथम सस्करण 1985

(49) विवेक विवेचन केदारनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1981

(50) सरोकार, गिरिराज किशोर नेशनल पब्लिशिग हाउस नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1994

(51) Listening & Viewing, (weriting on mass media), By- N L Chowla, Edited by M V Desai, Sanchar Publishing House in association with Namedia Foundation Published by- Jagdish Malhotra, Sanchar Publishing House New Delhi - 110017, First Publication 1991

(52) The Press, M Chalapathi Rav, National Book Trust New Delhi, Edotion 1974

(53) India's Inforamation Revolution Arvind singhal & Everett M Rogers, Sage Publications Pvt Ltd , M-32 Greator Kailash Marpet 1, New Delhi - 110048, First Published 1989

(54) सूचना सम्प्रेषण एव समाज डॉ वी एस निगम मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल,

प्रथम संस्करण 1994

(55) हिन्दी क यशस्वी पत्रकार क्षेमचद सुमन प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मत्रलय नई दिल्ली सस्करण 1986 अप्रेल

(56) पत्र पत्रकार आर पत्रकारिता राजन्द्र शकर प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मत्रालय भारत सरकार सस्करण दिसम्बर 1990

(57) History of Journlism & Media of mass communication By Sanjeev Bhanawat, University Publication, Jai Pur

(58) मीडिया और साहित्य सुधीश पचौरी राजसूर्य पकाशन दिल्ली सस्करण 1998

(59) टी वी टाइम्स सुधीश पचौरी मेधा बुक्स दिल्ली सस्करण 1998

(60) समाचार सकलन और लेखन नन्दकिशोर त्रिखा उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान लखनऊ सस्करण द्वितीय 1990

(61) गद्य के विविध रूप एव पत्रकारिता डॉ प्रतीक मिश्र, ग्रन्थम कानपुर सस्करण 1995

(62) साहित्य की मान्यताएँ भगवती चरण वर्मा हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद सस्करण 1962

(63) आकाशवाणी राम बिहारी विश्वकर्मा प्रकाशन विभाग सूचना एव प्रसारण मत्रालय भारत सरकार सस्करण अप्रैल 1987

(64) पत्रकारिता के पहलू राजकिशोर साहित्य सदन कानपुर सस्करण 1988

(65) राष्ट्रवाणी रमश नरायण तिवारी प्रकाशन विभाग सूचना एव प्रसारण मत्रलय भारत सरकार सस्करण मार्च 1986

(66) Organisation & Management of News Media Sanjeev Bhanawat, University Publication, Jaipur

(67) Principales and Techniques of new reporting Sanjeev Bhanawat

(68) सम्पादन कला सजीव भानावत

(69) पत्रकारिता और भाषा योग्यता सजीव भानावत

(70) हिन्दी की दशा और पत्रकारिता पडित बालकृष्ण भटट हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सस्करण 1983

(71) भारतीय विज्ञापन मे नैतिकता डॉ मधु अगवात प्रकाशन विभाग सूचना एव प्रसारण मत्रलय भारत सरकार सस्करण अपैल 1995

(72) दूरदर्शन विकास से बाजार तक सुधीश पचोरी प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली सस्करण 1996

(73) साहित्य के नए दायित्व रामस्वरूप चतुर्वेदी (सचार साधन और कला माध्यमो के सदर्भ मे)

(74) केन्द्र और परिधि अजेय नेशनल पब्लिशिग हाउस सस्करण 1984

(75) कुछ पूर्वग्रह अशोक वाजपेयी राजकमल प्रकाशन प्रा लि, प्रथम सस्करण 1984

(76) साहित्य और सामाजिक मूल्य डॉ हरदयाल विभूति प्रकाशन के–14 नवीन शाहदरा दिल्ली

(77) परपरा इतिहास बोध और सस्कृति श्यामाचरण दूबे राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1991

(78) भारतीय प्रसारण विविध आयाम डॉ मधुकर गगाधर प्रवीण प्रकाशन मेहरौली नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1988

(79) पत्रकारिता सकट और सत्रास हेरम्ब मिश्र

(80) लोक साहित्य की भूमिका डॉ कृष्ण देव उपाध्याय साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद सस्करण 1992

(81) लोक सगीत की रूपरेखा डॉ कृष्णदेव उपाध्याय साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड इलाहाबाद सस्करण 1992

(82) दूरदर्शन सम्प्रेषण और सस्कृति सुधीश पचौरी आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली 175

(83) हिन्दी प्रत्रकारिता विविध आयाम दो भाग सपादक– डॉ वेद प्रताप वैदिक

(84) नाट्यशास्त्र भरत मुनि

(85) भरत ओर उनका नाटयशास्त्र डॉ ब्रजबल्लभ मिश्र प्रकाशक उत्तर मध्य क्षेत्र सास्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद

(86) शिव पूजन रचनावली

(87) साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द, हस प्रकाशन इलाहाबाद सस्करण अक्टूबर 1983

(88) अज्ञेय परिचय एव प्रतिनिधि कविताएँ सम्पादित विद्यानिवास मिश्र राजपाल एण्ड सन्स,

दिल्ली सस्करण 1990

(89) कविता के नए प्रतिमान नामवर सिह राजकमल प्रकाशन प्रा लि नई दिल्ली सस्करण 1993

(90) सर्जन और सम्प्रेषण सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय

(91) समकालीन कविता का यथार्थ डॉ परमानन्द श्रीवास्तव हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ सरकरण 1988

(92) काव्य और कला तथा अन्यनिबन्ध जयशकर प्रसाद डायमड पाकेट बुक्स नई दिल्ली सस्करण 1988

Certain Note Books Published by Indira Gandhi National Open University, Delhi on Journlism and mass communication

(93) Introduction to communication

(94) Journlism

(95) Mass Media & Development

(96) Editing

(97) International Communication

(98) Specialised Reporting

(99) Wring for Radia & Telivision

(100) Elements in Mass Media

(101) Relation between mass Media and Society

(102) Origin & Development of Mass Media in India

कोश एवं इतिहास ग्रन्थ

(1) हिन्दी साहित्य ओर सवदना का विकास रामस्वरूप चतुर्वेदी

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ नगेन्द्र

(4) हिन्दी साहित्य कोश सम्पादित धीरेन्द्र वर्मा

प्रतिवेदन (Repoıts)

(1) सूचना और प्रसारण मत्रालय भारत सरकार वार्षिक रिपार्ट 97–98

(2) All INDIA RADIO 1996

(3) Doordarshan 1997 (Andıence Research Unıt Dırectorate General Door Darshan)

(4) हिन्दी साहित्य सम्मेलन 46वॉ अधिवेशन बम्बई सन 1994 का प्रतिवेदन

(5) इण्डिया टुडे साहित्य वार्षिकी 19 उत्तर प्रदेश साहित्य वार्षिकी

विशेष लेख

(1) कलम का सिपाही अमृत राय

(2) रगमच, जयशकर प्रसाद

भाषण

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वृन्दावन अधिवेशन 1925 मे पराडकर जी द्वारा दिया गया भाषण

अन्य माध्यम

(1) आकाशवाणी

(2) दूरदर्शन

(3) इन्टरनेट – WWW 123 India Com

WWW Khoj Com

malaiya @cs colostate edu

पत्रिका एव जर्नल

(1) सचार माध्यम भारतीय जन सचार सस्थान (IIMS) दिल्ली की त्रैमासिकी

(2) हिन्दुस्तानी, हिन्दुसतानी एकेडमी का त्रैमासिक

(3) आजकल दिल्ली

(4) श्रोता समाचार, इलाहाबाद

(5) कम्प्यूटर सचार सूचना

(6) योजना

(7) वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता का मासिक

(8) भारतीय पत्रकार जगत प्रेस काग्रेस आफ इण्डिया का प्रवक्ता मासिक

(9) "विदुर", भारतीय प्रेस सस्थान (Press Institute of India) का जर्नल

अन्य माध्यम

(1) आकाशवाणी

(2) दूरदर्शन

(3) इन्टरनेट – WWW 123 India Com

WWW Khoj Com
malaiya @cs colostate edu

पत्रिका एव जर्नल

(1) सचार माध्यम, भारतीय जन सचार सस्थान (11MS) दिल्ली की त्रैमासिकी

(2) हिन्दुस्तानी हिन्दुसतानी एकेडभी का त्रैमासिक

(3) आजकल, दिल्ली

(4) श्रोता समाचार, इलाहाबाद

(5) कम्प्यूटर सचार सूचना

(6) योजना

(7) वागर्थ भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता का मासिक

(8) भारतीय पत्रकार जगत प्रेस काग्रेस आफ इण्डिया का प्रवक्ता मासिक

(9) "विदुर", भारतीय प्रेस सस्थान (Press Institute of India) का जर्नल

समाचार पत्र

दैनिक जागरण

स्वतत्र चेतना

राष्ट्रीय सहारा

दि मारेल (साप्ताहिक)

अमृत प्रभात

हिन्दुस्तान

परिशिष्ट (ख)

इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा एवं साहित्य

Brief History of Hindi. Hindi started to emerge as Apabhramsha in the 7th cent and by the 10 cent became stable Several dialects of Hindi have been used in literature Braj was the popular literary dialect until it was replaced by Khari boli in the 19th century

Background The period of Prakrits and Classical Sanskrit (dates are approximate)
750 BCE Gradual emergence of post-vedic Sanskrit
500 BCE Prakrit texts of Buddhists and Jains originate (Eastern India)
400 BCE Panini composes his Sanskrit grammar (Western India) reflecting transition from Vedic to Paninian Sanskrit
322 BCE Brahmi script inscriptions by Mauryas in Prakrit (Pali)
250 BCE Classical Sanskrit emerges [Vidhyanath Rao] 100 BCE-100 CE Sanskrit gradually replaces Prakrit in inscriptions
320 The Gupta or Siddha-matrika script emerges

Apabhranshas and emergence of old Hindi
400 Apabhransha in Kalidas's Vikramorvashiyam
550 Dharasena of Valabhi's inscription mentions Apabhramsha literature
779 Regional languages mentioned by Udyotan Suri in "Kuvalayamala"
769 Siddha Sarahpad composes Dohakosh, considered the first Hindi poet
800 Bulk of the Sanskrit literature after this time is commentaries [Vidhyanath Rao]
933 Shravakachar of Devasena, considered the first Hindi book
1100 Modern Devanagari script emerges
1145-1229 Hemachadra writes on Apabhransha grammar

Decline of Apabhransha and emergence of modern Hindi
1283 Khusro's pahelis and mukaris Uses term "Hindavi"
1398-1518 Kabir's works mark origin of "Nirguna-Bhakti" period
1370- Love-story period originated by "Hansavali" of Asahat
1400-1479. Raighu last of the great Apabhramsha poets
1450 "Saguna Bhakti" period starts with Ramananda
1580 Early Dakkhini work "Kalmitul-hakayat" of Burhanuddin Janam
1585 "Bhaktamal" of Nabhadas an account of Hindi Bhakta poets
1601 "Ardha-Kathanak" by Banarasidas first autobiography in Hindi
1604 "Adi-Granth" a compilation of works of many poets by Guru Arjan Dev
1532-1623 Tulsidas, author of "Ramacharita Manasa"
1623 "Gora-badal ki katha" of Jatmal, first book in Khari Boli dialect (now the standard dialect)
1643 "Recti" poetry tradition commences according to Ramchandra Shukla
1645 Shahjehan builds Delhi fort, language in the locality starts to be termed Urdu
1667-1707 Vali's compositions become popular, Urdu starts replacing Farsi among Delhi nobility
It is often called "Hindi" by Sauda, Meer etc

Modern Hindi literature emerges
1805 Lalloo Lal's Premsagar published for Fort William College Calcutta [Daisy Rockwell]
1813-46 Maharaja Swati Tirunal Rama Varma(Travancore) composed verses in Hindi along with South Indian languages
1826 "Udanta Martanda" Hindi weekly from Calcutta
1837 Phullori, author of "Om Jai Jagdish Hare" born
1839,1847 "History of Hindi Literature" by Garcin de Tassy in French [Daisy Rockwell]
1833-86; Gujarati Poet Narmad proposed Hindi as India's national language
1850 The term "Hindi" no longer used for what is now called "Urdu"
1854 "Samachar Sudhavarshan" Hindi daily from Calcutta
1873: Mahendra Bhattachary's "Padarth-vigyan" (Chemistry) in Hindi
1877 Novel "Bhagyavati" by Shraddharam Phullori
1886 "Bharatendu period" of modern Hindi literature starts
1893 Founding of the Nagari Pracharini Sabha in Benares [Daisy Rockwell] 1900 "Dvivedi period" starts. Nationalist writings
1900 "Indumati" story by Kishorilal Goswami in "Sarasvati"
1913 "Raja Harishchandra", first Hindi movie by Dadasaheb Phalke

1918-1938 "Chhayavad period"
1918, "Dakshin Bharat Hindi Prachara Sabha" founded by Gandhi
1929, "History of Hindi Literature" by Ramchandra Shukla
1931 "Alam Ara" first Hindi talking movie
1930's Hindi typewriters ("Nagari lekhan Yantra")[Shailendra Mehta]

Our age
1949, Official Language Act makes the use of Hindi in Central Government Offices mandatory
1950' Hindi accepted as the "official language of the Union" in the constitution
1952 The Basic Principles Committee of the Constituent Assembly of Pakistan recommends that Urdu be the state language
1965 Opposition to "Hindi-imposition" in Tamilnadu brings DMK to power
1975 English medium private schools start asserting themselves socially politically financially [Peter Hook]
198? Hindi word processors appears
1987-88 Frans Velthuis creates Devanagari metafont [Shailendra Mehta]
1990 According to World Almanac and Book of Facts Hindi-Urdu has passed English (and Spanish) to become the second most widely spoken language in the world [Peter Hook]
1991 ITRANS encoding scheme developed by Avinash Chopde allows Hindi documents in Roman and Devanagari on the Internet.
1995 Movie "Hum Aapke Hain Kaun" biggest grosser ever
1997 Prime Minister Deve Gowda emphasises promotion of Hindi and the regional languages having himself learned Hindi recently.
1997 Hindi Newspaper Nai Dunia on the web (January) *(Or was Milap first?)*
1998 Karunanithi, the DMK leader, recites a Hindi verse during a political campaign indicating a change in views
1998 Sonia Gandhi's Hindi lessons attract attention
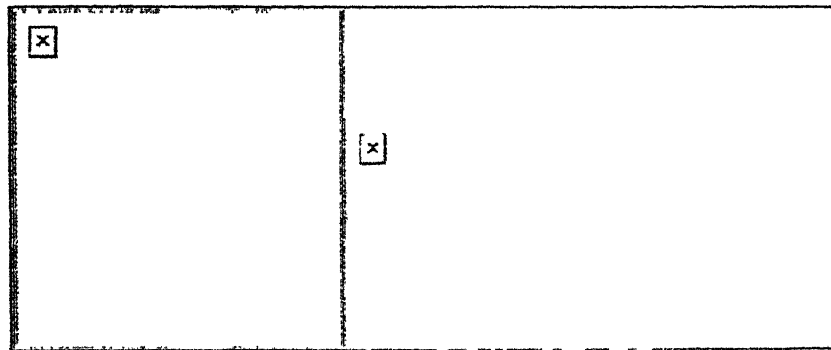
Immortal Hindi authors and poets

The Early period

The Siddhas Sarahpa (Doha-kosh) B 769
The Suris
Shalibhadra (Bhareshshvar-Bahubali Ras 1184)
Shridhar (Sukumala-chariu) 1151
Ramsinh (Doha Pahud)
Amarakirtigani (Chhakkamovaesa) 1190
Lakkhana ((anuvaya-rayana-paiu) 1256
The Nathas Gorakhanath (13th c)
Rasos
Chanda Bardai (Prathviraj Rasau) 12th c
Amir Khosrow 1253-1325

The Middle Period

Kabir 1398-1518
Vidyapati, Maithili Poet (14th c)
Raidas (1398-1448)
Malik Muhammad Jayasi (Padmavat) (1477 - 1542)
Mira Bai (1498-1547)
Surdas (Sursagar) (1483-1563) 1, 2 3
Dadu Dayal (1544-1603)
Tulsidas 1 2, 3, (Ramcharitamanas) d 1623, Hanuman Chalisa, stuti (ps) Sundara Kanda
Rahim (1556-1627)
Keshavadas (1565-1617)
Banarasidas (Ardha-kathanak) (1586-1643)
Rasakhan (1533-1618)
Girdhar
Padmakar
Ibrahim Adil Shah d 1618
Bhushana (1613-1712)
Bihari (Sat Sai) (1595-1663)

Guru Gobind Singh Dehi
Shiva (audio) (1666-1708)
Dyanatirai (1676-1726)
Anandaghan(1660-1730)
Bhudhardas (1693-1749)
Vali Dakkhani (1667 1707)
Khwaja Mir Dard d 1785

The Modern Period

Zafar (1775-1862)
Mirza Ghalib (1797-1869)
12 3
Meer Taqi Meer 1 2 (1722-1808)
Daulatram (1798-1866)

Bhagat Singh
Dharmaveer Bharati
Firaq Gorakhpuri
Faiz Ahmad Faiz
Amritlal Nagar
Suryakant Tripathi "Nir
1962, Veena Vaadini Ti
Maithilisharan Gupta -1
Sahir Ludhiyanavi 1921
Yashpal
Mahadevi Verma, 1907
Rahul Sankratyayana
Upendranath Ashk 191(
Rajendra Yadav 1929- (
Rahi Masoom Raza
Ramdhari Singh 'Dinkar
Shakeel Badayuni
Harivansh Rai Bachchai
Madhushaala
Kaka Hathrasi -1995
Shivani

Manohar Shyam Joshi (
Narendra Kohli
Javed Akhtar

General Sources

Herbert Guenther

Ecstatic Spontaneity

SARAHA'S THREE CYCLES OF DOHA

Berkeley: Asian Humanities Press, 199[illegible]
$25 paper

As is so often the case with major religious figures in the history of India, almost nothing factual is known of the sage Saraha. Yet to judge by the frequency with which his work is cited and the extent to which his style has been imitated, there is no denying that he was of immense importance for the mystic philosophers and poets of Tibet as well as for certain thinkers in India. For Saraha, the spontaneity that marks lived experience, which in turn is inseparable from the living body, is felt as an ecstasy that draws us beyond the confines of the mental and the material.

In this volume, Saraha's *Doha* trilogy is presented with a contemporary interpretation along with a complete, annotated translation.

> "Herbert Guenther is a scholar and translator of the first order, one who is a master not only of the syntactic aspects of his subject, but also of the semantic ground from which it flows."
>
> Allan Combs

Herbert Guenther is Professor Emeritus of Far Eastern Studies at the University of Saskatchewan.

NANZAN INSTITUTE HOMEPAGE

कहते हैं तारे गाते हैं

- बच्चन

कहते हैं तारे गाते हैं !
सन्नाटा वसुधा पर छाया,
नभ में हमने कान लगाया,
फिर भी अगणित कंठो का यह राग नहीं हम सुन पाते हैं !
कहते हैं तारे गाते हैं !

स्वर्ग सुना करता यह गाना,
पृथिवी ने तो बस यह जाना,
अगणित ओस-कणों मे तारो के नीरव आँसू आते हैं !
कहते हैं तारे गाते हैं !

ऊपर देव तले मानवगण,
नभ में दोनों गायन-रोदन,
राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं !
कहते हैं तारे गाते हैं !

❖ ❖ ❖

मेरे दीपक

महादेवी वर्मा

मधुर मधुर मेरे दीपक जल ।
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल ।
पुलक - पुलक मेरे दीपक जल ।

सारे शीतल कोमल नूतन
माँग रहे तुझसे ज्वाला - कण
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल
सिहर - सिहर मेरे दीपक जल ।

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है बादल ।
विहँस - विहँस मेरे दीपक जल ।

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम,
वसुधा के जड़ अंतर में भी
बन्दी है तापों की हलचल।
बिखर बिखर मेरे दीपक जल ।

मेरे निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर,
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल !
सहज सहज मेरे दीपक जल ।

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन,
मैं दृग के अक्षय कोशों से -
तुझमें भरती हूँ आँसू - जल ।
सजल - सजल मेरे दीपक जल।

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरंतर;
तम के अणु - अणु में विद्युत सा -
अमिट चित्र अंकित करता चल ।
सरल - सरल मेरे दीपक जल।

तू जल जल होता जितना क्षय,
वह समीप आता छलनामय
मधुर मिलन में मिट जाना तू -
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल - खिल
मदिर - मदिर मेरे दीपक जल ।

प्रियतम का पथ आलोकित कर ।

Upendranath Ashk

1910-96

Upendranath Ashk was born from a middle class family in Jhalandhar in Punjab in 1910 He started writing poetry in the Punjabi Language Later he began writing in Urdu His first Hindu poem was published in 1926 During the 1930's when he lived in Lahore he shifted to Hindi Ashk has been writing for different newspapers and magazines from 1941 to [illegible] worked with A I R , thereafter he also wrote film stories and dialogues He made translations into Hindi(Dostoevsky O Neill) and edited some anthologies But he is most famous for his novels short stories and plays In 1965 he was awarded the Sangeet Natak Academy Award as the leading playwright of Hindi One of his most famous novels is "Girti Divaaren" which was first published in 1947 In describing some years of the life of Cetan, the hero Ashk depicts the everyday life of the urban middle class in a realistic way It is said to contain many passages which are autobiographic

Some other works (just to mention a few)

- Shahar men ghoomtaa aainaa (1962)(second volume of the above mentioned novel)
- Ek nanhi kindiil (1969)(third volume)
- Tuufaan se pahle (1946)(play)
- U Dan (play)
- Diip jalegaa (poem)

Source Shonek Romesh K Upendra Nath Ashk A Brief Biography and the Theme of Society and Self in his Semi-Autobiographical Trilogy

Contributed by Christine Seemann (seeme000 [illegible])

Upendranath Ashk

1910-96

Upendranath Ashk was born from a middle class family in Jhalandhar in Punjab in 1910 He started writing poetry in the Punjabi Language Later he began writing in Urdu His first Urdu poem was published in 1926 During the 1930's when he lived in Lahore he shifted to Hindi Ashk has been writing for different newspapers and magazines from 1941 to [illegible] worked with A I R , thereafter he also wrote film stories and dialogues He made translations into Hindi(Dostoevsky O Neill) and edited some anthologies But he is most famous for his novels short stories and plays In 1965 he was awarded the Sangeet Natak Academy Award as the leading playwright of Hindi One of his most famous novels is "Girti Divaaren" which was first published in 1947 In describing some years of the life of Cetan, the hero, Ashk depicts the everyday life of the urban middle class in a realistic way It is said to contain many passages which are autobiographic

Some other works (just to mention a few)

- Shahar men ghoomtaa aainaa (1962)(second volume of the above mentioned novel)
- Ek nanhi kindiil (1969)(third volume)
- Tuufaan se pahle (1946)(play)
- U Dan (play)
- Diip jalegaa (poem)

Source Shonek, Romesh K Upendra Nath Ashk A Brief Biography and the Theme of Society and Self in his Semi-Autobiographical Trilogy

Contributed by Christine Seemann ([illegible])

Hindi Songs: Loved by a billion around the world

Songs Index

- Hindi Movie songs index
- Itrans Songs index with frames
- Data-base search
- ISB Next release
- Subra's Indian Song Info Search
- ISB in Hindi(needs Jtrans)
- Lyrics of selected Rajshri's Classics
- Bhanot's Bhajans
- Bhajans in Xdvng

Filmi Music: History

- History of Filmi Music
- Music of the sixties
- Top songs 1953-1993
- Best lyrics 1958-1995
- Music directors since 1935
- Rajshri's classics
- Best Songs of 1996

Filmi Songs: overview

- Verma's
- Subramanian's
- Niraj's

Favorite Singers

Audio! New

- Desi Dance Music
- Sudhir
- Mayur's
- Noshir's
- All India Internet Radio
- Navrang Radio
- Tip-Top Songs
- Web pgaes for specific movies
- Sounds of India
- Pakistani music modern, traditional style

Audio! Golden/Mixed

- Rajshri's melodies
- RadioAsiaNet
- Anchan's
- saregama (HMV)
- music-india
- Gaqvani,
- Kaushish,
- Jeydev,
- Bhulai
- BhartaVani
- Shah (requires TrueSpeech Player, g/pass GUEST/GUEST)
- Bhajans by Shree
- Ragas Vocal Music
- Vande Matram and Jan GaN

A Monthly Literary Magazine in Hindi

उद्गम

अप्रैल २०००

पिछला अंक

	Hindi Fonts· download install & refresh the web page	
	Novices.(Win95/98/NT)-download and execute-Setup Udgam exe(700kb) This should put udgam ttf in "fonts" directory under the windows directory Double click udgam.ttf and refresh the page	ध्येय
	Pros· (Win95/98/NT) Download **udgam zip(35kb) (or udgam exe 45kb- self extracting zip) into c \udgam and copy the udgam ttf file into "fonts" directory under the windows directory**	उद्गार
	If unsuccessful install on (some) Win95 systems(refreshing web page does not show hindi fonts) Start-> Control panel->Fonts->File-> Install new Fonts c \udgam\udgam ttf	प्रतिक्रिया
	UNIX USERS	कथांश
		अभिव्यक्ति
		पंक्तियाँ
		शब्दांजलि
		तूलिका
	Join the mailing list of udgam to keep informed of the new issues and events	

hosted by Udgam

join@udgam com Click and send the e-mail

De
Ud

Feedback

pratikriya@udgam com

अग

५

Disclaimer

उद्गार (सम्पादक [illegible])

रोज जब शाम आती है तो दिन भर के वो किस्से उठा लाती है जिन्हे दिन में किसी व्यस्तता के कारण जानना भूल गयी थी। उन्ही किस्सों में एक सहेली याद आती है जो आज बहुत उदास थी। तीन महीने पहले जब वह भारत से वापस लौटी थी तो अपने पिता से गुस्सा होकर आई थी। कारण मैने पूछा नही उसने भी बताया नही। पर कल रात उसके पिता का देहांत हो गया। भीगी पलको से उसका सारा गुस्सा बह गया।

"मैंने उनसे चलते समय बात नही की थी। वो एयरपोर्ट पर छोड़ने आये थे तब भी नही। अब मै उनसे कभी बात नही कर सकूंगी।"

क्या पता गुस्से का वह कारण कितना प्रबल था। क्या पता उसके पिता की आज्ञा की कठोरता कितनी सही और उससे उपजी यह विरक्ति कितनी शक्तिशाली थी।

मुझे याद आती है वो लड़की जो फ्लोरेंस नाइटैंनगैल की कहानी को पढकर कहती है कि उसे नर्स बनना है और उसकी माँ जो उसे कुछ और बनाना चाहती है। बडे होकर कुछ बनने और बड़ा करके कुछ बनाने की ये दो सतहे अक्सर घर्षण के दौर से

गुजरती है। यह घर्षण आर्कषण और विकर्षण दोनो को जन्म दे सकता है। शायद दूर निकल जाने के बाद ही यह याद आता है कि रोकते हाथों में वो उंगलिया भी होती है जो चलना सिखाती है।

-अंशु जौहरी

३ अप्रैल २०००

कैलिफ़ोर्निया

BACK

लघु कहानियों के लिए आरक्षित स्तम्भ

कथ्यांश

"दिवाकर की ऑखे भरने लगी उसने मम्मी की फोटो हाथ मे ले ली। कितना अतर आ गया है मम्मी पापा मे। कहा मम्मी के चमचमाते गोरे माथे पर बडी सी बिंदी दमकती थी और कहा अब माथे की अनगिनत रेखाओ के बीच मे सिकुड सी गयी हैं। और पापा जिनके कठोर अनुशासन मे सब डरते थे कितने कमजोर व निसहाय लग रहे ह

पितृ ऋण उत्कर्ष राय

Back

पितृ ऋण

(उत्कर्ष राय)

पोछे की बाल्टी के सरकने की आवाज से राजीव की नींद टूट गयी। करवट बदल कर सोने की चेष्टा करते हुये बडबड़ाया " हूँ बस भारत में सुबह चैन से सो भी नही सकता सुबह से ही कामवाली पोछा झाडू की आवाज से सोने का मजा किरकिरा कर देती है। अमेरिका मे ऐसा नही है। "

अधखुली आँखो से कमरे मे धूप की रोशनी से दिन के समय का अनुमान लगाते हुये सोचा यहाँ दीवार पर एक घड़ी तक नही टगी है।

"राजीव अरे बेटा काफी दिन चढ गया है। तुम्हे दिवाकर के यहाँ नही जाना है क्या?" मम्मी की आवाज से राजीव की नीद पूरी तरह टूट गयी। आज तो शर्मा आटी को वादा किया है आने का और अब समय भी कहाँ है। कल पटना से दिल्ली और फिर अमेरिका। जल्दी जल्दी नहाकर कुछ नाश्ता करके वह घर से बाहर निकला।

राजीव को हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी कि चलो दिवाकर से दो तीन वर्षो के बाद मिलने का अवसर मिलेगा। नई जगह और नई नौकरी में व्यवस्थित होने मे कुछ मास बीत गये। इस बीच दो एक बार राजीव और दिवाकर की फोन पर बाते हुयी लेकिन मिलने की साईत जैसे बन ही नही पा रही थी। दिवाकर हर बार कोई ना कोई बहाना बना कर टाल जाता था। लेकिन अब क्या करे इस बार फिर मम्मी ने लिखा है कि जाकर पता लगाओ दिँवाकर का। छोटी बहन गुडिया की शादी तय हो गयी है। दिवाकर आ जाये तो अच्छा। ऐसे आर्थिक संकट भी शर्मा अकल पर काफी आ गया है।

राजीव ने कार उठायी और दिवाकर के घर की ओर चल पड़ा।

"अरे राजीव बडे दिन बाद आये कोई फोन तो कर देते। " दरवाजा खोलते ही दिवाकर ने

"रिक्शा रिक्शा क्या खाली हो?"

"जी हाँ।"

"जरा मीठापुर चलोगे"

"जरूर चलेगे साहब लेकिन मीठापुर में कहाँ?"

"मीठापुर गुमटी के पास कितना लोगे?"

"बाबूजी छ रूपये होगे।"

"अरे यह तो काफी माँग रहे हो। बोहनी नही करनी क्या?" राजीव ने कहा "कौन कहता है कि भारत सस्ता है कितनी महगाई बढ गई है।"

"अरे बाबूजी बोहनी का ही तो दाम है ऐसे कोई वेरिग रोड से आठ से कम नही लेगा।"

"अच्छा चलो।" राजीव ने बात समाप्त करके रिक्शा मे बैठते हुये कहा।

रिक्शा मे बैठते ही वह शर्मा अंकल आटी व दिवाकर के बारे मे सोचने लगा। पता नही क्यो शर्मा अंकल ने इतनी दूर घर ले लिया है। लेकिन बेचारे क्या करते। और यह दिवाकर के कारण तो और मुसीबत है। बचपन का मित्र ना होता तो अलग बात होती। याद है, वो

कहा। घर के अंदर से युवक युवतियो की हँसी ठिठोली की आवाज आ रही थी। लगता है कोई पार्टी चल रही है। राजीव के अदर अपराध बोध सा होने लगा।

"इधर से निकाला तो सोचा कि मिलता चलूँ। कितने वर्षो बाद मिल रहा हूँ। गुड़िया की शादी भी हो रही है। तुम जाओगे क्या?"

"तुम्ही बताओ अभी नई नौकरी मे छुट्टी कहाँ मिलेगी?"

"हाँ तो एक चिट्ठी तो लिख देते और कुछ रूपया हो सके तो।"

बीच में ही बात काटकर दिवाकर तल्खी के साथ बोल पडा "क्या कहते हो। हर चिट्ठी मे तो एक ही बात है कब आओगे? यहाँ हम लोग अकेले है। इतना पढाने लिखाने का क्या फायदा हुआ? मैं तो तग आ गया हू। हर माँ बाप अपने बच्चे को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलवाते है। इन लोगो ने भी तो यही किया। जहाँ तक खर्च की बात है तो मेरे पास कौन सा पैसा है। सारा सामान तो उधार पर खरीदा है। यह उधार चुके तो देखे।"

कहाँ कक्षा पाँच का दब्बू लड़का

दिन जब मैं पांचवी में था और पड़ोस के घर में शर्मा अंकल आंटी आये थे। उनका लडका दिवाकर कितना शांत दब्बू सा था। साथ मे निशा दीदी और नन्ही सी गुडिया बहन थी।

एक दिन मै उसके घर गया एव मित्रता का हाथ बढाया। और एसके बाद तो हमारा खाना पीना स्कूल मे पढना सब एक साथ होने लगा। दिवाकर का अधिकतर समय हमारे घर में ही बीतता। उसके घर में अंकल का कठोर अनुशासन जो था। पढायी में स्पर्धा भी काफी रहती थी। कक्षा में अधिकांशत तो दिवाकर ही प्रथम आता था एवं मै द्वितीय। लेकिन अगर उल्टा हुआ तो फिर शर्मा अंकल की डांट हमारे घर तक सुनायी देती थी। वह दिन नही भूलता जब बारहवी का परीक्षाफल लेने हम दोनो स्कूल के लिये जा रहे थे और रास्ते भर दिवाकर की एक ही रट थी कि अगर नम्बर अच्छे नही आये तो पापा को क्या मुँह दिखाऊँगा। खैर दिवाकर के ९२ प्रतिशत आये और वह प्रथम रहा। मै उससे तीन अंक पीछे था। हम दोनो ने साथ साथ पिलानी का फार्म भरा व आई.आई.टी का परीक्षाफल देखा। आई आई टी में दिवाकर को मैकैनिकल और मुझे सिविल मिली थी। हम दोनो काफी प्रसन्न थे। कुछ दिन पश्चात पिलानी का मोटा लिफाफा मिला। उसमे

और कहॉ आज का तेज व कडवाहटपूर्ण युवक ।

"हूं।" राजीव ने प्रत्युत्तर मे कहा। नाहक ही मिलने आया इतना अपमान तो कभी नही सहा। पीछे से एक अमरीकी महिला ने दिवाकर के गले मे हाथ डालते हुये अग्रेजी मे उससे ही कहा "हाय दिवाकर डार्लिग तुम किससे बाते कर रहे हो?"

"आइरीन यह राजीव है राजीव यह आइरीन है।" दिवाकर ने परिचय कराया। "हैलो" राजीव ने आइरीन से कहा फिर दिवाकर से बोला "अच्छा मैं चलूं।"

कुछ दिनो बाद राजीव ने भारत फोन लगाया "हैलो मम्मी मैं राजीव बोल रहा हूॅ।"

"हॉ बेटे राजीव कैसे हो?"

"ठीक हूँ। आप लोग कैसे है?"

"कल गुडिया की शादी में गये थे लडकेवालो ने काफी मॉंगा। शर्माजी के पास इतने पैसे तो थे नही बगलवाला घर बेच दिया है किराये के घर में जाने वाले हैं। दोनो पति पत्नी बेटे के व्यहवार से टूट से गये हैं। शादी मे भाई की रस्म चचेरे भाई ने की। कितनी आशाएँ थी उन लोगो को सब

मुझे कम्पयूटर साइंस मे प्रवेश मिल गया था। खुशी-खुशी मैं दिवाकर के घर गया।

"नमस्ते अंकल ।" दरवाजे पर ही शर्मा अंकल मिल गये।

"आओ आओ राजीव।"

"अंकल मुझे पिलानी मे कम्पयूटर मे प्रवेश मिल गया है मै तो वही प्रवेश लूगा सिविल की अपेक्षा तो कम्पयूटर मे भविष्य अच्छा है।"

तब तक दिवाकर और आंटी भी आ गये।
"यही तो दिवाकर भी बोल रहा है कि आई आई टी मे मैकैनिकल पढने से तो पिलानी मे कम्पयूटर पढना अच्छा है।"

"अरे इंजिनियरिंग तो इंजिनियरिंग है और फिर आई आई टी तो सर्वश्रेष्ठ है।" अंकल ने कहा

"पर पापा कम्पयूटर की बात अलग है।" पहली बार दिवाकर को अंकल के सामने बोलते सुना।

"जब राजीव जा रहा है तो दिवाकर को भी भेज दीजिये। मानती हू कि पिलानी की पढाई बहुत महगी है लेकिन अब बेटे के भविष्य का सवाल है पैसा नही देखना चाहिये।" आंटी ने दिवाकर का पक्ष

चकनाचूर हो गयी। नाहक ही दुनिया बेटे के लिये मरती है। बेटा हो तो बडी बडी उम्मीदे लगा लेते है और फिर बुढापे मे धक्का भी तो सहन नही होता।"

राजीव तो जैसे जड मूरत हो गया। क्या कहे। उसने दिवाकर से हुयी मुलाकात के बारे मे बता दिया। कहीं अंदर ही अंदर वह अपने आप को इसका दोषी समझ रहा था न वो अमरीका आता न दिवाकर।

दो वर्ष और बीत गये। राजीव को कुछ छुट्टियां मिली और उसने भारत जाने की सोची। इतने वर्षों बाद सबसे मिलने की खुशी ने उसमे स्फूर्ति भर दी। सामानों की खरीदारी के समय एक दिन एक दुकान पर अचानक दिवाकर मिल गया।

"अरे राजीव तुमने तो मिलना ही बंद कर दिया।" दिवाकर ने हल्के से हंसते हुए कहा।

"हां काफी दिन हो गये।" राजीव ने उसकी आंखो मे देखते हुए कहा। उसे कहीं कुछ खालीपन सा अनुभव हुआ।

"तुम ठीक तो हो।" दिवाकर ने आगे बात बढाई।

"हाँ और निशा की शादी सिर पर आ ही है सो?" अकल ने चिंतित स्वर मे कहा।

"अरे भगवान सब पार लगायेगे। बेटा ही बुढापे मे काम आयेगा।" धीमे से आटी ने कहा।

"जैसी तुम मा बेटे की मर्जी।" कहते हुये अकल भीतर चले गये। दिवाकर के चेहरे पर पहली बार जीत की चमक सी दिखी।

अकल ही हम दोनो को पिलानी छोडने आये एव हर सेमेस्टर कम से कम एक चक्कर अवश्य लगाते थे। दिवाकर इस बात पर खिन्न रहता कि अभी भी बच्चो जैसी निगरानी करते है।

इसी बीच एक गर्मी की छुट्टी मे निशा दीदी का विवाह हुआ। मम्मी को आटी ने बताया कि काफी खर्चा हो गया है। सम्भलने मे कुछ समय लगेगा।

पिलानी के अतिम वर्ष मे तो जैसे सभी विद्यार्थी जी आर ई देने मे जुटे हुये थे। हम दोनो ने भी जी आर ई की परीक्षा दे डाली। अत मे अमेरिकी यूनिवर्सिटी से छात्रवृत्ति के साथ प्रवेश की अनुमति आ गई। मम्मी

"हां अगले माह भारत जा रहा हू।"

"अच्छा कोई शादी वादी का चक्कर है क्या।"

"अभी नही। ऐसे मम्मी पापा जोर बहुत दे रहे है। तुम भी चलो।" आदत के अनुसार राजीव कह बैठा

"नही मै तो अभी नही जा सकता छुट्टी नही है और आजकल मेरा बास जा रहा है तो काम काफी है। शायद पदोन्नति हो जाये।"

"अरे यह तो खुशी की बात है। और आइरीन है।"

"यहाँ कौन सफर का साथी होता है। सब थोडी दूर साथ चलकर रास्ता बदल लेते है।" दिवाकर ने उदासी के साथ उत्तर दिया।

"अच्छा मै चलूँ। आने पर मिलू गा।" राजीव ने दिवाकर से बिदायी ली।

"बाबूजी रिक्शा कहाँ रोकू।" रिक्शेवाले की आवाज ने राजीव का ध्यान भग किया। "अरे यही रोक दो।" राजीव ने सकपका कर कहा।

में फोन पर काफी बाते होती रही लेकिन धीरे धीरे दिवाकर का फोन आना कम हो गया। एक दिन राजीव ने भारत बाते की तो पता चला कि दिवाकर का कोई कुशल समाचार तक वहाँ नही मिला हैं। अकल तथा आटी चिंतित हैं। मम्मी ने दिवाकर का पता लगाने को कहा। राजीव ने दिवाकर को फोन किया। उधर से अंग्रेजी में उत्तर आया "हैलो आइरीन हूँ"।

"अरे यह गलत नम्बर तो नही " राजीव ने अंग्रेजी में पूछा "क्या मै दिवाकर से बात कर सकता हू ?"

"एक मिनट। "

दिवाकर की आवाज दूसरी ओर से अग्रेजी में आई "हैलो यह दिवाकर है। "

"हाँ दिवाकर। मै राजीव बोल रहा हू ।

"हाँ राजीव कोई खास बात है क्या?"

"नही बस योंही!"

"अच्छा तो मै तुम्हे बाद मे फोन करता हूँ। "

"अच्छा। "

राजीव ने फोन बद कर दिया। अच्छा करे।" आटी के चेहरे पर एक चमक थी शायद किसी निर्णय की। "बेटा राजीव कुछ लड्डू बनाये है। तुम ले जा सकोगे। सुना है हवाईजहाज वाले फेक देते है।" आटी ने पृछा।

"अरे नही आटी बस छोटे-छोटे डिब्बो मे रख दीजिये। आटी यह फोटो कब खिची?" राजीव ने पूछा।

"गुडिया की शादी के बाद की है। "

"मै ले जाऊ दिवाकर के लिये। ?"

"अरे हम जर्जर लोगो की फोटो ले जाकर क्या करोगे। दिवाकर के रिश्ते के लिये कई फोटो आ रही है। लेकिन किससे क्या कहूँ?"

"आप फिर शुरू हो गई ऊटपटाग बाते लेकर। "अकल ने आंटी को धीरे से कहा।

"अच्छा बेटे मै अभी लड्डू और चिट्ठी लेकर आती हू ।"कहते हुये आटी अदर चली गई।

राजीव ने सक्षेप मे अमरीकी जीवन शैली व कार्य पद्धति के

तो दिवाकर अब इस रास्ते पर भी चल चुके है। अब मम्मी को क्या उत्तर दूँ। दिवाकर से बात हो पाती तो कुछ लिखता भी। इसी उधेड़बुन मे दोतीन दिन वीते कि एक दिन फोन की घंटी रात के बारह बजे वज उठी। राजीव ने सोचा इतनी रात कहाँ से फोन आया भारत से ही होगा। सब ठीक तो है।

"हैलो राजीव मै दिवाकर बोल रहा हू। सो तो नही गये?"

"नही बस लेटा ही था।"

"अरे मै तो भूल ही गया कि तुम पूर्वी तट पर हो तीन घंटे आगे। बारह बजे होगे।" दिवाकर ने कहा।

"हा।"

"क्षमा करना फिर बाद मे बात करुगा।"

"नही नही ऐसी बात नही। भारत मे मम्मी ने कहा है कि अकल आटी को तुम्हारा कुशल समाचार बहुत दिनो से नही मिला है परेशान है। कभी कभार खबर दे दिया करो।"

"अच्छा अब तू भी भाषण देने लगा। यहाँ की पढाई से समय मिले तब तो। और थीसिस भी समाप्त करनी है। कोई खास बात होगी

बारे मे अकल को बताया। इस बीच आटी सामान लेकर आ गई। राजीव ने सामान लिया और चलने की अनुमति मागी। अकी आटी की आँखो के कोने मे नमी सी दिखायी दी।

अमेरिका वापस आकर राजीव ने दिवाकर को फोन किया व उसके घर पहुँचा।

"अरे राजीव तुम्हारा ही इतजार था कैसी रही भारत यात्रा?" दरवाजा खोलते ही दिवाकर ने कहा।

"बहुत अच्छा लगा अपनो से मिल कर। अकल आटी अच्छे से है। यह चिट्‌ठी फोटो व लड्डू तुम्हारे लिये भिजवाये है।"

सारा सामान सौंपकर राजीव ने चलने के लिये कहा। दिवाकर ने भी रोकने का प्रयत्न नही किया। राजीव के जाते ही उसने चिट्‌ठी खोली।

"प्रिय बेटे दिवाकर

ढेर सा आर्शीवाद। आशा है तुम स्वस्थ एव सकुशल होगे। हम लोग भी अच्छी तरह से है। जीवन ठीकठाक चल रहा है। सुबह कुछ बच्चो की ट्यूशन करते है व शाम को सत्सग मे जाते है। इसी तरह दिन बीत रहे

तो लिखूगा। "

दिवाकर की बोली मे कितनी कडवाहट आ गई है। विना मतलव मम्मी ने बीच मे घसीट लिया मुझे।

"और सब ठीक है?" राजीव ने पूछा।

"हाँ सब कुशल है। चलो फिर बात होगी बाय। "

"बाय। "

खैर यह तो सच है कि यहॉ की पढाई काफी निचोड लेती है लेकिन एक चिट्टी तो लिख ही सकता है। कुछ महीने बीत गये। राजीव ने नौकरी की खोज मे आवेदैन डालने आरम्भ किये। अत मे उसका सपना पूरा हुआ। कम्पयूटर इंडस्ट्री का मक्का मदीना "सिलिकान वैली" मे उसे अच्छी नौकरी मिल गयी। सामान बांधने तथा मित्रो को नये पते की सूचना देने मे दिन शीघ्रता से बीतने लगे। एक दिन राजीव ने दिवाकर को फोन किया।

"हैलो दिवाकर। " आवाज कुछ साफ नही आ रही थी। पीछे से किसी महिला की आवाज सुनायी दे रही थी। हो ना हो यह आइरीन होगी या कोई दूसरी।

है। निशा व गुडिया अपने अपने परिवारो मे रमी हुयी है। बेटा मैंने तुम्हारा काफी दिल दुखाया है इसी से नाराज हो। गलती हमारी थी दूध का मूल्य मागने बैठ गई थी। पीढियो से माता पिता निस्वार्थ अपने बच्चो के लिये करते चले आये है। यही तो अतर है हमारी सस्कृति मे और पाश्चात्य सस्कृति मे जहाँ सारे रिश्ते नाते आर्थिक होते है। "

दिवाकर की ऑखे भरने लगी उसने मम्मी की फोटो हाथ मे ले ली। कितना अतर आ गया है मम्मी पापा मे। कहॉ मम्मी के चमचमाते गोरे माथे पर बडी सी बिदी दमकती थी और कहॉ अब माथे की अनगिनत रेखाओ के बीच मे सिकुड सी गयी है। और पापा जिनके कठोर अनुशासन से सब डरते थे कितने कमजोर व निस्सहाय लग रहे है। दिवाकर ने चिट्ठी आगे पढनी आरभ कर दी।

"बेटा तुम्हारे लिये लड्डू भेज रही हूँ। बचपन मे तुम्हे बेहद पसंद थे। वहाँ मेहनत भी तो काफी करनी पड़ती होगी। हमलोगो के लिये बिलकुल चिन्ता मत करना हम लोग नाराज एकदम नही है बल्कि बहुत गर्व अनुभव करते है कि तुम वहाँ नये नये शोध कर

EASY MONEY!

प्रिय
पाठकगण,

'हिन्दी रचनाएँ' को मिले आपके भरपूर प्रेम और प्रोत्साहन का मैं तहेदिल से आभारी हूँ। पिछले ८-९ महीनों से इस साइट पर कुछ भी नया नहीं हुआ है, इसका मुख्य कारण मेरी परीक्षाओं और पढ़ाई का दबाव रहा है। परंतु अब मेरी परीक्षाओं व यात्राओं की समाप्ति के बाद 'हिन्दी रचनाएँ' के विकास के लिए मैं अधिक समय दे पाऊँगा। इस बात की पुष्टि के लिए मेरे विचार से प्रारंभिक तौर पर एक नया रूप और एक बेहतर टाइप (फांट) काफ़ी होगे।

हिन्दी रचनाएं मत
Hindi RachnayeN Poll

भारत की राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिए? **What should be the national language of**

part of swastik.v

- हिन्दी Hindi
- अंग्रेजी English
- अन्य other
- पता नहीं don't know

Vote!
Results

by freepolls.com

इंटरनेट एक्सप्लोरर ५.० के आगमन के साथ ही देवनागरी लिपि इस्तेमाल करने वाली साइटों के लिए एक नई समस्या का आगमन हुआ - पन्नों की एनकोडिंग का। इसके साथ ही ' इन्डियन लैंग्वेजेज़ वाले टाइप में कई और समस्याएँ भी उभरकर आईं। इन सब के कारण किसी और विकल्प की तलाश जारी थी, और फिर मानकीकरण का गंभीर मुद्दा भी हल करना था। इसके लिए श्रेष्ठतम पसंद निर्विवाद रूप से सी-डैक के सुरेख व योगेश फांट ही थे।

नवगठित सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार (पूर्व में इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग, भारत सरकार) द्वारा समर्थित होने व काफ़ी शोध एवं वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर बने होने के कारण यह हमारी पहली पसंद बना। यह फांटसेट भारत सरकार की कई वेबसाइटों द्वारा समर्थित है - भारत सरकार क नवगठित सूचना प्रौद्योगिकी कार्यबलं भी सुरेख का प्रयोग करता है। भारत सरकार के गज़ट का हिन्दी संस्करण सुरेख फांट में ही उपलब्ध है; महाराष्ट्र सरकार के साइट का मराठी संस्करण भी सुरेख का प्रयोग करता है। कालांतर में और अधिक मानकीकरण होने की स्थिति में सी-डैक के टाइप के ही रहने की प्रबल संभावना है।

उपरोक्त कारणों से यह कदम बहुत ही अनिवार्य-सा बन गया था। हमारे पुराने पाठकों को यद्यपि कुछ परेशानी होगी, लेकिन हमें आशा है आपका प्रेम और प्रोत्साहन हमें यथावत् मिलता रहेगा।

पका स्नेहाकांक्षी,

"हा। " वह अग्रजी म नाला।

"मै राजीन नोल रहा हू। "

"हा राजीव कैसे हो?"

"मै कल यहा से छोड के जा रहा हूँ सैनफ्रासिसको के पास नौकरी लग गई है। " राजीव ने सक्षेप मे कहा।

"बधाई हो। मेरी नौकरी भी वही लगी है। अब तो मिलना होगा। "

"अच्छा तो फिर मिलेगे वाय। "

"बाय। "

जे लोगे। हमारा व देश का नाम ऊचा करोगे। किसी माता पिता को इससे अधिक और क्या चाहिये। तुम्हारी सफलता मे ही हमारी सफलता है। अपने कार्य मे दिनोदिन उन्नति करो। "

दिवाकर की आखो मे मम्मी पापा का चेहरा उतर आया। कितनी गलत धारणा है। मै तो यहॉ बस रोजी रोटी कमा रहा हू न शोध न शोहरत। और पदोन्नति वह कहॉ। एक अमरीकी को वो पद दे दिया गया। इस काम मे क्या गर्व है? उन्हे क्या पता वस्तु-स्थिति क्या है? दिवाकर से आगे चिट्ठी पढी नही जा रही थी। सब कुछ धु धला सा दिख रहा था।

सके तो हम लोगो को ा कर देना। आर्शीवाद सहित।

गरी मम्मी। "

मी शब्द पर पता नही कब ऑसू एक बूद गाल से ढुलक कर गयी और शब्द को धुधला गई। दिवाकर फूट फूट कर पडा। उसने फोन उठाया और र मिलाया "हैलो मम्मी मै ाकर बोल रहा हू। मै सदा । के लिये भारत आ रहा हू

EASY MONEY!

प्रिय
पाठकगण,

'हिन्दी रचनाएँ' को मिले आपके भरपूर प्रेम और प्रोत्साहन का मैं तहेदिल से आभारी हूँ। पिछले ४-५ महीनों से इस साइट पर कुछ भी नया नहीं हुआ है. इसका मुख्य कारण मेरी परीक्षाओं और पढ़ाई का दबाव रहा है। परंतु अब मेरी परीक्षाओं व यात्राओं की समाप्ति के बाद 'हिन्दी रचनाएँ' के विकास के लिए मैं अधिक समय दे पाऊँगा। इस बात की पुष्टि के लिए मेरे विचार से प्रारंभिक तौर पर एक नया रूप और एक बेहतर टाइप (फांट) काफ़ी होंगे।

हिन्दी रचनाएँ मत
Hindi Rachnayen Mat

भारत की राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिए? **What should be the national language of** ...

part of swastik

- हिन्दी Hindi
- अंग्रेजी English
- अन्य other
- पता नहीं don't know

Vote!
Results

by freepolls.com

इंटरनेट एक्स्प्लोरर ५.० के आगमन के साथ ही देवनागरी लिपि इस्तेमाल करने वाली साइटों के लिए एक नई समस्या का आगमन हुआ - पन्नों की एनकोडिंग का। इसके साथ ही ' इन्डियन लैंग्वेजेज़ वाले टाइप में कई और समस्याएँ भी उभरकर आईं। इन सब के कारण किसी और विकल्प की तलाश जारी थी, और फिर मानकीकरण का गंभीर मुद्दा भी हल करना था। इसके लिए श्रेष्ठतम पसंद निर्विवाद रूप से सी-डैक के सुरेख व योगेश फांट ही थे।

नवगठित सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार (पूर्व में इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग, भारत सरकार) द्वारा समर्थित होने व काफ़ी शोध एवं वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर बने होने के कारण यह हमारी पहली पसंद बना। यह फांटसेट भारत सरकार की कई वेबसाइटों द्वारा समर्थित है - भारत सरकार के नवगठित सूचना प्रौद्योगिकी कार्यबल भी सुरेख का प्रयोग करता है। भारत सरकार के गज़ट का हिन्दी संस्करण सुरेख फांट में ही उपलब्ध है; महाराष्ट्र सरकार के साइट का मराठी संस्करण भी सुरेख का प्रयोग करता है। कालांतर में और अधिक मानकीकरण होने की स्थिति में सी-डैक के टाइप के ही रहने की प्रबल संभावना है।

उपरोक्त कारणों से यह कदम बहुत ही अनिवार्य-सा बन गया था। हमारे पुराने पाठकों को यद्यपि कुछ परेशानी होगी, लेकिन हमें आशा है आपका प्रेम और प्रोत्साहन हमें यथावत् मिलता रहेगा।

आपका स्नेहाकांक्षी,

DISCLAIMER

I do not have any control over the external sites and their contents. I am not liable for any content held on any sites that I may link to

HOME OF HINDI POEMS!

Thanks a million for visiting my poetry page!!!!!

Though poetry is nothing great and all here but still thanks for the time taken out to read them I wish I had some more and more beautiful poems to make your visit a worthwhile experience
MY POEMS >> >>

PREHISTORICAL SAGA
It was one fine morning of Indian spring over a North Indian remote village Kardaha (Unnao) I was born There is nothing special about my early (read primary) education as it took place in villages and small towns But it was the time when I was really interested in sports and also developed understanding about them (including cricket) I played marbles, gulli-danda, kabaddee in general and some other local games as well as rural version of cricket playing with rosewood bat and ball made of rubber tubes of cycles

After seeing my performance in sports, education and specially in literature state Govt (of Uttar Pradesh) gave me an offer of sponsering my further education in state capital Lucknow Which I accepted reluctantly but regretted later (that's another story not here) I joined Govt Jubilee College, Lucknow for Highschool and Intermediate studies, where my primary memorable lessons were related to ragging in the hostel, which in due course (read in coming years) I started enjoying by violating all hostel/school ethics

College days found me in Lucknow Christian College, Lucknow but I could not resist the charm of studying Aeronautical Engineering (compared to a boring BSc in one of the India's not so great university) in the city of Himalayan valley- Dehradun, where I developed an attitude, in the vicinity of Himalayan Altitude, to do something better in the field of Aerospace Engineering Driven by unknown forces and unmatchable attitude, one fine day I found myself in the first city of South India- Chennai After completing graduation I joined Aerospace Department in IIT Madras In due course my professors in the department found out that it was really almost impossible to handle me. And after conspiring one full year they made me to leave not only IIT campus but also India I was sent to Germany during last semester of my studies for full nine months to bug hardworking and sincere Germans